ISSN: 2582-1016

Jan-June 2023

ईशान् जर्नल ऑफ रिसर्च, नालेज एण्ड प्रूडेंस

ISHAN JOURNAL OF RESEARCH KNOWLEDGE & PRUDENCE
(A Peer-Reviewed Multidisciplinary International Research Journal)

अंक 9 (वर्ष 5) (चैत्र–बैशाख) **Volume IX (Year 5)** **Chaitra-Vaishakh**

कलियुगाब्द 5125, विक्रम संवत् 2080, ईसवी सन् 2023

Kali Yugābda 5125, Vikram Samvat 2080, i.e., CE 2023

ISSN: 2582-1016
Jan-June 2023

ईशान् जर्नल ऑफ रिसर्च, नालेज एण्ड प्रूडेंस

ISHAN JOURNAL OF RESEARCH KNOWLEDGE & PRUDENCE
(A Peer-Reviewed Multidisciplinary International Research Journal)

अंक 9 (वर्ष 5) (चैत्र–बैशाख) **Volume IX (Year 5)** **Chaitra-Vaishakh**

कलियुगाब्द 5125, विक्रम संवत् 2080, ईसवी सन् 2023

Kali Yugābda 5125, Vikram Samvat 2080, i.e., CE 2023

Editors

Professor. (Dr.) Manoj Kumar Saxena
Head & Dean (Education) and Campus Director Dhauladhar Campus – I Central University of Himachal Pradesh, Dharmashala (HP)
&
Dr. Prakash Maroti Masram
Assistant Professor, Head of the Department, History,
University of Mumbai.

ईशान् प्रमोट आर्ट कल्चर एण्ड इम्प्रूव सोसाइटी
7 Gaya Ghat Road, Dahilamau Pratapgarh, Uttar Pradesh, Pin Code 230001

ISHAN JOURNAL OF RESEARCH KNOWLEDGE & PRUDENCE
Volume IX (Year 5) Chaitra-Vaishakh
Kali Yugābda 5125, Vikram Samvat 2080, i.e., CE 2023

Published by:
Ishan Promote Art Culture & Improve Society
7 Gaya Ghat Road, Dahilamau Pratapgarh
Uttar Pradesh, Pin Code 230001
Mobile No. 9452262734
Email: ishanjournal1115@gmail.com
Visit us at: www.ishanjournal.com

This Journal is a referral volume
Typescripts whether in the form of article or notes or books reviews, offered for publication, should be sent to the editor
at
Professor (Dr.) Manoj Kumar Saxena
or
Dr. Prakash Maroti Masram, Assistant Professor

We prefer CD/DVD of the article with details, including illustrations, preferably in MS Word or e-mail ishanjounal1115@gmail.com with illustrations and tables, etc.
The editors are not responsible for the expressed by the contributors.

मुख्य पृष्ठ आवरण :मोहिनी रूप, गुलेर कागड़ा, ल.1790 ई0, भारत कला भवन, का. हि. वि. वि.

पृष्ठ आवरण: समुद्र मंथन, पहाड़ी शैली, ल.1700 ई0, रिटबर्ग म्यूजियम

चित्र साभार :भारत कला भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

Review Board of Journal

- Dr. Gaurav, Scientist "B" Assistant Director, N.M.N.H. Bhubaneswar Odessa.
- Shri Pradeep Singh, Assistant Professor/Head of the Department, T.D. College, Jaunpur, Uttar Pradesh.
- Dr. Dharmendra Kumar Vishay, Assistant Professor, R.R.P.G. College Amethi.
- Smt. Neelu Kumari, Assistant Professor, Ram Lakhan Singh Yadav College, Ranchi, Jharkhand.
- Dr. Bhanu Pratap Singh, Specialist Business Planning, Al-Jubail, Saudi Arabia
- Shri Keshaw Chandra Shriwastva, Assistant Professor, Ranchi University, Ranchi.
- Shri Alok Kumar Singh, Assistant Teacher, Satyendra Bahadur Singh Intermediate College Rajapur Bindhan Kunda Pratapgarh
- Dr. Rahul Maurya, National Museum Institute New Delhi
- Dr. Dev Prakash, Banaras Hindu University Varanasi.
- Mrs. Anamika Singh, Research Scholar, Home Science, Mahatma Gandhi Kashi Vidhyapeeth, Varanasi, Uttar Pradesh.
- Shri Santosh Kumar Sharma, Research Scholar, History Department, Government P.G. College, Jhalawar (Kota University, Kota)
- Satyaveer Singh, Research Scholar, Department of Political Science, Maharaja Surajmal Brij University, Bharatpur, Rajasthan
- Lal Chand Yadav, Research Scholar, Government P.G. College, Jhalawar (Kota University, Kota)
- Shri Sumesh Kumar Singh, Al-Jubail, Saudi Arabia.
- Shri Rajat Kumar Singh, M.A. Political Science, Delhi University.

सम्पादकीय

ईशान् का यह अंक आपके कर–कमलों में समर्पित करते हुए अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है। प्रस्तुत जर्नल के प्रकाशन का दायित्व ईशान् प्रमोट आट कल्चर एण्ड इम्प्रूव सोसाइटी का हैं, जो कला, संस्कृति एवं विरासत के संरक्षण हेतु अपनी भूमिका के निर्वहन को लेकर संवेदनशील है। इस जर्नल का प्रकाशन उसी भूमिका की एक कड़ी मात्र है।

भारत की पुरातन संस्कृति एवं ज्ञान सम्पूर्ण विश्व में प्रतिष्ठा लब्ध है। जहॉ एक ओर अध्यात्म प्रवण वैदिक वाग्ड़मय है तो दूसरी ओर भौतिक भाव के कौटिलीय अर्थशास्त्र एवं मनुस्मृति विशेष है। प्राचीन समय में विविध भागों में शिक्षा के केन्द्र संचालित थे। जिनमें तक्षशिला, काशी, कांची, नालंदा, बल्लभी आदि प्रमुख है। इन केन्द्रों में बड़े–बड़े ग्रन्थाकार भी हुआ करते थे। इनमें विदेशों से भी विधार्थी आकर अध्ययन किया करते थे।

भारत सदियों तक गुलाम रहा है। पहले मुसलमान–मुगल और तदोपरान्त् अंग्रेजों ने इसके अध्यात्म ज्ञान और संस्कृति को अत्यधिक क्षति पहुँचायी। महमूद गजनवी और बख्तियार खिलजी जैसे आक्रान्ताओं ने मन्दिरों और विश्वविद्यालयों को गंभीर क्षति पहुँचायी। कालान्तर में अंग्रेजों ने पूर्वाग्रहवश भारतीय ज्ञान–विज्ञान को अपेक्षित किया और भारतीय समाज को राजनैतिक मूल्यविहिन, अश्पृश्यता, गरीबी युक्त पिछड़े समाज की संज्ञा प्रदान की। 19 वीं शतीं के उत्तरार्द्ध में इतिहासकारों और खोजकर्ताओं ने भारत के गौरवशाली अतीत से सम्बन्धित अनेक तथ्य उद्घाटित किए। इससे लोगों की रूचि संस्कृति एवं विरासत के अध्ययन में बढ़ी। हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ों के उत्खनन से भारत सभ्य देश के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। आभिज्ञानशाकुन्तलम एवं भगवत्गीता जैसे ग्रंथों का विश्व की विविध भाषाओं में अनुवाद हुआ। इन सबसे सम्पूर्ण विश्व भारत के वैभवशाली एवं गौरवशाली अतीत से परिचित हुआ।

आज वैश्वीकरण के दौर में भौतिकवादी के आबी होने से पुरातन अतीत एवं विरासत के संरक्षण के प्रति लोगों का रूझान घटा है। आवश्यकता है ईशान् जैसे किंचित प्रयासों की जो गौरवपूर्ण इतिहास की ओर लोगों के ध्यानाकर्षण के लिए संकल्पबद्ध है।

संम्पादक की कलम से

ISHAN JOURNAL OF RESEARCH KNOWLEDGE & PRUDENCE

Volume IX (5) Chaitra-Vaishakh
Kali Yugābda 5125, Vikram Samvat 2080, i.e., CE 2023

अनुक्रमणिका

समुद्र–मंथन विषयक विवरणात्मक चित्रित सन्दर्भ

(डॉ0 राधाकृष्ण गणेशन)

अभी वर्षो पूर्व एक ऐतिहासिक सूर्यग्रहण का दृश्य सारे संसार ने देखा, जिसमें कुछ देर के लिए सूर्य के विलुप्त होने जैसी खगोलीय घटनायें हुई जो कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। यह वैज्ञानिक सत्य है कि सूर्य और पृथ्वी के मध्य परिक्रमा करते चन्द्र के आ जाने पर सूर्यग्रहण होता है। उसी प्रकार सूर्य और चन्द्र के मध्य पृथ्वी के आ जाने के फलस्वरूप चन्द्रग्रहण होता है। परन्तु हमारी भारतीय पौराणिक ग्रन्थों में इसका एक कथात्मक स्वरूप भी प्राप्त होता है जिसके अन्तर्गत देवताओं और असुरों के द्वारा किये गये समुद्र–मन्थन के पश्चात् प्राप्त अमूल्य रत्नों के साथ अमृत घट की प्राप्ति होने पर, भगवान विष्णु के मोहिनी रूप द्वारा देवताओं एवं राक्षसों में उसके वितरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। सर्वप्रथम देवताओं को अमृत परोसने के दौरान, देवताओं की पंक्ति के छहा रूप में बैठे असुर राहु का सूर्य और चन्द्र के इशारे पर भगवान विष्णु का अपने सुदर्शन चक्र और चन्द्रमा को समय–समय पर ग्रसित करने के कारण चन्द्रग्रहण और सूर्य ग्रहण की कल्पना की गई है।

इस कथा के प्रमुख पक्ष की विवेचना से पूर्व में देवताओं और दैत्यों द्वारा किये गये समुद्र–मन्थन प्रसंग पर प्रकाश डालना चाहूँगा। वैसे तो विविध पुराणों में समुद्र–मन्थन की कथा का विवरण विविध रूपों में प्राप्त होता है और इस कथा से अनेक विवरणात्मक सन्दर्भ जुड़ते हैं। यहॉ विष्णु पुराण तथा महाभारत के आदि पर्व को मैंने इस शोध–पत्र का आधार बनाया है।

विष्णु पुराण के अनुसार महर्षि दुर्वासा द्वारा देवराज इन्द्र को एक सन्तानक पुष्पों की दिव्य माला दिये जाने, इन्द्र का उसे उपेक्षा से स्वीकार करने, तथा इस अपमान पर क्रोधित दुर्वासा के श्राप से ऐश्वर्य के मद में चूर इन्द्र के पराजय से समुद्र मन्थन की कथा का मूल प्राप्त होता है। इस श्राप के फलस्वरूप दैत्यों से बारम्बार परास्त होने पर देवराज इन्द्र एवं समस्त देवगण ब्रह्मजी की आज्ञानुसार भगवान विष्णु के शरणागत होते है। उनकी स्तुति से प्रसन्न हो विश्वकर्ता भगवान हरि उन्हें आश्वासन देते है– ''हे देवगण! मैं तुम्हारे तेज को फिर बढ़ाऊँगा, तुम इस समय मैं जो कुछ कहता हूँ वह करो। तुम दैत्यों के साथ सम्पूर्ण औषधियाँ लाकर अमृत के लिये क्षीरसागर में डालो और मन्दराचल पर्वत को मथानी तथावासुकि नाग को नेती बनाकर उसे दैत्यों और दानवों के सहित मेरी सहायता से मथकर अमृत निकालों। तुम लोग सामनीति का अवलम्बन कर दैत्यों से कहो कि इस कार्य में सहायता करने से आप लोग भी इसके फल में समान भाग पायेंगे। समुद्र के मथने पर उससे जो अमृत निकलेगा उसका पान करने से तुम सबल और अमर हो जाओगे। हे देवगण! तुम्हारे लिये मैं ऐसी युक्ति करूँगा जिससे तुम्हारे द्वेषी दैत्यों को अमृत न मिल सकेगा और उनके हिस्से में केवल समुद्र–मंथन का क्लेश ही आयेगा।

भगवान विष्णु के आज्ञानुसार देवतागण एवं असुरगण मन्दराचल को मथानी और वासुकि नाग को डोरी बनाकर अमृत के लिये जलनिधि समुद्र को बड़े वेग से मथना आरम्भ करते है। ''यहाँ विष्णु ने जिस ओर वासुकी की पूँछ थी, उस ओर देवताओं को तथा जिस ओर मुख था, उधर दैत्यों का नियुक्त कियाजिससे महातेजस्वी वासुकी के मुख से निःश्वासाग्नि से झुलस कर सभी दैत्यगण निस्तेज हो जाये और उसी श्वास–वायु से विक्षिप्त हुए मेघों के पूँछ की ओर बरसते रहने से देवताओं की शक्ति बढ़ती रहे। इतना ही नहीं, भगवान विष्णु स्वयं कूर्मरूप में द्वितीय अवतार लेकर मन्दराचल

पर्वत के आधार बनते हैं और वे ही एक अन्य रूप से देवताओं में ओर एक रूप से दैत्यों में मिलकर नागराज को खींचते है।

क्रमशः चमचमाते समुद्र मंथित जल में से विविध प्रकार की चिकित्सकीय औषधियों के साथ नाना प्रकार के विलक्षण तत्वों का मिश्रण तथा प्रतीक उत्पन्न होने शुरू होते है। प्रमुख रत्नों के रूप में सुरभि, वारूणि, कौस्तुभ मणि, दत्तात्रेय शेख, धनुष, पुष्प, कल्पवृक्ष, चन्द्र, लक्ष्मी, उच्चैश्रवा अश्व, ऐरावत हाथी, हलाहल तथा अमृतघट को लेकर धन्वतरि प्रकट होते है। यह अभ्दुत दृश्य देखकर दानवों में अमृत के लिये कोलाहल मच जाता हैं और वे अमृत को पाने में सफल हो जाते हैं, उसी समय भगवान विष्णु मोहिनी माया का आश्रय लेकर मनोहारिणी स्त्री का अद्भुत रूप बनाकर दानवों के पास आते हैं। मोहिनी के सौन्दर्य से आकर्षित हो वे सब स्त्री रुपधारी भगवान को अमृत सौंप देते है। यहीं से कथा का उत्तरार्ध प्रारम्भ होता हैं। भगवान नारायण की वह मूर्ति हाथ में कलश लिये अमृत परोसने लगती है। उस समय दानव—दैत्य सभी पंगत लागकर बैठे ही रह जाते हैं परन्तु मोहिनी देवताओं को ही अमृत पिलाती है, दैत्य अमृत से व[illegible]चत रह जाते है।

इसी समय राहू नामक दानव छह रूप में देवताओं के साथ बैठकर अमृत पान कर लेता है। वह अमृत अभी उस दानव के कंठ तक ही पहुँचा होगा कि उसके अगल—अगल बैठे सूर्य और चन्द्र देवताओं के हित की इच्छा से उसका भेद बतला देते है। तभी चक्रधारी भगवान श्री हरी उस दानव का मुकुट मण्डित मस्तक चक्र द्वारा बलपूर्वक काट देते हैं। यही मुख्य कारण है कि आज भी सूर्य एवं चन्द्र पर राहु द्वारा ग्रहण लगने की मान्यता है। इतना ही नहीं, भारतीय संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य में अनेक सन्दर्भ मिलते हैं जिसमें विरहिणी नायिका की दशा की इंगित करते हुए कवि कहता है कि चन्द्रमुखी के सौन्दर्य को विरह रूपी राहू ने ग्रसित कर लिया।

जहाँ तक इस प्रसंग पर बने चित्रों का प्रश्न हैं, विविध शैलियों पर निर्मित प्रायः दो प्रकार के दृश्य ही देखने में आते हैं— प्रथम देवताओं एवं असुरों द्वारा मन्दराचल पर्वत एवं वासुकी नाग की सहायता से समुद्र मंथन का चित्रण तथा दूसरा मन्थन के पश्चात् प्राप्त प्रमुख रत्न अमृत का भगवान विष्णु द्वारा मोहिनी रुप में प्रकट होकर वितरण के दृश्य दिखते हैं।

यहाँ समुद्र—मंथन विषय पर रिटबर्ग म्यूजियम स्थित पहाड़ी शैली पर बने चित्रों पर हम चर्चा करेगें। इस चित्र में मन्दराचल पर्वत को वासुकी नामक सर्प से लपेट कर एक ओर तीन राक्षसों को, जो सर्प के मुख की ओर हैं, तथा दूसरी ओर देवताओं का प्रतिनिधित्व करते विष्णु, ब्रह्मा एवं शिव को मन्थन करते दिखाया गया है। लगभग 1700 ई0 में बने इस चित्र में नीचे कूर्म के पृष्ठ पर र्वत अवलम्बित है। यहाँ विष्णु को तीन पृथक रूपों में दिखाया गया है— प्रथम मन्थन करते हुए, दूसरे कूर्म अवतार लिये तथा तीसरे मन्दराचल पर्वत शिखर पर कमल रूपी सिहांसन पर शंख, चक्र, गदा पद्य के वास्तवकि स्वरूप में लक्ष्मी के साथ दिखाया गया है। यहाँ विशेष बात उल्लेखनीय है कि विष्णु को ब्रह्म से पूर्व रखा गया है। इसका कारण यह हो सकता है कि इस पूरी मन्थन प्रक्रिया में विष्णु का ही मुख्य योगदान रहा है। चित्र के अधो भाग में जल का चित्रण पत्ते की आकार में भँवर को सफेद रंग से रेखांकित किया गया है। पृष्ठभूमि सपाट हरा है तथा ऊपरी भाग एक पतली पट्टी बनाकर क्षितिज को दर्शाया गया है।

समुद्र मंथन के बसोहली शैली पर निर्मित इस चित्र में भी विष्णु को मन्दार पर्वत के शिखर पर आसीन दर्शाया गया है। उन्हें यहाँ ब्रम्हा और शिव के मध्य वासुकी सर्प के पूँछ को पकड़े दिखाया गया है। सींग वाले राक्षसों को विचित्र डरावने मुख्य—मण्डल तथा नुकीले नथुनों वाले पैरों के साथ दिखाया गया है। मंथन से निकले रत्नों को ऊपरी भाग में दर्शाया गया हैं। पीली पृष्ठभूमि

दानवों एवं देवताओं के मध्य के उग्रतापूर्ण संघर्ष को दर्शाती है। यह चित्र पटियाला स्थित पंजाब म्यूजियम का है जो लगभग 1730 ई0 का है।

समुद्र मंथन से संबंधित तीसरा चित्र मन्थन के उत्तरार्ध का हैं जोक 1790 ई0 का गुलेर कांगड़ा शैली का है। यह चित्र भारत कला भवन संग्रहालय में संग्रहित है। इस चित्र में विष्णु के मोहिनी रूप द्वारा देवताओं को अमृतपान कराने का दृश्य है। देवता एवं दैत्य पंगत लगाकर इधर–उधर बैठे है। इस चित्र का मुख्य आकर्षण दैत्य राहू का सूर्य एवं चन्द्र के मध्य बैठकर छल से अमृत पान करना, सूर्य एवं चन्द्र के द्वारा उन्हें इंगित करने पर मोहिनी स्वरूप विष्णु द्वारा राहू का सिर काटना तथा उस शीश का दूर आकाश मार्ग पर विचरण करना है। चित्रकार ने सूर्य को लाल रंग एवं चन्द्र को श्वेत रंग से दर्शाया है। समस्त देवताओं को मुकुट के साथ तथा दानवों को विविध प्रकार से विचित्र भॉव–भंगिमाओं में दर्शाया है। इस दृश्य के विहंगम स्वरूप को चित्रकार ने बखूबी दर्शाने का सफल प्रयास किया है जिससे यह दृश्य पूर्णतया विवरणात्मक बन पड़ा हैं जो भारतीय चित्रकला के विवरणात्मक दृश्यांकन का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

<u>सन्दर्भ :–</u>

1. विष्णु पुराण अ0 9/1–11 पृ0सं0 – 43
2. वही पृ0सं0 44
3. वही पृ0सं0 45
4. वही पृ0सं0 46
5. वही पृ0सं0 49
6. महाभारत , महर्षि वेदव्यास, प्रथम खण्ड/आदिपर्व, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1996, पृ0सं0 82
7. विष्णु पुराण, पृ0सं0 50
8. महाभारत, पृ0सं0 84

उत्तराखंड की संस्कृति एवं लोक कलाएं

(प्रिया प्रधान, असिटेट प्रोफेसर (चित्रकला विभाग)

कहा जाता है की 'संस्कृति' को किन्ही नपे–तुले शब्दों में परिभाषित कर पाना तथा उसमें समवेत किए जाने वाले विषयों का सीमाकंन कर पाना कठिन है। उसी प्रकार उत्तराखंड की लोक संस्कृति के विषय का परिगणना कर पाना इतना सरल नहीं जितना कि सामान्य समझा जाता है। कारण कि उत्तराखण्ड की संस्कृति का रूप इतना व्यापक तथा बहु आयामी है कि इन सभी को किसी सीमित शब्दावली में परिसीमित कर पाना कठिन है। यहाँ की लोक कला व संस्कृति अपने आप में मानवीय मनन चिंतन के अनन्त आयामों विभिन्न उपयोगों एवं ललित कलाओं के अनगिनत उत्कर्ष बिंदुओं, संकल्पनाओं, आस्थाओं, विश्वासों की परंपराओं के जीवन पद्धतियों, के साथ–साथ पूजा–अर्चना, उपासना, धार्मिक अनुष्ठानों तथा उसमें निहित परंपरागत भावनाओं के अनेक रूप प्रतिरूप को प्रकट करते हुए लोक संस्कृति की परिधि में समाहित है।

लोक कलाएं

लोक कला के संबंध में कहा जाता है कि वह समस्त कला जो लोक द्वारा निर्मित होती है लोक कला कहलाती है। प्रवृत्तियों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि इसके समस्त तत्व श्रमिक जीवन की विभिन्न अनुभूतियों से भरे पड़े हैं। जब आदिमानव सर्वप्रथम शिकार की खोज में गया होगा तो उसने एक नुकीले पत्थर के टुकड़े का निर्माण किया होगा तथा अपने शरीर को ढकने के लिए कुछ पत्तियों को जोड़कर वस्त्र तैयार किया होगा। इसे ही मानव की कला का आरंभ माना जा सकता है।

कोई भी कला किसी व्यक्ति के जीवन के साथ–साथ समाज और राष्ट्र के जीवन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कला ही किसी भी व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाती है एवं उसे परिष्कृत करती है। किसी भी क्षेत्र में लोक कला क्षेत्र की संस्कृति विरासत उसकी पहचान और उसके अस्तित्व की अभिव्यक्ति होती है लोक से उत्पन्न कला ही लोक कला है जो जन सामान्य के हृदय की भावनाओं द्वारा प्रकट होती है लोक कलाओं की दृष्टि से उत्तराखंड बहुत समृद्ध है। यहां की लोक कलाएं भारतीय धर्म एवं संस्कृति में विशिष्ट स्थान रखती है तथा विविधता की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है वास्तव में सुंदरता के प्रति आकर्षण की सृजनात्मक प्रेरणा हमें लोक कलाओं में ही देखने को मिलती है। उत्तराखंड की लोक कला के अंतर्गत अंकित अभिव्यक्तियों चित्र, ऐपण, रंगोली, अल्पना, चौक, वस्त्र छपाई, पर्व उत्सव पर रेखाकित की जाने वाली विभिन्न आकृतियों के साथ ही पेशेवर कला तथा मूर्तिकला आदि निहित है। अंकित चित्र के रूप में पर्व त्योहारों ब्याह शादी आदि के समय मंगल चिह्न दीवारों या भूमि पर अंकित करना बहुत पुरानी कला है।

संस्कृति प्रधान लोक कलाएं

ऐपण– महिलाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति आंकिक चित्रों के रूप में अल्पना या ऐपण द्वारा प्रकट होती हैं ऐपण का मूल अर्थ है लीपना यह चित्र प्रथा समतल धरती पर अंकित रंगोली तथा दीवारों पर अंकित थापा कहलाती है। ऐपण लिखने की परंपराएं कुमाऊं मंडल में अधिक प्रचलित हैं। इन्हें महिलाओं द्वारा ही लिखा जाता है इसके नाम, स्थान और अनुष्ठान के अनेक रूप होते हैं वह ऐपण में मुख्यतः स्वास्तिक नवग्रह तथा लक्ष्मी सरस्वती के पदचिन्ह बनाए जाते हैं।

ऐपण– वाले स्थान यथा पूजा घर, घर का आंगन दहलीज, सिढिया जो प्राय कच्ची होती है को पहले गोबर मिट्टी के मिश्रण से लीपा जाता है शुद्धि के पश्चात उन्हें गेरू से पोत दिया जाता है सूखने के बाद उंगलियों को विस्तार में डुबोकर ऐपण रन बनाए जाते हैं जहां साधारणतःघर के प्रवेश द्वार को देली कहा जाता है। फूलदेई के विशेष पर्व पर घर की देली को अत्यधिक आकर्षक कलाकृतियों से सजाया जाता है। जिसे देली ऐपण कहते हैं पूजा स्थल की वेदी विवाह के अवसर पर द्वार पूजा की चौकी तथा नामकरण के अवसर पर सूर्यदर्शन चौकियां भी ऐपण विधि से अलंकृ त की जाती है इस प्रकार का ऐपण चौखे से कहलाता है।

थापा कला– दीपावली, दशहरा आदि उत्सवों, नवग्रह पूजन तथा दुर्गा पूजा पर नवग्रहों एवं दुर्गा का चित्र चावल से बनाने श्वेत रंग के साथ सामान्य रंगों का प्रयोग करके किया जाता है जिसे थापा कहते हैं।

नात–रसोई घर की दीवारों पर गेहूं तथा बिस्वार से लक्ष्मी नारायण चेतुआ तथा बिखौती के चित्र बनाकर धन–धान्य की कामना की जाती है। इन प्रतिकारक चित्रों को टुपुक भी कहते हैं।

ज्योति –महालक्ष्मी माता काली, गणेश महासरस्वती तथा दुर्गा की मानव आकृतियों को अंकन ज्यूति या ज्योति पट्ट कहलाता हैं यह चित्रांकन यज्ञोपवीत तथा विवाह के अवसर पर लोकप्रिय हैं मुख्य चित्र के साथ पशु–पक्षियों लताओं के प्रतीक बनाए जाते हैं

बरबूंद या बरबूंद– इस लोककला में रेखा और बिदुंओं द्वारा इस प्रकार की आकृतियॉ बनाई जाती है जिनमें बिन्दुओं को डालकर उन्हें रेखाओं से जोड दिया जाता हैं इस प्रकार बनी आकृतियों में कई प्रकार के रंग भर दिये जाते हैं बारबूद का प्रयोग शिव चौकी बनाने में भी किया जाता है।

वसुधरा– घर के मन्दिर, दहलीज को मेरू से लीपकर बिस्वार की अनेक धारायें डाली जाती है जो दुग्धा धाराओ की तरह प्रतीत होती हैं इस प्रकार का चित्रांकन वसुधरा कहलात हैं इसके अतिरिक्त जन्माष्टमी पट्टा गंगा दशहरा पत्र, बेदी अंकन पष्टी चौकी आदि पर भी यह कला प्रचलित हैं

डिकरा– पर्वतीय क्षेत्रों में महिलाओं द्वारा हरयाली के शुभ अवसर पर मिट्टी से देवी–देवताओं की प्रतिमाये बनाई जाती है, जिन्हे डिकरा कहते है। यह पर्व सावन मास के पहले दिन, कर्क सक्राति को मनाया जाता हैं इसे शिव पार्वती के विवाह का दिन माना जाता है इस पर्व में शिव परिवार की मिट्टी की मूतियाँ बनाई जाती है उस पर चावलो के सफेद पेस्ट का लेप किया जाता है इस प्रकार से इनकी पूजा अर्चना द्वारा इस पर्व को सम्पन्न किया जाता है।

उत्तराखण्उ की समृध सांस्कृतिक विरासन गौरवशाली परम्पराओं और लोक कलाओ के लिए न केवल देश में अपितु दुनिया भर में अपनी एक अलग पहचान है उत्तराखण्ड की लोक कलाये एवम् चित्रकलायें अद्वितीय है यहाँ के लोगो की सांस्कृति को देश व विदेशो ने इस प्रकार से प्रभावित किया है कि यहा की कला पहले जो घरो के आगन और मन्दिरो तक ही सीमित थी अब आधुनिक कला और फैशन की दुनिया में भी पहचानी जा रही है। इन कलाओं को देश के कोने कोने तक पहुचाने में युवा वर्ग पूरी रूचि ले रहा है और स्वरोजगार के नये आयाम भी स्थापित कर रहा है।

लोक व्यवसाय अथवा जीविकोपार्जन की कलाये।

उत्तराखण्ड की लोक कलाएं विरासत बेहद समृद्ध रही है खासकर पर्वतीय क्षेत्र की लोक कलाए, परम्परा और हस्तशिल्प की एक दौर में धूम रहा करती थी लेकिन बदलते वक्त की मार इन सब पर भी पड़ी। ढोल–ढमाऊ जेसे लोकजीवन की गहराई तक जुडे पारम्परिक वाधयंत्र सिमटे है तो अब इनके वादको की संख्या भी उगलियो में गिनने लायक रह गई है। यही स्थिति पारंम्परिक लोकनृत्य व नर्तको के साथ ही हस्तारीक हस्तशिल्प की भी है। लोककलाए, परम्पराए विलुप्ति के कगार पर पहुंच गई है। वजह परम्परागत कला को रोजगार से न जोड पाना है, लेकिन अब सरकार इस दिशा में गभीरता से सोच रही है और लोक कलाओं व विरासत संस्कृति के संरक्षण का निश्चित कर रही हैं

प्रदेश के वनो में अनेक प्रकार के उत्तम काण्ट के वृक्ष पाए जाते है, जिनसे कृषियंत्र के साथ–साथ किवाडो पर मूर्तियों खोदना, काण्ठोपकरणो पर नक्काशी करना, तिबारी के कलात्मक

स्तंभ बनाना, सोर सिगाड की नक्काशी, सिराणी, पैताणी, जंगला, नीमदारी बनाना आदि काष्ठ कला के प्रमुख अंग है उत्तराखण्ड के कुछ स्थान के नक्काशी करने वाले काष्ठ कलाकार प्रसिद्ध है।

इस प्रकार से परम्परागत कलाओं के अंतर्गत वंशानुगत व्यवसाय प्रधान कलाएं आती है। पत्थर तराशने की कला, वस्त्र कौशल कला, आभूषण कला, बुनने की कला, लौह उपकरण कला, बर्तन बनाने की कला, काण्ढकला।

वस्तुत कला एक साधना है, समर्पण है, जो समाज तथा राष्ट्र की सेवा, आराधना एवं पूजा के सशक्त माध्यम द्वारा प्रतिलिम्बित होती है। वर्तमान समय में उत्तराखण्ड की लोक कलांए अपने मूल स्वरूप में विद्यमान है, जिसके लिए आज हमें इसके स्वरूप को बचाये रखने की आवश्यकता है जिससे वर्तमान पीढी द्वारा भावी पीढी को यह ज्ञान सरल रूप से संचरित होता रहे। अतः विरासत में मिली इस संस्कृति को बचाये रखेन हेतु परिवार एवं सामाजिक स्तर पर सार्थक प्रयास करने की आवश्यकता हैं।

सन्दर्भ

- bharatdiscovery,.org/India/उत्तराखण्ड की संस्कृति
- उत्तराखण्ड समग्र ज्ञानकोष, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद बलोदी
- उत्तराखण्ड का लोकजीवन एवं लोक संस्कृति, प्रो0डी0डी0 शर्मा

काशी की काष्ठ कला में देशज ज्ञान

(डॉ0 राकेश सिंह यादव, सहायक संग्रहालयाध्यक्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी)

भारतीय संस्कृति सदैव ज्ञान आधारित रही है। यह पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रही है। काशी की काष्ठ कला जनमानस की कला है। इस कला में जनमानस की विचारधारा तथा आत्मचिंतन का बोध दिखलाई पड़ता है। हमारे देश में लोक कला के विभिन्न स्वरूप है। जिसकी पृष्ठ भूमि में उस क्षेत्र की अपनी निजी लोक कथा, लोक धर्म तथा लोकपरम्पराएँ होती है। जो हमें लोक कलाओं में दिखालाई पड़ती है। लोक कलाये किसी सीमा में नहीं बंधी होती है। इस प्रकार की कला स्वतंत्र होती है। वर्तमान् में भी नित नये खोज एवं आविष्कार होते जा रहे है। ऐसी स्थिति में परम्परागत ढंग से चली आ रही काशी की काष्ठ कला में भी नित नये प्रयोग किये जा रहे है। काशी प्राचीन समय से ही ज्ञान का केन्द्र रहा है और वर्तमान में काशी की काष्ठ कला में प्रयोग की जाने वाली तकनीक एवं विषय आधुनिक समय की आवश्यकता के अनुरूप सराहनीय प्रयास है। प्रारम्भ में काष्ठ कला में ज्यादातर पारम्परिक खिलौने, विवाह सम्बन्धित तथा धार्मिक वस्तुओं के विषय बनाकर काष्ठ–कलाकृतियॉ बनायी जाती थी, बाद में शिक्षाप्रद कलाकृतियॉ भी बनने लगी। आधुनिक समय में उपयोगी काष्ठ–कलाकृतियॉ भी बनायी जानी लगी है। कभी–कभी मांग के अनुसार भी काष्ठ–कलाकृतियॉ बनाई जाती है। काष्ठ कलाकारों द्वारा बनाया जाने वाला ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होता रहा है। काष्ठ–कलाकृतियॉ बनाने की तकनीकी ही देशज स्वदेशी ज्ञान है। आज भी काशी के पुस्तैनी काष्ठ कलाकार है। जो पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी कला को हस्तान्तरित करते आ रहे है। ये कलाकार न केवल अपनी कला का हस्तान्तरण करते है बल्कि वास्तव मे अपनी संस्कृति का हस्तान्तरण करते है। इससे न केवल अपने देश में बल्कि विश्व के विभिन्न देशों में भारतीय संस्कृति का प्रचार–प्रसार होता है।

साहित्यिक साक्ष्यों से भी काशी की काष्ठ कला की प्राचीनता सिद्ध होती है महाजनपद युग से ही काशी में लकड़ी के खिलौने बनाने का उल्लेख प्राप्त होता है। जातक ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख आया है कि वाराणसी से थोड़ी दूर पर हजार परिवारों वाला बढ़ईयों का एक महाग्राम था ये बढ़ई चारपाई, पीढ़ा तथा घर बनाते थे इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि विभिन्न वस्तुओं को बनाने के लिए बढ़ईयों का अलग–अलग वर्ग रहा होगा। वे वस्तु विशेष बनाने में निपुण रहे होगें इसी प्रकार का वर्णन अलीन चित्र जातक में भी मिलता है। जहाँ वाराणसी में एक बढ़ई ग्राम का उल्लेख है। इस ग्राम के बढ़ई वनों से लकड़ियां काट कर एक तल्ले का मकान बनाते थे। वे लकड़ियों पर चिन्ह लगाकर नौका द्वारा नगर में लाते तथा वहाँ लोगों की इच्छानुसार वस्तुएं बनाकर कार्षापण प्राप्त करते थे।[1]

वर्तमान समय में काशी को विशेष रूप से काष्ठ के उत्कृष्ट खिलौनों के निर्माण केन्द्र के रूप में मान्यता मिली है। जिसमें वर्तमान प्रधानमंत्री का सराहनीय प्रयास रहा है। जिससे के काण्ड कलावृत्ति को (GI) टैग प्राप्त है।

इसके अतिरिक्त काशी में ऐसे अनेक वास्तु उदाहरण भी है जो काष्ठ निर्मित है अपने आप में अद्वितीय है तथा काशी में लोकप्रिय भी है। इनमें ललिता घाट पर स्थित समराजेश्वर मन्दिर उल्लेखनीय है जिसका निर्माण नेपाल नरेश ने 1843ई0 में करवाया था। काष्ठ निर्मित यह

मन्दिर भगवान शिव को समर्पित है सर्वतोभद्र यह मन्दिर अपने वास्तु, स्थापत्य, तथा मूर्ति कला के अंकन हेतु प्रसिद्धि के साथ–साथ पयटकों के मध्य लोकप्रिय है।[2]

एक उदाहरण में काशी के लक्खी मेलों में शामिल रथ यात्रा के मेले में जगन्नाथ सुभद्रा व बलभद्र, का जो विग्रह प्रस्तुत किये जाता है वह भी काष्ठ निर्मित होता है। इसके साथ ही जिस रथ पर रखकर विग्रह की तीन दिनों तक पूजा की जाती है वह भी काष्ठ निर्मित होता है। काष्ठ शिल्प का एक अन्य उदाहरण चौखम्भा स्थित सम्पूर्ण काष्ठ निर्मित काठ की हवेली भी है।

सर्वेक्षण के उपरान्त यह स्पष्ट हुआ कि वंश परम्परा के आधार पर आज भी हड़हा सराय कश्मीरीगंज, खोजवा, सरायनंदम, किरैया तथा विश्वनाथ गली में सुन्दरपुर, चालीपुर, लहरतारा आदि मुहल्लों में काष्ठकृतियों का निर्माण किया जा रहा है।

प्रारम्भिक काल में खिलौना बनाने का कार्य एक ही परिवार के सदस्यों द्वारा किया जाता था किन्तु आज के समय में नित नये प्रयोग एवं शेषज्ञयता वादी व्यापार के युग में लकड़ी काटने, खिलौने गढ़ढने वाले, रंगाई करने वाले, तथा इनकी मार्केटिंग कर बेचने वाले अलग–अलग लोग है। अब यह कार्य श्रृंखला बद्ध स्वरूप में होता हैं।

काष्ठ कलाकृति बनाने से पहले ही काष्ठकार स्वयं लकड़ी का चयन कृति के अनुसार करके उपयोगी टिकाऊ तथा हल्की लकड़ी जैसे चिलबिल, धुरकुन, शीशम, आदि से कृति तैयार करके स्वयं ही रंगते एवं बेचते थे परन्तु वर्तमान में यूकोलिप्टस, कैमा, गूलर, तथा सेमल का प्रयोग इन्ळें कृति निर्माण के लिए करना पड़ता है।[3]

निर्माण तकनीकी की दृष्टि से काशी में वर्तमान में दो प्रकार से लकड़ी के खिलौने बनाये जाते है पहला हाथ से गढ़कर इस प्रकार से बनने वाले खिलौनों में विवाह से जुड़ी सामग्री बनाई जाती थी जैसे मण्डप (मडवॉ) हल–जुआर के अतिरिक्त पशु–पक्षी, गाय, बैल, घोड़े ऊट, हिरण तथा मानव आकृतियों में देवता, द्वारपाल, बैण्ड पार्टी बावतासेट आदि।

दूसरा प्रकार खराद मशीन पर गोलाई ली गई काष्ठवृत्ति का निर्माण होता है। इनमें लड्डू फिरकी, डिविया झुनझुने, चटनी, सिन्धौरा, प्रमुख है खराद मशीन पर बनने वाली वस्तुये शीघ्र व सरलता से तैयार हो जाती है।[4]

निर्माण के पश्चात् इनकी रंगाई की जाती है रंगाई दो प्रकार से की जाती है। एक तो कृति तैयार होने के बाद कलाकार उसे बालू कागगज से रगड़ कर चिकना करता है इसके पश्चात् गढ़ कर बने खिलौनों को मिट्टी के खिलोनो की तर रंगा जाता है। जबकि खराद वाले खिलौनों को चलती मशीन पर पहले से तैयार रंग की बहती दबाकर रखकर रंगा जाता है। घर्षण के कारण बहती गर्म होकर पिघलती है। और उस पर रंग चढ़ता जाता है।[5]

खिलौनों के विषय वस्तु पर चर्चा करना आवश्यक है। विषय वस्तु को चार भागां में विभाजित किया जाता है।

1. धार्मिक कलाकृति / पूजन से सम्बन्धित :– इस वर्ग की काष्ठ कलाकृतियां खिलौना, सजावट तथा पूजन तीनों है कार्य में प्रयुक्त होती थी। इनमें विभिन्न देवी देवताओं जैसे, शिव, विष्णु, गणेश, दुर्गा, हनुमान, कृष्ण, आदि की मूर्तियाँ हैं जो खिलौने, लटकाने के लिए, धार्मिक आयोजनों के हिसाब से अलग–अलग आकार प्रकार की बनाई जाती है। झूले में राधा कृष्ण, माखन चोर, जल बिहार, विराट रूप विष्णु, कृष्ण गणेश, हनुमान, हवाला बैण्ड पार्टी, इत्यादि बनाया जाता है।[6]

2. विवाह सम्बन्धीः— बड़ी संख्या में गृहस्थी से जुड़ी वस्तुओं का उपयोग रीति—रिवाज तथा कर्माण्डो में होता है। जैसे चक्की, जाता, ओखल, मूसल, हल—जुआढ मण्डप (मड़वा), सिन्घोर, पीढ़ा, इत्यादि।
3. खिलौने :— लट्टू, फिरकी, झुनझुना, चटनी (चित्र स0 –1), दाना, चिड़िया (चित्र स0 –2), एनिमन सेट (चित्र स0 –3) बर्ड सेट (चित्र स0 –4) न्वाइस मेकर एनिमल (चित्र स0 –5) पिटारी, खटखटी, घोड़े, ऊट, चिड़ियां, मोर, मछली, चीता, शेर, तोता, बत्तख, गुड़िया इत्यादि है।
4. नैतिक शिक्षा/शिक्षाप्रद कलाकृतियां इनमें गाँधी जी के तीन बन्दर (चित्र स0 –6) श्रवण कुमार, पजल (चित्र स0 –7), रसियन डाल (चित्र स0 –8), पेंसिल (चित्र स0 –9) परिवार नियोजन से सम्बधित आकृतियां, सुखी और दुखी परिवार को दिखाया जाता है। सुखी परिवार मे माता—पिता के साथ तीन बच्चे और दुःखी परिवार में साथ सात बच्चे, नौ, ग्यारह बच्चे दिखाकर जनसख्या वृद्धि की समस्या की ओर ध्यान दिलाया जाता है।
5. सजावटीः—_ चाभी स्टैण्ड, मोबाईल स्टैण्ड, फोटो फ्रेम, लैम्प, मोमबत्ती स्टैंड, कीरिंग, ब्रेसलेट, हैगिंगस, कटोला, फूलदान, डम्बल, ऐशट्रे, पेपरवेट, झूले इत्यादि।[7]

(चित्र स0 –1)

(चित्र स0 –2)

(चित्र स0 –3)
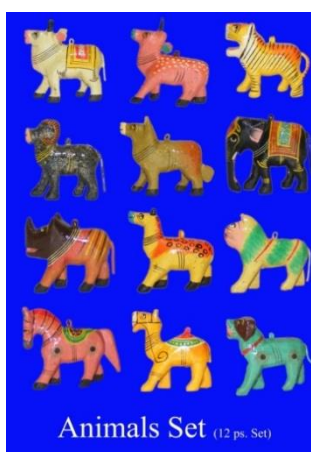
(चित्र स0 –4)
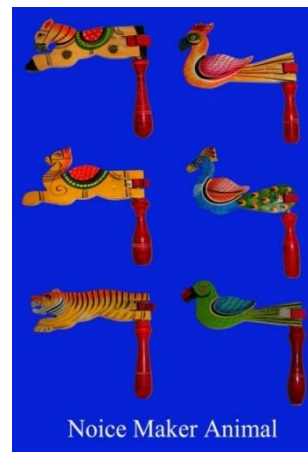
(चित्र स0–5)

(चित्र स0 –6)
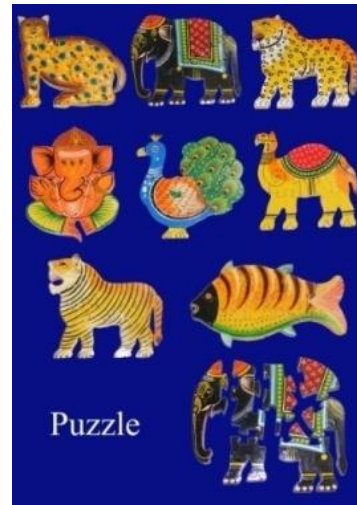
(चित्र स0 –7)
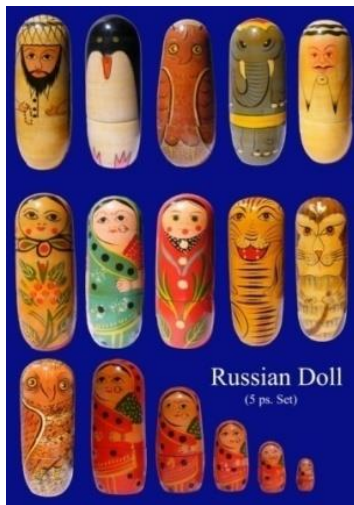
(चित्र स0 –8)

(चित्र स0 –9)

इस प्रकार निष्कर्ष मे हम कह सकते हे कि काष्ठ कला, काशी का समृद्ध कला थी जिसका निम्न बिन्दू के माध्यम से काष्ठकला के देशज ज्ञानको संरक्षित रखने के लिलए एक स ंस्थान की आवश्यकता हैं।

- कच्चा माल, बिजली, को उपलब्ध कराना।
- कारीगरो की कमी होती जा रही है। कारण कम पारिश्रमिक का मिलना।
- सरकारी सरंक्षण की आवश्यकता है जिससे कारीगार विचौलियों से बचे रहे और उनके सीधे लाभी प्राप्त हो सके।

- काष्ठ कला के परमारागत ज्ञान के लिए संगठित संस्थान की कमी हमेशा महसूस की गय।
- काष्ठ कलाकार काशी में जगह–जगह विखरे हुए है। कला के सरंक्षण एवं विकास के लिए एक मंच की आवश्यकता हे। जिसके माध्यम से इनकी बातों को रख्खा जा सकता है।
- यह करना काशी को अमूल्य सांस्कृतिक विरसित है, जिसे सहेजने की पहल काशी वसियों को करनी होगी तकि काशी की यह सांस्कृतिक झाँकी सुप्त होने से बचायी जा सके।
- कुछ ऐसे माध्यम को निकसित कियाजाना चाहिए जिससे काष्ठ निर्माता कलाकृति को आफलाईन या ऑनलाईन के माध्यम से डायरेक्ट उपभोक्त को बेच सके।
-

संदर्भः–

1. कौशल किशोर मिश्रा, (सम्पादक), सन्मार्ग, वाराणसी विशेषांक, अगस्त 1986.
2. कमलगिरी एवं मारूती नंदन प्रसाद तिवारी, काशी के मन्दिर एवं मूर्तियाँ, जिला सांस्कृतिक समिति, वाराणसी, 1984, पृ0 स0 22–23
3. प्रेमचन्द्र विश्वकर्मा, काष्ठ एवं धातु मूर्तिकला, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2007, पृ0 स0 18.
4. कमलगिरि, काशी की लोक कला, जिला सांस्कृतिक समिति, वाराणसी, 1984, पृ0 स0 33
5. प्रेमचन्द्र विश्वकर्मा, काष्ठ एवं धातु मूर्तिकला, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2007, पृ0 स0 20.
6. उषा रानी तिवारी एवं आरती पाण्डेय, *काशी की काष्ठ कलाः एक संदर्भ परक अध्ययन, संस्कृति संधान* वाल्यूम, वाराणसी. 2011, पृ0स0 199–209, XXIV, NO 1.
7. प्रेमचन्द्र विश्वकर्मा, काष्ठ एवं धातु मूर्तिकला, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2007, पृ0 स0 12–17..

मुगल कालीन चित्रकला में विदेशी प्रभाव

(देव प्रकाश, शोध छात्र, शोध छात्र, गॉधी शताब्दी स्मारक पी0जी0 कालेज, कोयलसा, आजमगढ)

निजी कला कृति बेहद जाटिल वस्तु होती है जो कला की परिभाषा को अधिक जटिल बनाती है फिर भी जब हम 'कला' शब्द का प्रयोग करते है तो आमतौर पर हम समझ जाते हैं कि हम किस विषय पर बात कर रहे हैं।

कलाः—

1. दृश्य (Visual) भाषा के रूप में कार्य करने वाले दृश्य—तत्वों के विन्यास के रूप में होती है।

2. अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कलावार की विशेष पसन्द के रूप में किया गया कार्य, कला है।

अर्थात् — कला इस बात का प्रयास होती है। कि लोग किस तरह निर्णय लेते है अर्थ रचते है। वह मानव—मस्तिष्क की कुछ अत्यन्त जटिल प्रक्रियाओं की साक्षी होती है।

शैली क्या हैः— कला इतिहासकारों द्वारा प्रयुक्त शब्द 'शैली' एक जटिल विचार का नाम है, आमतौर पर यह किसी कार्य को करने का एक तरीका है। और स्पष्ट कहा जाये तो कला के शैली उन विभेदात्मक लक्षणों को कहते है दर्शक को , एक के साथ दूसरी कृति का सम्बन्ध जोड़ने में कृतियों का वर्गीकृत किया जा सकता है।

शैली दो प्रकार की होती है —

1. **साधारण शैली :—** ऐसे लक्षण जो कृतियों को काल, अवधि संस्कृति या शैली से जोड़े— यथा, काल, स्थान, कलाकार वर्गीकरण है।

कार्यशाला :— कार्यशाला में पहला चित्रण जो मिलता है उसका नाम प्लाजानामा है और यहाँ पर जैन पाण्डुलिपियों का अनुवाद किया तथा हिन्दू धर्म से सम्बन्धित ग्रन्थों को पर्सियन में अनुवाद और चित्रण किया गया।

मुगल शैली के चित्रो की विशेषतायें :— इस्लाम धर्म में चित्रकला धर्म निषेध थी क्योंकि मुस्लमानो की ऐसी धारणा है कि कसी व्यक्ति भी आकृति अथवा चित्र बनाने पर उसमें जान डालना चाहिये अन्यथा वह पाप है। इस कारण ही मुसलमान धर्म की जन्म अरब में जो मस्जिदे बनवाई गई है उनमें अलंकरण हेतु ज्यामितिय आकारों के आलेखनों तथा कुफिका सुलिपि का ही केवल प्रयोग किया गया। धीरे—धीरे ज्यामितिय आलेखनों का स्थान अंगूर की बेल तथा तितली आदि ने ले लिया, परन्तु भारत में मुगल शासकों ने अधिक उदारता। इस उदारता के उपरान्त भी चित्रकला को धार्मिक स्थान नही प्राप्त हो सका मुगल कृतियों में आध्यात्मिक—पक्ष प्रबल नही हो सका मुगल चित्रकार बाध्य वैभव —रूप तथा सांसारिक उपकरणों तक सीमित रह गये। यद्धपि शबीह लिखते समय चित्रकार ने व्यक्ति के चरित्र को सच्चाई के साथ अंकित कर दिया परन्तु आत्मा का पक्ष कलावार की कृतियों में नही आ सका चित्रकार बादशाह के चारो ओर के जीवन तथा या दरबारी इतिहास तथा सीमित रहा और जन साधारण की ओर उसकी दृष्टि न जा सकी।

2. **दूसरी विशिष्ट शैली—** कहा है जो कलाकार की अपनी निजी शैली होती है। जैसे मुगल शैली, यहां पर हम लोग मुगल शैली पर प्रकाश डालेगें।

मुगल सस्ंकृति :— भारत में मुगलों का शासन लगभग 1526 ईद्ध से 1803 ई0 तक के मध्य था और मुगल काल में भारत के संस्कृति में बहुत से परिवर्तन हुये तथा मुगलों के सम्पर्क के कारण बहुत से नई बाते भी भारतीय संस्कृत को प्राप्त हुई जो मुगल काल में बनी चित्रकारी में भी दिखाई देती है।

मुगल काल में मुख्यतः निम्न राजा हुये।

1. 1526 —30 — बाबर
2. 1530 — 40 — हिमाँयु
3. 1555—56
4. 1556 —1605— अकबर
5. 1605 — 27 — जहाँगीर
6. 1627—58 — शाहजहाँ
7. 1658 — 1707 — औरंगजेब

मुगल काल में चित्रण :—

1. मुगल काल में पहली बार लक्ष्य और सौन्दर्य को महत्व दिया गया।
2. मुगल काल से पहले बने चित्रों में धार्मिक तथा अप्राकृतिक चित्रण भारत में देखा जाता है और मुगल काल में चित्रों प्राकृतिक और Secular को स्थान दिया गया।
3. मुगल ाल में चित्रण मुख्यता अकबर और जहॉगीर के शासना काल में बनाए गये।
4. मुगल काल में पहल बार चित्रण का वर्णन मिलता है।
5. मुगल चित्रकारों के बारे में दो क्षेत्रों से पता चलता है।
   (i) अकबर के जीवनी से
   (ii) जहाँगीर के स्मरणीय से।
6. मुगल चित्रण में हमें कुछ कलाकारों के सबीह मिलते है।

मुगल चित्र शैली में विदेशी प्रभावः— मुगल कालीन चित्रकारों में अधिकांश भारतीय तथा अन्य फारसी चित्रकार रहे होगे इनकी कृतियों में कुछ ही अंशों में फारसी प्रभाव और किसी सीमा तक भवन, पहनावा, वृक्ष आदि भारतीय है। इन चित्रों पर यूरोपिय प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है जिससे पता चलता है की एक ही चित्र में किस प्रकार भारतीय, यूरोपिय, फारसीया, ईरानी प्रभाव दिखाई पड़ता है। यही मुगल शैली है। यह चित्र मुगल शैली के आरम्भिक उदाहरण है। इन चित्रों में हिमायुँ के समय की फारसी शैली का प्रभाव अभी भी अधिक दिखाई पड़ता है। परन्तु बाद में अकबर ने भारतीय जीवन का समावेश किया और 1570 ई0 के पश्चात् अकबर ने शन्ति से चित्रकला को अधिक समय और संरक्ष्ण प्रदान किया।

आइने अकबरी में अब्बुलफजल लिखता है कि ''सम्राट ने अपने यौवन बाल के आरम्भ से ही चित्रकला के लिए बहुत रूचि प्रदर्शित की और श्रीमान ने उसको मनोरंजन और ज्ञान का साधन माना।''

अकबर ने फारसी ही नहीं बल्कि हिन्दु महाकाव्यों– ''महाभारत, रामायण, योगवसिष्ठ रामायण'' आदि ग्रन्थों के आधार पर भी चित्र बनवाये और उनका फारसी भाषा में अनुवाद कराया गया। इसी समय महाकवि केशव की 'रसिक प्रिय' पर अतुलनीय चित्र बनाए गए।

इस प्रकार हिन्दुओं की भारतीय चित्रकला तथा मुसलमान तिमरूदी या फारसी–ईरानी कला का पूर्ण सम्मिश्रण हाता चला गया। क्योंकि अकबर की चित्रशाला में बहुत से भारतीय चित्रकारों को फारसी चित्रकला सिखाई गई और इस आदान प्रदान से गुजराती, राजस्थानी, और अजन्ता की भित्ति चित्र परम्परा का ईरानी या फारसी शैली पर भी प्रभाव पड़ा। यह भारतीय ईरानी या भारतीय तिमरूदी या भारतीय फारसी शैली मुगल शैली में पगणित हो गई। इसमें भारतीय प्रकृति और मुगल दरबार की अपनी निजी विशेषताये दिखाई पड़ती है और किसी प्रकार भी इनको फारसी शैली की भारतीय शाखा नही मानना चाहिए।

उदाहरण स्वरूप – अकबर के समय में तैयार की गई 'बाबर नामा' की एक सचित्र प्रति 'राष्ट्रीय संग्रहालय' नई दिल्ली से सुरक्षित है। इस प्रति को जुज 116 में चौबीस चित्र है, जिन पर खेम का लेख है, इससे ज्ञात होता है कि यह प्रति अकबर के शासन काल के ब्यालीसवें (42) वर्ष अर्थात् 1598 ई0 में तैयार की गई। इस प्रति में कुल 183 चित्र है और इस प्रति में निम्न 481 देशी, विदेशी चित्रकारों के नामों का उल्लेख मिलता है। कई चित्रों पर चित्रकारों का न ाम नही है इस प्रति में कुल 183 चित्र है और इस प्रति मं निम्न 481 देशी, विदेशी चित्रकारों के नामों का उल्लेख मिलता है। कई चित्रों पर चित्रकारों का नाम नही है इसी प्रति पर शाहजहाँ के हस्ताक्षर है, जिससे यह स्पष्ट है कि यह प्रति शाही पुस्तकालय की होगी इस प्रति के चित्रों में आकृतियों की बनावट तथा एक चश्म चेहरे फारसी शैली के है परन्तु सपाट रंगों का प्रयोग और लाल, रंग की अधिकता भारतीय शैली की है इन चित्रों में पहनावा अकबर कालीन है।

सन्दर्भ

1- Moti Chandra, Technique of mughal Painting : U.P. historical Society, Lucknow. 1949

2- Kramrisch, Stella : The Art of India : Traditions of Indian sculpture painting and Architecture 1951 .

3- Rai Krishna Dasa : Anware Suhaili (Jyar – l – Danish)

4- Das. A.K. Splendour of Mugal Painting 1986
By - प्रेम शंकर द्विवेदी : भारद्वाज राधाकृष्ण

5- भारतीय चित्रकला में व्यकित चित्रण, 1993
By – सोम प्रकाश वर्मा

6- मुगल चित्र शैली

7- द्विवेदी प्रेम शंकर, भारतीय चित्रकला को बनाने की पद्धति , 1990

8- शर्मा, मथुरा लाल, अकबर नामा, 2000

9- शर्मा मथुरा लाल : तजुक–ए जहाँगीरी : स्वय , 20000
By – शर्मा मथुरा लाल

10- अकबर नामाः अबुल फजल कृत, 2000

11- सिंह, मधुवीर : जहाँगीर नामा, 1996

प्राचीन भारतीय कला और साहित्य में अप्सरा की भूमिका

(देव प्रकाश, शोध छात्र, शोध छात्र, गॉधी शताब्दी स्मारक पी0जी0 कालेज, कोयलसा, आजमगढ)

प्राचीन काल में अप्सरा का बहुत महत्व था इसलिए अप्सरा का उल्लेख हमारे ग्रन्थों तथा मूर्तिकला में देखने को मिलता है। अप्सरा को वैभव का प्रतीक माना जाता है। अप्सरा का सम्बन्ध देव, दानव तथा श्रषिमुनियों के साथ अधिक देखा जा सकता है। अप्सरायें बहुत ही सुन्दर होती थी। ऐसा उल्लेख विभिन्न ग्रन्थों में देखने को मिलता हैं। इन्हीं ग्रंन्थों का अध्ययन कर अप्सरा को समझने का प्रयास किया जायेगा।

अप्सरा का अंकन हमें वेदों में भी देखने को मिलता है, अथर्ववेद में गन्धर्वों के साथ अप्सराओं को भी वर्णन हुआ है[1] सोम इनके राजा हैं। शतपथ में इन्हें हंसिनी के रूप में प्रदर्शित किया गया है। जो पानी पर तैरती रहती हैं।[2] रामायण में कहा गया है कि अप्सराए देवों के प्रसन्नता के अवसर पर गन्धवों के साथ नृत्य आदि करती है और प्रत्येक कार्य में देवों की सहायता करती है।[3] महाभारत में अप्सराएॅ इन्द्र की वरदानी सेविकाएॅ[4] देवारण्यविहारिणी[5] देवप्रतिमा[6], इन्द्र की कन्याएं[7] कही गयी हैं।

ये अनेक प्रकार के वस्त्राभूषण तथा दिव्यमालाएँ धारण करती है।[8] अपने केशों को ऊपर कर पाँच भागों में विभक्त कर बाँधती है।[9] वे अपने सौन्दर्य तथा नृत्य से तपस्वियों की तपस्या भंग कर इन्द्र की रक्षा करती है।[10] उर्वशी इन्द्र की सभा की सुन्दरी, सर्वश्रेष्ठ अप्सरा थी। नाच गाकर प्रसन्न करना उसका कार्य था।[11] पुराणों में सहजन्या, विश्वाची, उर्वशी तथा त्रिलोतमा आदि के नामों के प्रसंग प्राप्त होते हैं।[12] ये अपसराएँ समुद्रमन्थन के समय समुद्र से प्रकट हुई थीं। ये बड़ी सुन्दर होती हैं। वे सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित तथा गले में स्वर्ण हार पहने थीं। उनकी चाल तथा चितवन सुन्दर थी।

ततश्याप्सरसों जातानिष्ककण्ठ्यः सुवाससः।

रमण्यःस्वर्गिणनं कल्गुगतिलीलावलोकनैः ।। [13]

अप्सराएँ स्वर्ग की नर्तकियाँ हैं। अपने नृत्य से देवों को रिझाना यही इनका कार्य हैं। इनेका सम्बन्ध किसी एक विशेष व्यक्ति से नही रहता है और न ही इनका कोई पति ही होता है। इनका सम्बन्ध गन्धर्वों के साथ अधिक रहता है। इसके अतिरिक्त पृथ्वी के वीरों के साथ भी स्थापित हो जाता है। जब वे स्वर्ग प्राप्त करते हैं। सायण का मत हैं कि अप्सराएँ दैवी जाति की स्त्रियाँ हैं। चित्ररथ इनके भी स्वामी है। अप्सराओं की सख्ंया 7 कही गई हैं। जिनमें उर्वशी,रम्भा, विदुला तथा तिलोत्मा का नाम प्रमुख है –

रम्भा च विपुला चैव उर्वशी च तिलोत्मा।

मध्यक्षामसमायुक्ताः पीनोरूजधन स्तनाः।।[14]

विष्णुधमोत्तर इन्हें खेतकर्म वाली सुन्दरी कह कर देवयोषा शब्द का सम्बोधन करता है।

आवाहयिष्याभि तथैवाप्सरसः शुभाः।

समायान्तु महाभागा देवयोषा समोज्जवलः।।[15]

यक्ष जो विशेषकर कुबेर देवता से सम्बन्धित है। एक प्रकार के वामन अथवा अप्सरा थे जिन्हे ग्रामीण पूजते थे। ईसाब्द से पूर्व उनकी उपासना बहु–प्रचलित थी, परन्तु हिन्दुओं के बड़े देवताओं की पूजा की व्यापकता के साथउनकी महत्ता लुप्त हो गयी, उन्हें मनुष्यों का सुहदय माना जाने लगा था, परन्तु उनकी नारियाँ कभी–कभी ईर्ष्यालु होती थी और बच्चों को खा जाती थीं। [16]

गन्दर्भ सभी पुरूष थे। उनके नारी सहयोगी रूप अप्सराएँ थीं। जो वैदिक युग में जल से सम्बधित थी, किन्तु बाद में स्वर्गान्तिरित कर दी गयी। वे सुन्दर थीं और कामुक भी और तयोलीन श्रषियों को प्रलोभन में डालना उनका विशेष आनन्दमय व्यसन था। इस प्रकार अप्सरा मेनका ने श्रषि विश्वामित्र को लुब्ध किया गया तथा शकुन्तला को गर्भ में धारण किया जो कालिदास के प्रसिद्ध नाटक की नायिका थी। अन्य अप्सरा जिसकी कथा विख्यात है उर्वशी थी जो कालिदास के एक अन्य नाटक की नायिका है, एक मर्त्यराजा पुरूरूवा के प्रति जिसके प्रेम की कथा उतनी प्राचीन है, जितना प्राचीन ज्ञग्वेद। कभी–कभी अप्सराएँ उन देवियों के रूप में प्रकट होती है जो युद्ध भूमि में मृत योद्धाओं को स्वर्ग ले जाती हैं कि उनके प्रेमी बनें। ऐसा माना जाता है कि सभी अप्सरायें इन्द्र की सेवा में रहती है। इन्द्र की आज्ञा से वे पृथ्वी पर श्रषियों का तप भंग करने के लिए आती हैं। श्रीमद्‌भागवत में ऐसा प्रसंग आता है कि मार्कण्डेय श्रषि का तप भंग करने के लिए पुज्जिक स्थली नाम की अप्सरा आयी। वह अत्यन्त सुन्दरी थी। ध्यानावस्थित श्रषि के समक्ष आकर वह गेंद खेलने लगी। पीन स्तनों के भार से उसकी पतली कमर लचक जाती थी। उसकी चोटी के सुन्दर पुष्प एव मालायें गदी हुई थी जिससे पुष्प गिर–गिर कर पृथ्वी पर फैल रहे थे। उसकी दृष्टि मोहक थी। कभी–कभी वह तिरछा चितवन से इधर–उधर देख लेती थी। कभी गेंद के साथ उसके नेत्र आकाश की ओर उठ जाते, कभी धरती की ओर आ जाते, कभी नेत्र हथेली पर गेंद पर स्थिर हो जाते थे। वह बड़े हाव–भाव प्रदर्शित करती हुई गेंद की ओर दौड़ रही थी। कमर में सुन्दर करधनी थी और वह अत्यन्त महीन रेशमी साड़ी पहने थी। जो वायु के झोंके के साथ हिल रही थी।[1] इसके अतिरिक्त इसके साथ जो अन्य अपसराएँ थी वे हास–भाव प्रदर्शित करते हुए नृत्य कर रही थीं।

ननृतुस्तस्यपुरतः स्त्रियोऽथ गायका जगुः ।।[17]

प्रतिमाएँ अत्यन्त पवित्र मानी जाती है। भगवान ने स्वयं कहा है कि गन्धर्वों में विश्वास और अप्सराओं में ब्रह्मा जी के दरबार की अप्सरा पूर्व चित्ति प्रसिद्ध है।[3] शिल्परत्न ग्रन्थ में अप्सराओं को रेशमी वस्त्र पहने हुए पयोधर तथा पीन (मोती) जघनस्थन, पतला कटिप्रदेश, किच्चित मधुर हास्ययुक्त तथा सुन्दर कटाक्ष वाली कहा गया है।[18]

अप्सराओं की प्रतिमाएँ भी प्रतिमा कला की प्राण हैं। पत्थरों में उत्कीर्ण अप्सराओं की प्रतिमाएँ यत्र तत्र सर्वत्र दृष्टिगत् होती हैं। भरहुत के अवशेष में सामदेव की मृत्यु के बाद देवों द्वारा आनन्द मनाए जाने का चित्र प्रदर्शित किया गया है। इसमें मित्रकेशी, अलम्बुषा तथा सुभद्रा तथा पद्‌मावती आदि प्रतिमाएँ नृत्य कर रही है। इनकी मुख मुद्रा तथा भावभंगिमाबड़ी सुन्दर है।[19] खजुराओं के कन्दरियॉ महादेच मन्दिर में आँख बन्द किये हुए तथा शान्त मुद्रा में खड़ी हुई दो अप्सराओं की प्रतिमाएँ है। पहली प्रतिमा में केश किसी वस्तु से ढके हैं। शरीर पर मोतियों के आभूषण हैं।

दूसरी प्रतिमा खड़ी है। कटि में पड़ी मेखला की लड़ी घुटनों से नीचे तक लटक रही है।[20] लक्ष्मण मन्दिर की दक्षिणी बाह्यय भित्ति पर उत्कीर्ण अप्सरा की प्रतिमा की बड़ी सुन्दर है। शरीर पर बहुत आभूषण हैं। कण्ठ मुक्ताहारों से भरा हैं। कटि मेखला की अनेक लड़े हैं। अप्सरा अपना दाहिना हाथ सिर के पीछे किए है और उसका बायाँ हाथ दाहिने वक्षस्थल के समीप है।[21] लक्ष्मण मन्दिर की बाहरी पश्चिमी भित्ति पर जृम्भणभाव में संलग्न एक अप्सरा की प्रतिमा उत्कीर्ण है। इसके

दोनों हाथ उपर की ओर आधें उठे हुए हैं। शरीर अगड़ाई के कारण तिरछा है। चित्र बड़ा स्वाभाविक है।[22] आदिनाथ मन्दिर में एक नृत्य करती हुई अप्सरा की प्रतिमा है।[23] पार्श्वनाथ मन्दिर में एक नेत्र में अंजन लगाती हुई।[24] और एक पैर से काँटा निकालती हुई अप्सरा का प्रर्दशन है।[25] सभी प्रतिमाएँ बड़ी स्वाभाविक है। प्रतिमाएँ सदैव नृत्य वाद्य का आनन्द में ही संलग्न रहती है। भरहुत में अलम्बुषा, मिश्रकेशी, सुदर्शना तथा सुभद्रा इन चार अप्सराओं की प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। सभी प्रसन्न मुद्रा में हैं।[26] किसी उत्सव का वातावरण प्रतीत होता है क्योंकि इसके लिए साडिक सम्मदं तुरंदेवानाम् पाठ का प्रयोग हुआ है।[27] साडिक शरद ऋतु में मनाया जाने वाला सदृक पर्व ही है। वे सभी प्रसन्नता से उस पर्व पर देवों की सभा में वाद्य संगीत प्रस्तुत कर रही है।

संदर्भ

1. महा0आदि0 133/53
2. महा0वन0 134/12
3. महा0आदि0 130/6–7, 71/27–28, 35
4. महा0वन0 46/4–8
5. वि0पु0 3/6/17, श्रीमद्भगवत पुराण 8/8/4–6
6. श्रीमद्भगवत पुराण 8/8/7
7. सुप्रभेदागम–दृष्टव्य–राव, गो
8. वि0घ0 103/20
9. क्रीडन्त्याः पुज्जिकस्थल्याः कन्दुकैः स्तनगौरवात्।
10. भृशमुद्रिग्नमध्यायाः केशविससितस्रजः।।
11. इतस्तेलाभ्रमद्दृष्टेश्चलन्त्या अनुकन्दुकम।
12. वायुर्जहार तद्वासः सूक्ष्मं श्रटितमेखलम्।। श्रीमद्भगवत्।।12/8/16
13. श्रीमद्भगवत्।।12/8/16
14. विश्वावसुः पूर्वचित्तिर्गन्धर्वाव्सरसामेश्म् ।। श्रीमद्भगवत्।। 11/16
15. शिल्परत्नः श्रीकुमार, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज, 1922ण 45/13
16. बैनर्जी, जे. एन. डे. दि. आ. पृ. 353
17. खजुराओ पृ0 प्ले0 8 और 9
18. वही पृ0 प्ले0 35
19. वही पृ0 प्ले0 39
20. वही पृ0 प्ले0 50
21. वही पृ0 प्ले0 52
22. वही पृ0 प्ले0 55
23. अग्रवाल, वासुदेव शरण, हिस्दुस्तान एकेडमी, प्रथम 1962, पृ0 136,
24. वही पृ0 136
25. गन्धर्वात्सरसः सर्वान्पुण्यजनान्पितृहन्, अथर्ववेद भाग। संस्कृति संस्थान बरेली, द्वितीय संस्करण, 1962, 8/8/15
26. अर्थर्वेद 8/8/15
27. [2]शत0ब्रा0 11/5/1/4

भारत में मूल्यपरक शिक्षा का मानव जीवन पर प्रभाव

(श्री मनोज कुमार तिवारी, सहायक प्रोफेसर, श्री पी.एल़. मेमोरियल पी.जी. कालेज, बाराबंकी (उ0प्र0), रतनेश कुमार, एम.एड.छात्र, प्रथम वर्ष)

सारांश– आज समाज में चारों ओर नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों में गिरावट देखने को मिलती है, इस गिरावट के फलस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में भी गिरावट देखने को मिलती है। आज समाज में सामान्य आदमी की यह धारणा है कि मेहनतकश एवं ईमानदार व्यक्ति पिस रहे हैं और झूठ एवं फरेब का रोजगार करने वाले फल–फूल रहे हैं। ईमानदार व्यक्ति को मूर्ख माना जाता है। इस धारणा ने शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासनहीनता , श्रम के प्रति अनास्था, स्व–कर्तव्य के प्रति उदासीनता , अनुत्तरदायित्व आदि को जन्म देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। मूल्यों का ज्ञान एवं आचरण हमारे लिए आवश्यक है। हमारे लिए मूल्यों का ज्ञान ही पर्याप्त नही है अपितु मूल्यों को आचरण में लाना अधिक महत्वपूर्ण है। मूल्य वही सार्थक होते हैं जो सत्यम्, शिवम् एवं सुन्दरम् से ओत–प्रोत होते हैं और व्यक्ति के व्यवहार में समाहित हो जाते हैं। मूल्यों की अवधारणा से तात्पर्य सिद्धान्त , आदर्श तथा नैतिकता से है। मूल्य परक जीवन का अभ्यास आवश्यक होता है, जीवन की सार्थकता को खोजकर उसको प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। मूल्य जीवन के अन्तिम लक्ष्य होते हैं इसलिए शिक्षा मूल्यपरक होनी आवश्यक है।

मुख्य शब्दः मूल्य, समाज, जीवन, व्यवहार, सत्यम्, शिवम् एवं सुन्दरम् आदि।

प्रस्तावना– व्यक्ति के जीवन में मूल्य का विकास समाज के द्वारा होता है। व्यक्ति समाज से पृथक जीवित नहीं रह सकता है। रेमण्ट ने कहा है कि '' **समाज विहीन व्यक्ति एक कोरी कल्पना है।** '' व्यक्ति शिक्षित होते हुए भी अशिक्षित जैसा आचरण व व्यवहार कर रहा है। भारतीय शाश्वत्, सनातन मूल्य निरन्तर कमजोर पड़ते जा रहे हैं। परिणामतः सर्वत्र अनेक दुःखदायी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो रही है। स्वार्थपरता , दंगा, अराजकता, असहयोग , मेनोमालिन्य से व्यक्ति और समाज में कट्टरता, अहंवादिता, द्वेष , ईर्ष्या का प्रादुर्भाव हो रहा है। यह संस्थिति राष्ट्र, समाज और परिवार के बहुमुखी विकास के लिए अत्यन्त घातक है। अतएव आवश्यकता इस बात की महसूस की जा रही है कि मूल्य शिक्षा का ऐसा स्वरूप बनाया जाए कि शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति मूल्यवादी मान्यताओं से सम्पृक्त होकर प्राचीन भारतीय शाश्वत, सनातन मूल्यों का आधुनिकता के साथ समन्वय करते हुए आगे बढ़ सके। आजकल शिक्षा का उद्देश्य मात्र सूचना की प्राप्ति करना, परीक्षा पास करना और डिग्री हासिल करना रह गया है। अतएव व्यक्ति के व्यक्तित्व का बहुमुखी एवं समग्र विकास करने के लिए विविध मूल्यों का ज्ञान प्रदान करने हेतु शिक्षक शिक्षा में मूल्य शिक्षा की महती आवश्यकता है।

मूल्य का अर्थ– मूल्य को अंग्रेजी में Value कहते हैं और Value लैटिन भाषा के शब्द Valere (वैलियर) से बना है। वैलियर का अंग्रेजी में अर्थ है– Ability, utility, importance तथा हिन्दी में अर्थ योग्यता, उपयोगिता व महत्व । मूल्य वह मान है, जिसके आधार पर हम किसी व्यक्ति, वस्तु या भाव व विचार आदि गुण या योग्यता का अंकन करते हैं। मूल्य समाज की रीढ़ होते हैं। आलपोर्ट (1905) के अनुसार '' कोई भी साधन जो संतुष्टि उत्पन्न करता है। '' हमारा जीवन इन्ही मूल्यों के इर्द–गिर्द घूमता रहता है। मूल्य समाज व समय के अनुसार बदलते हैं। मूल्य की तीन विशेषताएँ होती हैं– 1. ये जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में निर्मित होते हैं और शीघ्रता से परिवर्तित नहीं होते हैं। 2. मूल्य सही और गलत को परिभाषित करते हैं। 3. मूल्य स्वयं को सत्य, असत्य, वैध–अवैध अथवा

सही गलत सिद्ध नहीं करते । मानव के दैनिक व्यवहार एवं क्रियाओं को नियंत्रित एवं मार्गदर्शित करने का कार्य मूल्य ही करते हैं। प्रत्येक शब्द जो हम बोलते हैं, वस्त्र जो पहनते हैं, जिस प्रकार से हम एक दूसरे के साथ अंतःक्रिया करते हैं, हमारे प्रत्यक्षीकरण आदि में मूल्य प्रदर्शित होते हैं। मूल्य, रूचि, विकल्प, आवश्यकता, इच्छा एवं वरीयता के आधार पर निर्मित होते हैं। लोगों का व्यवहार हमें उनके मूल्यों को जानने में सहायता करता है। सामान्यतः मूल्य व्यक्ति के स्वयं के चयन द्वारा निर्धारित होते हैं। मूल्य मुख्यतः तीन आयामों पर आधारित होते हैं–

1. व्यक्ति का आत्म
2. आत्म एवं अन्य व्यक्ति जिनके साथ वे प्रतिदिन अंतः क्रिया करते हैं।
3. सामाजिक मानक ।

मूल्य का वर्गीकरण –

मूल्यों का वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है। पेरी ने मूल्यों को नकारात्मक, सकारात्मक, विकासवादी, वास्तविक आदि श्रेणी में विभक्त किया है। कुछ विद्वानों ने मूल्यों को सौन्दर्यवादी, धार्मिक, सुखवादी , आर्थिक, नैतिक व तार्किक मूल्यों में बाँटा है। सिंह (1997) अरवन के अनुसार मूल्य विभाजन निम्न प्रकार है–

(अ) जैविकीय मूल्य – इनमें शारीरिक , आर्थिक तथा मनोरंजन सम्बन्धी मूल्य आते हैं।

(ब) परा– जैविक मूल्य– इसमें बौद्धिक , धार्मिक तथा सौन्दर्यात्मक मूल्य आते हैं।

(स) सामजिक मूल्य– इसमें चारित्रिक मूल्य आते हैं। शर्मा, अन्जना (2011) जे0ई0टर्नर ने मूल्यों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है – (अ) अमूर्त मूल्य – इसमें वस्तुगत रूचियाँ शामिल हैं। (ब) मूर्त मूल्य– विचारगत रूचियाँ शामिल हैं। सक्सेना (2000) , में आलपोर्ट एवं वर्नन ने स्प्रेंगर के वर्गीकरण के आधार पर मूल्यों को छः श्रेणियों में विभक्त किया है–

अ– सैद्धान्तिक मूल्य– सत्य आधारित कार्यों में रूचि लेना।

ब– आर्थिक मूल्य– उपयोगी, व्यवहारिक तथा द्रव्य जनित कार्यों में रूचि लेना ।

स– सौन्दर्यात्मक मूल्य– कलात्मक पहलुओं में रूचि लेना।

द– सामाजिक मूल्य– दूसरों की सहायता में रूचि लेना।

य– राजनैतिक मूल्य–पद , प्रभुत्व तथा शक्ति रखने में रूचि।

र– धार्मिक मूल्य– आध्यात्मिक कार्यों में रूचि लेना।

इस वर्गीकरण के अतिरिक्त भारत में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली(National Council of Educational Research and Training, NCERT) ने अपनी मूल्यों की सूची में 83 मूल्य बताये हैं जिनमें वैयक्तिक, शैक्षिक, सामाजिक, चारित्रिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक तथा सौन्दर्यात्मक आदि प्रमुख मूल्य हैं।

मूल्य शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व –

मूल्यों का हमारे जीवन में अत्यधिक महत्व है। मूल्य की शिक्षा आज देश के सभी नागरिकों को विशेषकर शिक्षकों के लिए विशेष चुनौतीपूर्ण बन गयी है। आधुनिकता वादी मानव ने एक ओर विज्ञान के क्षेत्र में बहुत प्रगति की है वहीं दूसरी ओर वह सम्पूर्ण मानवता को मिटाने पर तुला है। यह एक नकारात्मक प्रवृत्ति है। एक ओर जहाँ मनुष्य चाँद पर पहुँच गया है , वहीं दूसरी ओर जगह– जगह मानवता के विनाश के प्रयास किये जा रहे हैं।

शिक्षार्थी वह बीज है जो अपने अंदर समस्त मूल्यों के विकास की संभावना को समेटे हुए है और शिक्षा वह परिवेश है जो इस बीज को खाद–पानी देकर उसे विकसित होने का अवसर प्रदान करती है। इन दोनों के योग से ही मूल्यों की उत्पत्ति और विकास हो सकता है। शिक्षा समाज की वह सीढ़ी है जिस पर पाँव रखकर व्यक्ति अपने संस्कारों को संवारता है और शिक्षा को दिशा प्रदान करता है। महान व्यक्ति के जीवन के उद्देश्यों का प्रायः समाज के सभी व्यक्तियों द्वारा अनुकरण किया जाता है। शिक्षा, समाज तथा व्यक्ति, तीनों मिलकर यह निर्धारित करते हैं कि अमुक काल में व्यक्ति तथा समाज का कल्याण किन बातों पर ध्यान देने से संभव है। '' राष्ट्रीय पाठचर्या की रूपरेखा (2005) में भी विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों पर मूल्यों के विकास की बात कही गयी है'' प्रश्न उठता है कि मूल्यों के विकास हेतु पाठ्यक्रम का निर्माण कौन करें?कैसे हो? क्रियान्वयन कौन करें? निःसंदेह यह सभी कार्य शिक्षकों द्वारा ही किये जा सकते हैं, परन्तु इसके लिए शिक्षकों में स्वयं के लिये वांछित मूल्यों की स्थापना होनी आवश्यक है तभी वे अपने शिष्यों में इन मूल्यों के विकास के लिये तत्पर होगें। आज भारत के युवावर्ग को ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो उनमें सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को अपने जीवन में अपनाने को प्रेरित करें तथा वे मानवता पर खरे सिद्ध हो सके, निःसंन्देह विद्यार्थियों में इस प्रकार के मूल्यों को स्थापित करने के लिए शिक्षकों को तैयार करना पड़ेगा। यदि हमारे शिक्षक ऐसे मल्यों से युक्त होंगें तभी वे सशक्त हो सकेगें और अपने विद्यार्थियों में मूल्यों का प्रस्फुटन कर सकेंगें।

मूल्यपरक शिक्षा का मानव जीवन पर प्रभाव –

आज भारत में लोगों के व्यवहार से स्पष्ट पता चलता है कि नैतिक मूल्य विलुप्त होते जा रहे हैं। समाज मूल्यहीन दिखाई पड़ रहा है। मूल्यों के विकास मे अनुकरण विधि और भूमिका निर्वहन विधि अधिक प्रभावशाली है क्योंकि मूल्य आचरण का विषय अधिक है तथा ज्ञान का कम। मूल्यों के विकास में भाव प्रधानता अधिक होती है अर्थात मूल्यों का सम्बन्ध भावनाओं तथ संवेदनाओं से अधिक होता है। वास्तव में यह कहना सत्य है कि कहने से करना अधिक प्रभावशाली है। घर में माता–पिता क्या कहते हैं और क्या करते हैं उनका कर्तापक्ष पक्ष को अधिक प्रभावित करता है। उसी प्रकार एक शिक्षक कक्षा में जो उपदेश देता है उसकी अपेक्षा वह जो आचरण करता है उसका बालकों पर अधिक प्रभाव पड़ता है। इस विवेचन से स्पष्ट है कि मूल्यों के विकास के लिए शिक्षा में शिक्षक की एक अहम् भूमिका है और एक शिक्षक का यह परम कर्तव्य है कि वह उच्च आदर्शों का आचरण करें। मनु ने शिक्षक को ब्रम्ह की छाया बताया है। भारतीय प्रार्थना में '' शिक्षक को ब्रम्ह, सृजनकर्ता विष्णु तथा महेश्वर कहा गया है और शिक्षक को संसार में सर्वपूज्य माना गया है''।

''गुरूब्रम्हा गुरूर्विष्णु गुरूर्देवो महेश्वरः

गुरूः साक्षात्परब्रम्ह तस्मैः श्री गुरूवे नमः।।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शिक्षक को एक जलते हुये दीपक की उपमा दी है और कहा है कि एक शिक्षक जलते हुए दीपक के समान है जो अन्य दीपकों को प्रज्ज्वलित कर सकता है जिनमें तेल और बाती है। छात्रों को उस दीपक की उपमा दी है जिसमें तेल एवं बाती है परन्तु लौ नहीं है। इसलिए शिक्षक उन्हें प्रज्ज्वलित करता है। केवल विषय के ज्ञान से छात्रों के मस्तिष्क पर बोझ नहीं रखता । एडम महोदय ने शिक्षक को एक मनुष्य निर्माता कहा है। सन्त कबीरदास जी ने कहा है–

'' गुरू गोविन्द दोउ खड़े काके लागू पाय।

बलिहारी गुरू आपने गोविन्द दियो बताय।।

उपर्युक्त उक्ति में कबीर दास जी ने सन्देश दिया है कि यदि गुरू(शिक्षक) गुणवान (मूल्यों से युक्त) है तो वह अपने शिष्य को ईश्वर की पहचान करा सकता है।

'' गुरू कुम्हार शिष्य कुंभ है गढ़ि गढ़ि काढ़ै खोट।

अन्दर हाथ सहार दे, ऊपर वारै चोट।।

अर्थात एक गुणवान गुरू(शिक्षक) कुम्हार के समान है और शिष्य (शिक्षार्थी) घड़े के समान है, जिस प्रकार एक कुम्हार अच्छे घड़े का निर्माण के लिये अन्दर से हाथ का सहारा देकर ऊपर बार–बार पीटता है और उसें बची हुई मिट्टी को निकाल देता है। इसी प्रकार एक गुणवान गुरू अपने शिष्य में अच्छे जीवन मूल्यों को विकसित कर लेता है और अवांछित बुराइयों को उसमे से निकाल देता है । अतः यह आवश्यक है कि शिक्षा के माध्यम से छात्र–छात्राओं को मूल्यों की शिक्षा दी जाए और यह आवश्यक रूप से सिखाया जाए कि शिक्षा प्राप्त करके वही व्यक्ति समाज में स्थान पा सकता है जो मूल्यों के प्रति अपनी आस्था तथा विश्वास कायम करें।

सन् 1950 में भारतीय संविधान प्रजातांत्रिक रूप में आया तो उसमें मूल्यों को स्थान दिया गया। 1948–1949 में डा0 राधा कृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय आयोग का गठन किया गया जिसमें निम्न प्रकार की अनुशंसा की गई–1– सभी शिक्षण संस्थाओं में दो मिनट शांत अवस्था में रहने के बाद प्रार्थना सभाओं का आयोजन किया जाये। 2– स्नातक स्तर पर छात्र–छात्राओं को भारतीय साहित्य, धर्म व दर्शन का ज्ञान कराया जाये। 1959 में डा0 श्री प्रकाश की अध्यक्षता मं एक समिति का गठन हुआ जिसकी संस्तुति धार्मिक व नैतिक शिक्षा पर रही। इसमें छात्र–छात्राओं के उचित आचरण पर बल दिया। 1964–1966में डा0एस0कोठारी की अध्यक्षता में गठित कमीशन की अध्यक्षता में गठित कमीशन की अनुशंसा यह रही कि छात्रों में शिक्षा के द्वारा सामाजिक वातावरण की भावना का विकास, नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति निष्ठा, विशिष्ट साहित्य के अध्ययन के भावना का विकास, विभिन्न धर्मों के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन जैसे गम्भीर विषय पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति(1986) में इस बात पर गहरी चिन्ता व्यक्त की गई है कि '' जीवन के लिये आवश्यक मूल्यों का हृास हो रहा है और मूल्यों पर से लोगों का विश्वास उठता जा रहा है शिक्षा पाठ्यक्रम में ऐसे परिवर्तन की जरूरत है जिससे सामाजिक व नैतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा सशक्त साधन बन सकें।'' एन.सी'ई. आर.टी. (NCERT) ने 1988 में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया जिसे प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा का राष्ट्रीय पाठ्यक्रम कहा गया है। पाठ्यक्रम को 1997 में राष्ट्रीय शिक्षा ने स्वीकृति दी तथा उक्त पाठ्यक्रम को विद्यालय

स्तर पर अनिवार्य करने पर बल दिया । इसमें मूल्यों के विकास जैसे ईमानदारी, सत्यता, सहनशीलता, आदि पर तथा शिक्षकों को अन्धविश्वासों से दूर रहने पर बल दिया गया है। मूल्यों का विकास केवल बच्चों तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए बल्कि वयस्कों को भी मूल्य विकसित करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इसी की सहायता से समाज का संतुलित विकास हो सकता है। अतः कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों में मूल्यों का विकास करने के लिए प्रशिक्षण संस्थाओं में अच्छी शिक्षण अधिगम परिस्थितियों का विकास किया जाए।

उद्देश्य–

प्रस्तुत शोध पत्र के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. व्यक्ति के जीवन में मूल्यों का विकास करना।
2. शिक्षकों में वांछित मूल्यों का विकास करना।
3. समाज व राष्ट्र में मूल्यों का विकास करना।
4. भारतीय संस्कृति के प्राचीन मूल्यों का विकास करना।
5. सभी विद्यालयों में पाठयक्रमों में मूल्यों का विकास करना।

निष्कर्ष–

उपरोक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि मूल्य जीवन में महत्वपूर्ण है। एक शिक्षक बालक से अपेक्षा करता है कि उसके व्यवहार में मूल्य परिलक्षित हो, तथा एक शिक्षक से समाज अपेक्षा करता है कि उसके व्यवहार में मूल्य परिलक्षित हो। अतः मूल्य विचारणीय कम अनुकरणीय अधिक है।

मूल्य शिक्षा के सन्दर्भ में सुझाव–

वर्तमान में मूल्यों के विकास के लिए अत्यधिक आवश्यक है कि सत्य, अहिंसा, सदाचरण, प्रेम, शांति, जैसे शाश्वत मूल्यों की प्रतिष्ठा होनी चाहिए ये मूल्य व्यक्तिगत प्रगति के साथ–साथ सामाजिक एवं राष्ट्रीय प्रगति के लिए भी परम आवश्यक है। कुछ महत्वपूर्ण सुझाव निम्नलिखित है–

1. विद्यालयों में विद्यार्थियों को पुस्तकीय ज्ञान के साथ अपनी रूचि, क्षमता, योग्यता स्वःअध्ययन के लिए अवसर भी दिया जाना चाहिए जिससे विद्यार्थी का सामाजिक, मानसिक, बौद्धिक , चारित्रिक व नैतिक विकास हो सके। शिक्षा में सुधार करके ही विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है।
2. शिक्षक का स्वयं का आचरण ऐसा होना चाहिए कि वह विद्यार्थियों के लिए अनुकरणीय बन जाए क्योंकि विद्यार्थियों के लिए शिक्षक एक आदर्श होता है। शिक्षक के अनुरूप ही विद्यार्थी कार्य करता है। इसलिए शिक्षक जिन गुणों को देना चाहता है वह स्वयं उसमें भी व्यक्त होने चाहिए।
3. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के युग में शिक्षा के प्रचार–प्रसार के बाद भी आज जीवन मूल्यों की कमी दिखाई पड़ रही है। अतः विद्यालयों में मूल्यों के विकास के लिए विशिष्ठ व संगठित प्रयत्न किये जाये और प्रशिक्षण संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में मूल्य शिक्षण को अनिवार्य किया जाये।
4. मूल्य आधारित शिक्षा का आधारभूत पाठ्यक्रम राष्ट्रीय ढाँचे पर आधारित होना चाहिए तथा प्राथमिक से विश्वविद्यालय स्तर तक बालकों को मूल्यों शिक्षा के विकास के लिए सभ्यता, संस्कृति, आदशों एव सांस्कृतिक परम्पराओं का ज्ञान कराना चाहिए।

5. शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए जिसमें बालक सत्य के आधार पर अहिंसा द्वारा प्रेम पूर्वक जीवन यापन करना सीखें। शिक्षा के द्वारा मनुष्य को मनुष्य बनाना है जिसमें मूल्यों का समावेश हो जिससे व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र का कल्याण सम्भव हो।

<u>सन्दर्भ–</u>

1ण कुमार सतीश (20019) , इन्कलेशन ऑफ ह्यूमन वेल्यूज इन एजेकेशन।

2ण लोढ़ा, महावीरमल(2013) नैतिक शिक्षाः विविध आयाम, हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

3ण पाण्डेय आर(2000) '' मूल्य शिक्षा के परिप्रेक्ष्य'' आर, लाल बुक डिपो, मेरठ।

4ण राष्ट्रीय पाठचर्या की रूपरेखा, सारांश (2000) नई दिल्ली, एन.सी.ई'.आर.टी.

5ण राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) '' मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार (शिक्षा विभाग) नई दिल्ली।

6ण सिंह, आर. पी. (1997) ''ए स्टडी आफ वेलयूज ऑफ अरबन एंड रूरल एडोलसेंट स्टडेंट इडियन एजूकेशन अब्स्ट्रेक्स ।

7ण शर्मा, एस0एस0 शर्मा अंजना,(2011)''शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय आधार'' एच0पी0 भार्गव बुक हाउस , आगरा।

8ण पेरी एवं सक्सेना , एन0आर0 स्वरूप (2005)'' शिक्षा के सिद्धान्त '' आर0लाल बुक डिपो मेरठ।

भारत में मूल्यपरक शिक्षा का मानव जीवन पर प्रभाव

(छाया सिंह शोध छात्रा, जेएस यूनिवर्सिटी, शिकोहाबाद जनपद, फिरोजाबाद उत्तर प्रदेश)

मूल्य शिक्षा हमारे अंदर नैतिक मूल्यों का विकास करती है। यह सीखने के साथ हमारे व्यक्तित्व में भी विकास करती हैं। अमेरिका मनोवैज्ञानिक लारेंस कोहलबर्ग का मानना था कि बच्चों को एक ऐसे माहौल में रहने की जरूरत है जो दिन प्रति दिन संघर्षो की खुली और सार्वजनिक चर्चा के लिए अनुदित देता है। वैल्यू एजूकेशन की महत्ता हमारे पर्सनेलिटी डेवलपमेंट में सहायक है तथा विद्यार्थी के गुडी में विकास करता है। ये हमारे जीवन में अनुशासन के महत्व को भी बताता है।

मूल्य शिक्षा व्यक्तियों के व्यतित्व विकास पर जोर देती है ताकि उनका भविष्य सवार सके और कथिक परिस्थितियों से आसानी से निपटा जा सके। यह बच्चों को डालना है ताकि वे अपने सामाजिक, नैतिक और लोकतांत्रिक कर्तव्यों को कुशलता पूर्वक संभालते हुए बदलते वातावरण से जुड़ जाए।

- वैल्यू एजुकेशन की महत्ता शारीरिक और भावानात्मक पहलुओं को विकसित करता है।
- यह आपको ढंग सिखाता है और भाईचारे की भावना को विकसित करता है।
- यह देशभक्ति की भावना पैदा करता है।
- मूल्य धार्मिक सहिष्णुता को भी विकसित करता है।

मूल्य शिक्षा को लेकर केई प्रकार की परिभाषाएं देखने को मिलती हैं जिनमें से कुछ नीचे दी गई है–

- लेविन के अनुसार ''लालच की भावना में उच्चतम रुकावट सकारात्मक रूप से शारीरिक दण्ड की प्रक्रिया है और नकारात्मक रूप से विचार और तर्क शक्ति की प्रक्रिया है''।
- गुरुराजा 1978 के अनुसंधान में पाया की ''नैतिक मूल्य का ज्ञान, अभिप्राय पूर्णतया से प्रभावित होता है''।
- बरटोन 1961 के अनुसार ''नैतिक विकास केवल सैयुक्त घटना है नाकी पृथक–पृथक प्रक्रिया''।

मूल्य शिक्षा के फायदे – यह जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त करने और सफल होने के लिए आवश्यक किरदारों को विकसित करने में मदद करता है यह पर्सनेलिटी को आकार देता है जीवन और उसके संघर्षो के प्रति विनम्र और आशावादी बनाता है। यह हर स्थिति में सही और सकारात्मक दृष्टिकोण की ओर आकार देता हैं।

यह आने वाली चुनौतियों वा प्रतिस्पर्धा के लिए मजबूत बनाता है। यह छात्र को उनके जीवन के उद्देश्य को जानने में मदद करता है और उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए सही रास्ता चुनने में मदद करता है। यह छात्रों को दूसरों के प्रति अधिक जिम्मेदारी और समझदारी प्रदान करता है। वे मनुष्य के रूप में अपनी जिम्मेदारी निभाते हुए दूसरों की स्थितियों को समझने और उनके प्रति अधिक संवेदनशील बनने में सक्षम होता है। मूल्य शिक्षा को एक अलग अनुशासन के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए लेकिन शिक्षा प्रणाली के अंदर शामिल होना चाहिए। केवल समस्याओं

को हल करना उद्देश्य नहीं होना चाहिए, इसके पीछे के स्पष्ट के कारण और मकसद के बारे में भी सोचा जाना चाहिए। नीचे इक्कीसवीं सदी में वैल्यू एजुकेशन और आवश्यकता को प्रर्दशित करने वाले प्रमुख बिन्दु दिए गए है–

- मूल्य शिक्षा का महत्व कठिन परिस्थितियों में सही निर्णय लेने में मदद करता है जिससे निर्णय लेने की क्षमता में सुधार होता।
- उम्र के साथ जिम्मेदारियों की एक विस्तृत श्रृंखला आती है। यह कई बार अर्थहीनता की भावना को विकसित कर सकता है और मानसिकता स्वास्थ संबंधी विकारों, मध्य करियर संकट और किसी के जीवन के साथ बढ़ते असंतोष को जन्म दे सकता है। मूल्यासहीक्षा का उद्देश्य कुछ हद तक लोगों के जीवन में शून्य भरना है।
- इसके अलावा जब लोग समाज और उनके जीवन में मूल्य शिक्षा का अध्ययन करते है तो वे अपने लक्ष्यों और जुनून के प्रति अधिक उत्साहित और बंधे हुए होते है। इससे जागरूकता का विकास होता है जिसके परिणाम स्वरूप विचारशील और पूर्ण निर्णय लेते है।
- मूल्य शिक्षा का मुख्य महत्व मूल्य शिक्षा के क्रयायवयन और इसके महत्ता को अलग करने पर प्रकाश डाला गया है। यह अर्थ की भावना को पीछे छोड़ देता है जो किसी को करना है और इस प्रकार व्यक्तित्व विकास में सहायक है। समकालीन दुनिया में मूल्यशिक्षा का महत्व कई गुना है। हमारे लिए जानना आवश्यक हो जाता है कि मूल्य शिक्षा एक बच्चे की स्कूली यात्रा में शामिल है उसके बाद यह सुनिश्चित करने के लिए की वे नैतिक मूल्यों के साथ–साथ नैतिकता को भी आत्मसात करें।

शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक पहलुओं के संदर्भ में बच्चे के व्यक्तित्व के विकास के लिए एक सभी दृष्टिकोण सुनिश्चित करना। देशभक्ति की भावना के साथ–साथ एक अच्छे नागरिक के मूल्य में वृद्धि। छात्रों को सामाजिक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भाईचारे के महत्व को समझने में मदद करना।

माता पिता के बाद गुरू को ही सबसे ऊपर माना गया है। गुरू अर्थात् शिक्षक उस कुम्हार के सामन है जो मिट्टी रूपी विद्यार्थी को एक बर्तन का आकार दे कर एक योग्य व उपयोगी पत्र बना देता है। गुरु किसी भी छात्र को ऐसी शिक्षा दे कर एक बेहतर मनुष्य बना देता है। एक शिक्षा की विद्यार्थी समाज का सबसे मुख्य काम यह है कि वह अपने को वर्तमान और भविष्य को ध्यान में रख कर शिक्षा दे। शिक्षा में परंपरा और नवीनता का मिश्रण होना चाहिए।

हमारे जीवन में मूल्य शिक्षक बहुत महत्व है। मूल्य शिक्षा के माध्यम से हम व्यक्ति समाज से सकारात्मक मूल्य की क्षमताओं और अन्य प्रकार के व्यवहार को विकसित करता है जिसमें वह रहता है। मूल्यशिक्षा का अर्थ है दैनिक जीवन में कौशल व्यक्तित्व के सभी दौरों को समझना। इसके माध्यम से छात्र जिम्मेदारी अच्छी या बुरी दिशा में जीवन का महत्व लोकतांत्रिक तरीके से जीवन यापन, संस्कृति की समझ, महत्वपूर्ण सोच आदि को समझ सकता है। मूल्यशिक्षा का मुख्य उद्देश्य अधिक नैतिक और लोकतांत्रिक समाज बताता है यदि शिक्षा का अर्थ निकालना ग्रहण करना या अर्जित करना है तो मूल्याधारित शिक्षा का अर्थ होगा जो मूल्य हानि की सार या महत्व है उसको निकालना या अर्जित करना शिक्षा में व्यक्ति समाज तथा राज्य के अनिवार्य तत्वों को शामिल किए जाने की आवश्यकता रहती है तभी वह समग्र तथा पूर्ण शिक्षा हो पाती है वास्तव में शिक्षा व्यक्तित्व तथा चरित्र निर्माण का सर्वाधिक सशक्त साधन है।

मूल्य शिक्षा के कुछ सिद्धान्त इस प्रकार है :–

- सहनुभूति
- समानता
- सभी का सम्मान
- स्वस्थ की देखभाल
- गहन सोच
- मूल्यानिर्धारित शिक्षा के प्रकार

मूल्य शिक्षा की विशेषताएं नीचे दी गई हैः–

- मूल्य शिक्षा से छात्रों में सहयोग, समानता, साहस, प्रेम, एवम् करुणा, बंधुत्व, श्रम, गरिमा वैज्ञानिक दृष्टकोड विभेदीकरण करने की क्षमता आदि गुडो का विकास होता है।
- मूल्यशिक्षा छात्रों को एक उत्तरदाई नागरिक बनने के लिए प्रशिक्षित करती हैं।
- मूल्य के संबंध में तीसरा तथ्य यह है की ये समझा द्वारा स्वीकृति हैं।
- मूल्य समाज के अनेक विश्वास आदर्श सिद्धान्त नैतिक नियम और व्यवहार के मानदंड होते है व्यक्ति इनमें से प्रत्येक या कुछ को अधिक महत्व देता है और कुछ को अपेक्षाकृत कम।
- मूल्य व्यक्ति के व्यवहार हो नियंत्रित ईवा दिशानिर्देश करते है।

मूल्य शिक्षा बच्चों के संपूर्ण विकास में योगदान देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है हमारे बच्चों में मूल्यों को एम्बेड किए बिना हम उन्हें अच्छी नैतिकता के बारे में नहीं सीखा पाएंगे क्या सही है और क्या गलत है साथ ही दयालुता साहनुभूति और करूणा जैसे प्रमुख लक्षण भी इंपोर्टेट ऑफ वैल्यू एजुकेशन में है प्रद्योगिकी उपस्थित और उसके हानिकारक उपयोग के कारण एकिस्वी सदी में मूल्य शिक्षा की आवश्यकता माननीय मूल्य के बारे में पढ़ाने से हमम उन्हें सर्वोत्तम डिजिटल कौशल से घटाया जा सकता है।

उन्हें नैतिक करुणा और व्यवहार के महत्व को समझने में मदद कर कसते है। मूल्य शिक्षा छात्रों को जीवन के बारे सकारात्मक दृष्टिकोण प्रदान करती है उन लोगों की मदद करती है उनके समुदाय का सम्माान करने के साथ–साथ अधिक जिम्मेदार और समझ दर बनाती है।

प्राथमिक शिक्षा माध्यमिक शिक्षा से लेकर तृतीय शिक्षा तक विभिन्न स्तरों पर मूल्य शिक्षा की कैसे शामिल किया गया है इसका पता लगाने के लिए हमने कुछ महत्वपूर्ण चरणों और मूल्य शिक्षा के प्रकारों के बार में बताया है जो छात्र के सम्पूर्ण विकास के सुनश्चित करने कें लिए इसे शामिल करना चाहिए।

भारत सहित दुनिया भर में मध्य और उच्च विद्यालय के सिलेक्शन में नैतिक विज्ञान या मूल्य शिक्षा का पाठ्यक्रम शायद ही कभी जीवन में मूल्य के विकास और महत्व पर ध्यान केन्द्रित करते है प्रारम्भिक बचपन की शिक्षा के स्तर पर मूल्य शिक्षा के कुछ प्रकार को शामिल करना। रचनात्मक हो सकता है।

कुछ विश्वविद्यालय ने पाठ्यक्रम शामिल करने या आवधिक कार्यशालाओं का आयोजन करने का प्रयास किया है जो इंपोर्टेस ऑफ वैल्यू एजूकेशन सिखाते है। उनके करियर के लक्ष्य क्या है और दूसरा पर्यावरण के प्रति बढ़ती संवेदनीशलता के बारे में पुनर्विचार करने वाले छात्रों के संदर्भ में सफलता का उत्साह जनक स्टार क्या रहा है।

यह छात्रों के बीच रिश्तेदारी की भावना पैदा करने का एक और तरीका है न केवल छात्र विनियम कार्यक्रम संस्कृतियों की एक सारिणी का पता लगाने में मदद करते है बालकी देशों की शिक्षा प्रणाली को समझाने में भी मदद करता है।

स्कूल में यह पाठ्यक्रम गतिविधियों के माध्यम से मूल्यपरक शिक्षा प्रदान करना बच्चों में शारीरिक, मानसिक और अनुशासनात्मक मूल्य को बढ़ाता है। इसके अलावा कठपुतली, संगीत और रचनात्मक लेखन भी पूरी विकास में सहायता करता है। शिक्षा मूल्यों की अवधारणा पर सदियों से बहस होती रही है। असहमति इस बात पर हुई है की मूल्य शिक्षा को पहाड़ी आवश्यकता के कारण स्पष्ट रूप से पढ़ाया जाना चाहिए या इसे शिक्षण शिक्षण प्रक्रिया में निहित किया जाना चाहिए। ध्यान देने वाली एक महत्वपूर्ण बात यह है की कक्षाएं का पाठ्यक्रम शिक्षण मूल्यों में सफल नहीं हो सकते है लेकिन वे निश्चित रूप से इंपोर्टस ऑफ वैल्यू एजुकेशन की सीखा सकते है यह छात्रों को उनके आंतरिक जुनून और रुचियों की खोज करने और उनकी ओर काम करने में मदद कर सकता है। शिक्षक मूल्यों की प्रकृति व्याख्या करने में छात्रों की सहायता कर सकते है। और इसके लिए काम करना क्यू महत्वपूर्ण है। इस वर्ग पाठ्यक्रम का स्थान, यदि एक होना है तो अभी तो भयंकर बहस चल रही है।

संदर्भ :–

1. सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय (2015), भारतः वार्षिक संदर्भ ग्रन्थ, नई दिल्लीः प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय।
2. लोढ़ा, महावीरमल (2013), नैतिक शिक्षाः विविध आयाम, हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
3. भासकराचार्युल, वाई एंड राव, डी. पुल्ला (2009), द रोल ऑफ टीचर्स इनस्ट्रेंथनिंग वैल्यू एजुकेशन।
4. थामसकुट्टी, पी.जी. एंड जार्ज, मैरी (एड). ह्यूमन राइट्स एंस वैल्यू इन एजुकेशन, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नई दिल्ली।
5. कुमार सतीश (2009), इन्कलेकशन ऑफ़ ह्यूमन वेल्यूज इन एजुकेशन
6. एन.सी.ई.आर.टी. (2012), एजुकेशन फॉर वैल्यूज इन स्कूल्स–ए फ्रेमवर्क, नई दिल्ली।

बौद्ध शिक्षा संस्थायें एवं उनकी कार्य प्रणाली

(आशीष कुमार सिंह, राष्ट्रीय संग्रहालय संस्थान ग्रेटर नोएडा)

प्रारम्भिक काल में परिवार ही शिक्षा के केन्द्र थे जहाँ हर प्रकार के साहित्यिक एवं व्यवसायिक शिक्षा प्रदान की जाती थी, अभिवाक ही अपने बालको के गुरू होते थे, जैसे–जैसे शिक्षा का क्षेत्र बढ़ने लगा और उसमें दुरूहता का समावेश हुआ विशेष योग्यता प्राप्त व्यक्तिगत अध्यापकों के द्वारा शिक्षा प्राप्त करने की प्रथा का जन्म हुआ भारत में शिक्षा के संगठित संस्थाओं को जन्म देने का श्रेय बौद्ध धर्म को है, संघो के रूप में बौद्ध बिहार पहले से ही थें इनमें जब शिक्षा का कार्य हाने लगा तो इनका स्वरूप ही बदल गया।

तक्षशिला

भारत का सबसे प्राचीन केन्द्र था जातकों से ज्ञात होता है कि आचार्यो के अधीन भारी संख्या में विद्यार्थी शिक्षा आप्त करते थें तक्षशिला का पाठ्यक्रम विस्तृत था। वेदत्रयी अष्टादश और व्याकरण यहाँ के मुख्य विषय थें विषयों के चयन में वर्ण की बाध्यता नहीं थी। तक्षशिला अशोक के समय शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था किन्तु पांचवीं शताब्दी में फाहयान के समय तक सभवतः इसका महत्व नष्ट हो चुका था।

नालन्दा

प्राचीन भारत के उतरार्ध में नालंदा विश्वविद्यालय अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त कर चुका था। यहाँ बौद्ध धर्म के अतिरिक्त अन्य शिक्षा दी जाती थी यहां कई विशालकाय भवन थे, जिनमें छोटे–बड़े अनेक कक्ष थे विद्यार्थी छात्रावासों में रहते थें नालन्दा में धर्म यज्ञ नामक एक विशालकाय पुस्तकालय था इसके तीन विभाग थे –

1. रत्न सागर
2. रत्नोदधि
3. रत्नरंजक

नालंदा विश्वविद्यालय में रहने, भोजन व वस्त्र की पूर्ण व्यवस्था थी स्वयं ह्वेत्साग ने यहॉ पर पाँच वर्षो तक अध्ययन किया, नालंदा में उच्च शिक्षा की भी व्यवस्था थी, यहाँ पर शोध कार्य भी होता था। इस विश्वविद्यालय में प्रवेश पाना कठिन था यहाँ ह्वेत्सांग के अनुसार इस प्रवेश परीक्षा में केवल 20 प्रतिश्ज्ञत छात्र ही सफल होते थे। इतने पर भी यहां पर दस हजार विद्यार्थी अध्ययन करते थे तथा 1510 आचार्य अध्यापन का कार्य करते थे भिक्षुओं की उपाधि भी योग्यता के अनुसार दी जाती थी, सर्वश्रेष्ठ उपाधि कुलपति थी, तथा एक अन्य उपाधि पंडित की थी, नालंदा का पाठयक्रम विस्तृत था मुख्य रूप से यहाँ वाद–विवाद ज्ञानार्जन का प्रमुख साधन था यहाँ पर तीनो वेदों श्रृग्वेद, यर्जुवेद, तथा सामवेद का अध्ययन किया जाता था, पालि भाषा अनिवार्य थी।

विक्रमशिला

विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना पाल शासक धर्मपाल ने किया था, यह शिक्षा केन्द्र सर्वाधिक प्रसिद्ध था इस विश्वविद्यालय का समस्त व्यय बड़े–बड़े लोगों के दान और भेंट पर

आधारित था, छः द्वार पंडितों की समिति द्वारा इसका संचालन होता था, जिसका प्रधान स्थाविर होता था, बिहार में वही विद्यार्थी प्रवेश पाता था जो वाद विवाद में पंडितों को पराजित कर देता था द्वार पंडितों की संस्तुति पर राजागण छात्रों को उपाधियों प्रदान करते थें विद्योभूषण के अनुसार ख्याति प्राप्त विद्यार्थियों के चित्रों को दीवार पर अंकित कराकर उन्हें पुरस्कृत किया जाता था (2)

विक्रमशिला के पाठ्यक्रम में तत्वज्ञान, न्याय, व्याकरण, तंत्रशास्त्र एवं तर्क शास्त्र था, औषधि विज्ञान का भी अध्ययन किया जाता था, नालंदा की भाति यहाँ भी आचार्य और शिष्य प्रतिलिपियाँ लिखने में तत्पर एवं एक दूसरे के सहयोगी होते थे।

वल्लभी

गुजरात, काठियावाड़ समुद्र के निकट वलल्लभी एक अन्तर्राष्ट्रीय बन्दरगाह तो था ही साथ ही शिक्षा का भी प्रधान केन्द्र था। इस विहार का निर्देशन आचार्य भदन्त स्थरमति करते थे कथा सरित सागर में उल्लिखित है कि अन्तर्वोदित के दत्त नामक ब्राम्हण ने अपने पुत्र विष्णुदत्त को 16 वर्ष की अवस्था में शिक्षा प्राप्त करने हेतु वल्लमी भेजा (1)

वल्लभी के शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रमों का स्पष्ट उल्लेख नही मिलता इत्सिंग ने मात्र इतना लिखा है कि वल्लभी में शिक्षा समाप्त करने वाले विद्यार्थियों की नियुक्ति राजकीय पदों पर होती थी, जिससे वे अपना जीवन आरम्भ करते थें, यहाँ पर तर्क व्याकरण व्यवहार शास्त्र, दंड नीति, साहित्य आदि लौकिक विषयों की शिक्षा दी जाती थी, क्योंकि इन विषयों के ज्ञान के बिना प्रशासनिक पदों पर कार्य कर पाना सम्भव नहीं था।

ओदन्तपुर

इसकी ख्याति एक विश्वविद्यालय के रूप में थी, पाल वंश के प्रथम राजा गोपाल द्वारा आठवीं शताब्दी में पाटलिपुत्र के आस–पास इसकी स्थापना हुई थी, ओदन्तपुरी बौद्धों के तंत्र विद्या के लिए प्रसिद्ध था, यहाँ के भिक्षु प्रभाकर ने झुदिक व्यंजन वर्णन का तिब्बती में अनुवाद किया था, इस प्रकार ओदन्तपुरी विश्वविद्यालय प्रतिभाशाली भिक्षुओं से सुशोभित था।

श्रावस्ती

बुद्ध के जीवन काल में ही श्रावस्ती नगर बौद्ध धर्म एवं शिक्षा का केन्द्र बन चुका था, प्रमुख श्रेष्ठि अनाथ पिंण्डक ने बुद्ध के समय में नगर के निकट जेतवन विहार का निर्माण करवाया था, जहाँ पर बौद्ध ज्ञान तथा अचार्य की शिक्षा दी जाती थी। इस शिक्षा केन्द्र में स्त्रियों के शिक्षा की भी व्यवस्था का वर्णन मिलता है, संघ में स्त्रियों का प्रवेश भिक्षुओं के आज्ञाओं पर निर्भर था।

उपर्युक्त शिक्षा केन्द्रों के अतिरिक्त मिथिला, काशी, नदिया, जगतदला आदि शिक्षा संस्थान महत्वपूर्ण स्थान रखते थे।

गुरू–शिष्य सम्बन्ध

वर्तमान समय में शिक्षा संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों को जो स्थान प्राप्त है प्राचीन भारत में वही स्थान आचार्य का था, जो एक अकेले शिक्षा संस्थान से कम न था, बौद्ध शिक्षा

में भी आचार्य को समान आदर प्रदान किया गया है जिस प्रकार विद्यार्थी में विनय की अपेक्षा की जाती थी उसी प्रकार आचार्य में श्रेष्ठ विद्वंता, श्रेष्ठ चरित्र एवं स्नेह वांछनीय था। गुरू का कर्तव्य था कि वह अपने शिष्य को अंधकार से प्रकाश की ओर लाये, महावग्ग, द्विव्यावदान तथा मिलिदपन्ह में आचार्य के गुणों को बताया गया है बुद्ध ने यह नियमित रूप से कह दिया था कि उपाध्याय, उपशुन्य, सविहारक को पुत्रवत्त तथा अपने को पिता तुल्य समझेगा, महावग्ग में भी गुरू शिष्य के मध्य पिता–पुत्र की कल्पना की गई है आचार्य शिष्य का मनस पिता है।

<u>पुत्रमिवैनभभिनर्कांक्षन्</u>

गुरू शिष्य के मध्य पिता पुत्र का सम्बन्ध हो जाने पर अध्यापन के अतिरिक्ति आचार्य के और भी कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व हो जाते थे। वह शिष्य के चरित्र पर सदैव ध्यान रखता था।

उसे नैतिक तथा अनैतिक कर्तव्यों को बताता था, बौद्ध आचार्य कितने, उदार एवं विशाल हृदय वाले होते थे इसका अनुमान अलार कलाम के इस वचन से लगाया जा सकता है भन्ते/स्नातक कोधिसत्य आप जैसे आदरणीय और त्रियति को प्रकार हम कितने प्रसन्न है, जो ज्ञान मुझे प्राप्त है वही आपको हैं जो ज्ञान आपको प्राप्त है जैसा मैं हूँ वैसे आप है जैसे आप है वैसे में हूँ भन्ते कृपया इस गुलुकुल के संचालन में आप मेरे सहायक हो इस प्रकार गुरू शिष्य में बड़ा ही घनिष्ठ एवं मधुर सम्बन्ध था, बुद्ध के शब्दों में वे परस्पर सम्मान, विश्वास एवं एकत्रित जीवन के कारण अभिन्न हो गये। बौद्ध शिक्षा पद्धति में जहाँ एक ओर गुरू और शिष्य के मधुर सम्बन्ध थे वही दूसरी ओर गुरू शिष्य के अनैतिक आचरण के लिए दंड भी देता था। बौद्ध शिक्षा पद्धति में शारीरिक दंड का प्रावधान था, बौद्ध शिक्षा पद्धति में वर्ण या जाति का कोई प्रभाव नही था, छुन्दारिक भारद्वाण सूत्र में गौतम कहते है कि जाति मत पूँछो आचरण पूँदो– ग्राम जाविं एच्छु चरण च पूछ्छ स्पष्ट है कि भगवान बुद्ध जातिवाद में विश्वास नही करते थे। प्राचीन काल में गुरूकुल प्रणाली में विद्यार्थी घरों से दूर सादा जीवन व्यतीत करते थं, उन्हें कठोर अनुशासन में रहना पड़ता था, इत्सिंग ने बताया है कि शिष्यों को उपदेश देना, शिक्षित करना, धर्म की अभिवृद्धि के लिए आवश्यक था, प्रतः काल दातून करने के पश्चात् गुरू के पास आकर उन्हें भी दातून देना चाहिए, चरक के अनुसार राजा, माता, पिता या देवता की भाति गुरू का सम्मान छात्रों का परम कर्तव्य था।

तमग्निवच्च देवच्च, राजवच्च, पित्रवच्च, मात्रवच्च, प्रयतः प्रश्विरेत/जैसे कोई पुत्र पिता की, अर्थीदाता की या दास अपने स्वामी की सेवा करता था उसी प्रकार बौद्ध बिहारों में छात्र आचार्यो की सेवा करते थें, महावग्ग मिलिंद पन्ह द्विव्यावदान में गुरू तथा शिष्य के पृथक–पृथक कर्तव्यों का वर्णन किया गया है, छात्रों को किसी की निन्दा करना वर्जित था, किन्तु इससे यह नही समझना चाहिए कि छात्रों को आचार्यो के दुर्गुणों के प्रति आँखें बन्द करने को कहा जाता था, गौतम बुद्ध गुरू के प्रति उच्च सम्मान का उपदेश देते थे पर साथ ही यह भी व्यवस्था देते थे कि अगर आचार्य में बुराईया हो तो शिष्य उनकी ओर एकान्त में आचरण का ध्यान आकृष्ट करें यह बौद्ध शिक्षा प्रणाली की अपनी निजी विशेषता है।

सामान्यजनों की शिक्षा का पाठयक्रम

बौद्ध विहारों में सर्व साधारण की शिक्षा पर अत्यधिक ध्यान दिया गया। इन विहारों में अध्ययन कम तत्काललीन हिन्दू विद्यालयों से भिन्न नही था, विद्यार्थी संस्कृत, व्याकरण और साहित्य के सामान्य ज्ञान से अध्ययन प्रारम्भ करते थे जो कि 7–8 वर्षो तक चलता था।

भिक्षुओं के लिए परिवर्तित पाद्यकम का होना स्वाभाविक ही था, इनके पाठयक्रम में काव्य, साहित्य या ज्योतिष जैसे लौकिक विषय सम्मलित न होकर धार्मिक विषय की शिक्षा दी जाती थी, प्रवज्जया ग्रहण के दस वर्ष पश्चात् तक उपासक अपने आचार्य के प्रत्यक्ष नियंत्रण में ही रहता था, जो उसे पालि व संस्कृत भाषा का अध्ययन कराते थे।

औद्योगिक शिक्षा अथवा तकनीकी शिक्षा

बौद्ध शिक्षा प्रधानतः धार्मिक थी किन्तु हम देखतें है कि बौद्ध काल में औद्योगिक तथा जीवनोपयोगी शिक्षा की अवहेलना नहीं की गई थी, महावग्ग में कातने, बुनने तथा सिलाई करने का साक्ष्य मिलता है, मठ में भिक्षओं को भी इन शिल्पों को सीखने की आज्ञा थी, उन्ही शिल्पों का वर्णन मिलिन्दपन्ह में है, इसके अतिरिक्त आयुर्वेद, शल्य विज्ञान की इस युग में बहुत उन्नति हुई। आयुर्वेद के अतिरिक्त जीवनोंपयोगी कला कौश्ज्ञल में, वस्तु कला में, भी प्रमुख थी नालंदा तथा विक्रमाशिला के विश्वविद्यालय और उनके भ्ज्ञवन तत्कालीन चित्रकला एवं मूर्तिकला तथा अन्य बौद्ध विहार स्तूप व चौत्य के इसके प्रमाण थे, कृषि व्यापार कुटीर उद्योग तथा पशु पालन इत्यादि लौकिक उद्‌देश्यों में जन साधरण उसी प्रकार प्रशिक्षण प्राप्त करते थे जैसा कि वैदिक शिक्षा काल में था।

अनुशासन एवं दंड व्यवस्था

बौद्ध शिक्षा प्रणाली मे नियमों के पालन के शिथिलता या अवहेलना पर शिक्षार्थी को दो प्रकार के दंड देने का प्रावधान था।

कठोर दंड

इसके अर्न्तगत पोराणिक एवं संघ विशेष नामक दंड आते थे।

नरम दंड

इसमें पारैणिक एवं संघ विशेष को छोड़कर बाकी सभी दंड इसके अन्तर्गत आते थे। यद्यपि बुद्ध ने छोटी गलतियों को क्षमा कर देने की सलाह दी थी, परन्तु उनके प्रिय शिष्य आनन्द ने संघ की मर्यादा को अछुण्य बनाये रखने के लिए संघ नियमों की कठोरतता से पालन करने की प्रतिज्ञा की गयी थी। मुख्य रूप से पांच प्रकार के दोष माने जाते थें, पौराणिक संघ विशेष, निस्सग्गिय, पचित्तिय, पातिदेसनीय,

संघों के नियमों का यथावत पालन करते रहने पर ही शिष्य विहार मं रह सकता था। किसी भी शिष्य द्वारा बौद्ध धर्म को छोड़कर अन्य धर्म को स्वीकार कर लेने पर अथवा गृहस्थ हो जाने पर या संघ के बाहर जाकर मर्यादाओं का उल्लंघन करने पर उसे विहार से निष्कासित कर दिया जाता था।

संदर्भ :–

1. सिंह, डॉ0 अनिल कुमार, बौद्धकालीन शिक्षा पद्धति 2008, कला प्रकाशन, बी.एच.यू. वाराणसी।
2. टी. डब्ल्यू. रिजडेविड्स, बुद्धिष्ट इंडिया, कलकत्ता 1950।
3. शर्मा, आर.एस., मैटेरियल बैकमाउन्ड ऑफ ओरिजिन ऑफ बुद्धिष्ट, सेन एण्ड राव (संस्करण) नई दिल्ली, 1998 ।
4. पाण्डे, गोविन्द चन्द्र, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ, 1963 ।
5. झा द्विजेन्द्रनारायण, श्रीमालीकृष्णमोहन, प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली विश्वविद्यालय।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य मे महिलाओ की स्थिति का अध्ययन

(आलोक कुमार सिंह, सहायक अध्यापक, सत्येन्द्र बहादुर इण्टर कालेज राजापुर बिन्धन कुण्डा, प्रतापगढ़)

वर्तमान युग में सम्पूर्ण विश्व एक इकाई के रुप में बदल चुका है। वर्ड वाइड वेब ने दुनिया को एक कोने से दूसरे कोने को जोड़ दिया, जिससे भौगोलिक दूरियां कम हो गयी हैं। आज लोग विश्व में कहीं पर हो लेकिन आपस में विचारों का आदान प्रदान करते हैं। उदारीकरण, भूमण्डलीकरण और निजीकरण ने आर्थिक गतिविधियों को तो प्रभावित किया है, साथ ही साथ सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियां भी अछूती न रह सकी। घरों की चारदिवारों में बंद महिलाएं आज विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति कर रही हैं। वर्तमान समय में महिलाएं समाज में अपनी स्थिति, अधिकारों और समस्याओं को लेकर अधिक जागरूक और सचेत हुई हैं। शिक्षा, नई दिशा, और बदलती हुयी और बदलती हुई परिस्थितियों की वजह से आज महिला, समाज ममें अनेक समस्याओं का सामना करते हुए भी अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा रही है।

भारतीय समाज में आज महिलाएँ सत्ता और प्रशासन के महत्वपूर्ण पदों पर आसीन हैं। वे अपने अधिकारों एवं दायित्वों के प्रति जागरूक होकर प्रगति कर रही हैं। लोकतन्त्रात्मक शक्ति के मजबूत होने से आज महिलाएँ पुरूष के बराबर अपने को समझने लगी हैं। विचार अभिव्यक्ति, रोजगार, कानून के समक्ष समानता के अवसर अवसर, स्वतन्त्रता, रहन–सहन तथा शिक्षा आदि के क्षेत्र में समानता ने महिलाओं को पुरूषों के बराबर खड़ा कर दिया है।

अट्ठारवीं शताब्दी में महिलाओं को मानसिक, शारीरिक, सामाजिक, सांस्कृतिक रूप से पुरूषों से कमजोर माना जाता था। क्योंकि स्त्री में शारीरिक बल कम है, स्त्रियाँ स्वतंत्र निर्णय नहीं ले सकती है वह दूसरों के प्रभाव में आ जाती है। भावनाओं से प्रभावित हो जाती है, स्त्री अपने सांस्कृतिक भावनाओं को उचित रूप से अभिव्यक्त नहीं कर पाती अनामिका सिंह ने कहा – 'स्त्री को यह अवसर ही नहीं मिला' लेकिन महिलाओं के सम्बन्ध में आज ये चर्चा काफी हद तक निरर्थक है। क्योंकि आज महिलाएँ सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ रही है।

स्त्री पुरूष जन्म के समय समान रूप से सक्षम होते हैं। लेकिन संस्कृति स्त्री को कमजोर बना देती है। बोबुआर ने अपनी पुस्तक 'सेकण्ड सेक्स' में लिखा कि– ''महिला पैदा नहीं होती बनायी जाती है।'' अर्थव्यवस्था में महिलाओं का अधिक शोषण होता है ऐसा मार्क्सवादी भी मानते हैं। राजनीति में महिलाओं को हासिये पर रखा जाता है। चूँकि महिलाओं को अवसर नहीं मिलने से प्रभावशाली ढ़ँग से अपने विचारों और कृतियों को प्रस्तुत नहीं कर सकीं।

महिलाओं को बसल बनाने के लिए उनके अधिकारों की रक्षा के लिए संविधान में तो अनेक प्रावधान किये ही गये हैं। लेकिन साथ ही साथ महिला आयोग की स्थापना, पंचायतों में महिलाओं को आरक्षण, लोक सभा और विधान सभाओं में आरक्षण ने महिलाओं को अपने अधिकारों से जागरूक नेतृत्व की क्षमता को जन्म दिया। एक आकड़ों में यूपी बोर्ड की 12 वीं 2022 की परीक्षा में 90.15% लड़कियां पास हुयी, जबकि 81.21% लड़के पास हुए, सीबी0एसई 12 वीं परीक्षा में 94.54% लड़कियां और 91.25% लड़के पास हुए। इस वर्ष 2023 में चार्टर्ड अकाउन्टेट में स्नातक की उपधि 14700 महिलाओं ने सी0ए0 की उपाधि प्राप्त की (44%)।

वर्ष 2023 में उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग द्वारा घोषित परीक्षा परिणाम में एस0डी0एम के 39 पदों में से 19 पदों पर महिलाओं का चयन हुआ और टॉप टेन की सूची में से 8 महिलाओं का कब्जा रहा।

ओलंपिक में पदक जीतने वाली पहली महिला कर्णम मल्लेश्वरी थी। जिन्होंने वर्ष 2000 में सिडनी में हुए ओलंपिक में पदक जीता। एमसी मेरीकाम ने मुक्केबाजी में भारत को पहली बार लंदन ओलंपिक में पद दिलवाया साइना नेहवाल ने भी लंदन ओलंपिक में पद जीता। भारतीय सेनाओं में अभी 9477 महिलायें कार्यरत् है। उनमें थल सेना में 6993 में, चिकित्सा कोर की सेवा में अधिकारी है। जबकि 100 अन्य रैकों में कार्यरत् हैं तथा इसके साथ 748 महिला अधिकारी नौसेना में तथा वायुसेना में महिला अफसरों की सख्या 1636 है।

भारत में रामकृष्ण मुखर्जी के अनुसार स्त्रियों की स्थिति सम्मान जनक नहीं है। थारू और खासी जैसी मातृसत्तात्मक जनजातियों में एव ंनायर जैसी मातृ सत्तात्मक जाति में स्त्री कमजोर है। भारत में एक दशक के बाद मातृ मृत्यु दर 220 से घटकर 2018—20 में 97 प्रति एक लाख पर हुआ, दस साल में अकेले कोविड—19 महामारी के आकड़ों पर नजर डालने से पता चलता है कि घरेलू हिंसा के शिकायतों की सख्या 2020 में लगभग 23700 से 30 प्रतिशत बढ़कर 2021 में 30800 से अधिक हो गई। देश में 46 फीसदी छात्राएं ही कॉलेज जाती हैं। मैलिनोवास्की ने कहा कि महिला व्यक्ति नही हैं, क्योंकि वह स्वतंत्र रुप से निर्णय, घूमना, जीवन साथी का चुनाव नहीं कर सकती, आज भी 15 से 19 वर्ष तक की 46 फीसदी लड़कियाँ खुद से जुड़े फैसले में उनका कोई नहीं निर्णय नहीं होता, 34.54% अशिक्षित महिलाओं का भी यही हाल हैं। भारत के विकसित राज्य जैसे पंजाब और हरियाणा में यौन अनुपात राष्ट्रीय औसत से बहुत कम है। बल्कि एक वर्ष से छः वर्ष की लड़कियों की तुलना में लगातार लड़कों से घटती जा रही है। विश्व बैंक के अध्ययन के अनुसार भारत में एक वर्ष की आयु में लड़कियाँ बहुत अधिक मरती है जबकि जीव विज्ञान की दृष्टि से लड़कों को अधिक मरना चाहिए।

भारत में महिलाओं के विकास के लिए संवैधानिक, वैधानिक और नीतिगत उपाय किये गये है। अनुच्छेद 16 (4) के अन्तर्गत इन्हें नौकरियों में आरक्षण दिया गया है। नीति निर्देशक तत्वों में महिलाओं को समान वेतन, प्रसूति की सहायता, चाइल्ड केयर लीफ के प्रावधान किये गये हैं। भारत सरकार की बेटी बचाओं बेटी पढ़ाओं 2015, स्वयं सिद्धा 2001, स्वधारा 2001—2002, स्वर्णिम योजना 2002, महिला समाख्या योजना 1989, आशा योजना 2005, स्वशक्ति योजना 1998, धनलक्ष्मी योजना 2008, तथा उत्तर प्रदेश में तो प्रशासनिक सेवाओं में 20% आरक्षण, इण्टर पास लड़कियों को बीस हजार रूपया, लैपटाप, उत्तराधिकार के मामले में महिलाओं को समान अवसर, मुफ्त महिला शिक्षा, महामाया बालिका आर्शीवाद योजना निश्चित रूप से सकारात्मक उपाय है।

1993 में संविधान के 73 वें संशोधन में आरक्षण के प्रावधान ने महिला पंचायत पदाधिकारियों में चमत्कारिक प्रभाव उत्पन्न किया यद्यपि आरम्भ में इसके परिणामों का आभास अनेक लोगों को नहीं था। लेकिन दस वर्ष बाद ही महिलाओं ने अपने अधिकारों का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। इसके अतिरिक्त महिला आयोग को संवैधानिक दर्जा दिये जाने से महिलाएँ आज किसी भी तरह के शोषण की शिकायत कर सकती है। सरकार द्वारा प्रारम्भ किया गया, टोल फ्री नम्बर 1090/1091 भी महिलाओं को अपने—अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाता है।

वर्तमान समय में भारत में महिलाओं की स्थिति काफी बदली है। जहाँ 1901 में दो महिला स्नातक थी। वही 2001 में 10 करोड़ महिला स्नातक थी। नीरा देसाई और ऊषा थक्कर के अनुसार

सभी श्रेणियों की महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन हुआ है। इनकी अस्मिता बढ़ी है। पहचान का संकट खत्म हुआ है। न्यायालय ने व्यस्क स्त्री को बिना विवाह के पुरूष के साथ रहने का अधिकार दिये हैं। पिछले कई वर्षो से उदारीकरण, निजीकरण, भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने महिलाओं पर असमान प्रभाव डाला है। जो महिलाएँ अधिक कुशल क्षमतावान है उनके अवसर और सुविधा में बढ़ोत्तरी हुई लेकिन आम महिलाओं की स्थिति कमजोर हुई है।

उदारीकरण ने महिलाओं में पद्यमनी सेन गुप्ता के अनुसार दो प्रकार के परिवर्तन किए एक ओर ये अनेक आर्थिक स्वतंत्रता के प्रति सजग हुई है। दूसरी ओर इन्होंने अपनी दैहिक स्वतंत्रता को अधिक स्थापित किया है। महिलाओं के सम्बन्ध में कहा गया कि अस्लीलता बढ़ी है। बाजार ने इनका यौन शोषण किया है। इस सम्बन्ध में विवाद की स्थिति है। लेकिन सामाजिक संरचना और परिस्थितियाँ आज भी महिलाओं की स्वतंत्रता में बाधक बन रही है।

आज भी हमारे देश में ऐसी महिलाएँ है। जिन्होंने समाज की रूढ़ियाँ औश्र बुराईयों को किनारे रखकर अपने चरित्र का निर्माण किया है। ये महिलाएँपूरे महिला समाज के लिए आदर्श साबित हो सकती हैं। इसके लिए महिलाओं को हर क्षेत्र में आगे आना होगा। आने वाले समय में समाज में समाज के अन्दर महिलाओं की भूमिका अहम होगी। पुरूष प्रधानता रूढ़िवादी सोच महिलाओं पर असर नहीं डाल सकेगें।

संदर्भ :–

1. समाजशास्त्र, गुप्ता एवं, 1960 (भारतीय समाज मुद्दे एवं समस्याएं) पेज 24–30
2. कुरूक्षेत्र– मार्च, 2015
3. सामाजशास्त्र (भारत में समाज–संरचना एवं परिवर्तन) G.K. Agrawal (2003-2014) B.A. PART 1 page 63-79

भाषा संरक्षण में लोक कथाओं की भूमिका

(नीलू कुमारी, शोधार्थी सह असिस्टेंट प्रोफेसर, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग (कुरमाली)
राम लखन सिंह यादव कॉलेज, राँची)

भाषा क्या है? भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, जिसके द्वारा भावनाओं को व्यक्त किया जाता है। जिन ध्वनियों और संकेतों के माध्यम से मनुष्य अपना विचार प्रकट करता है तथा अपनी भावनाओं को दूसरे तक पहुँचाने में सहज महसूस करता है, वही भाषा है। भाषा सिर्फ मनुष्यों तक ही सीमित नहीं है बल्कि पषु–पक्षिओं की भी अपनी विषिष्ट भाषा शैली होती है, जिसके माध्यम से वे अपनी भावनाओं का उद्गार करते हैं।

यहाँ भाषा के विकास में बात करें तो भाषाओं में केवल मनुष्य का ही एकाधिकार नहीं है। पशु–पक्षियों और पेड़–पौधों की भी अपनी भाषा संस्कृति होती है। जिस प्रकार भौगोलिक परिस्थितयों का मानव जाति एवं उसके भाषा एवं संस्कृतियों पर प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार विभिन्न अध्ययनों से यह पता चला है कि पशु–पक्षियों के भाषा एवं संस्कृतियों पर भी भौगोलिक क्षेत्र का प्रभाव रहता है। उदाहरणार्थ – मधुमक्खियाँ अपने सांकेतिक भाषा के माध्यम से कई तरह की सूचनाएँ आदान–प्रदान करती हैं, जिनमें नृत्य–भाषा द्वारा खाद्य–सामग्री प्राप्ती स्थल की जानकारी अपने सहयोगियों को देती है। एक छत्ते में एक सजातीय तत्वों से ही मधु बनाने की प्रक्रिया चलती है किन्तु उसमें एक विजातीय तत्व आ जाये तो मधु के गुण–स्वाद में अंतर आ जाता है। सभी मधु का रंग, गंध और स्वाद में भी फर्क होता है। मधुमक्खियाँ अपने सहवासी मधुमक्खियों को नृत्य द्वारा संदेष देती हैं– यह दो प्रकार का होता है– "एक तो गोलाकार नृत्य होता है तथा दूसरा पुच्छालन नृत्य। गोलाकार नृत्य से वे यह सूचना देती हैं कि खाद्य–स्त्रोत लगभग दस मीटर के भीतर है।"[1] इसके नृत्य में बीच–बीच में रूक–रूक कर नृत्य प्रक्रिया को दुहराती रहती है। मधुमक्खियों के एक और अन्य नृत्य में सौ मीटर से बाहर खाद्य–सामग्री स्थल की भी जानकारी देती है। इसे पुच्छालन नृत्य कहते हैं। यहाँ सोचने वाली बात है कि क्या सारी दुनिया की मधुमक्खियाँ एक ही भाषा का उपयोग करती हैं? इस दिषा में वैज्ञानिकों के अध्ययन द्वारा मालूम हुआ है कि नहीं ऐसा नहीं है। अलग–अलग प्रजाति की मधुमक्खियों की भाषा में अंतर होता है। ठीक इसी प्रकार जिस प्रकार अलग–अलग प्रांत के मनुष्यों की भाषा संस्कृति अलग–अलग होती है।

आस्ट्रिया की काली मधुमक्खियाँ और इटली की इसी प्रजाति की मधुमक्खियों की भाषा शैली में विभिन्नता देखी गई है। ऊपर दिए गए मधुमक्खियों के नृत्य शैली का उदाहरण आस्ट्रिया की मधुमक्खियों का है तो वहीं इटली की मधुमक्खियाँ हँसिया नृत्य करती है जो अर्धचंद्रकार होता है।[2] कहने का तात्पर्य है कि सभी जीवों की कुछ विषिष्ट भाषा शैली होती है, जिनके द्वारा वे आपस में संवाद स्थापित करते हैं।

भाषा विवाद के संबंध में देवषरण सिंह का विचार दृष्टवय है– "बुनियादी शब्द–भंडार और वाक्य–रचना प्रणाली की भिन्नता से ही एक भाषा दूसरी भाषा से भिन्न होती है। कोई भाषा किसी समाज व्यवस्था की आर्थिक बुनियाद का ऊपरी ढ़ाँचा नहीं होती बल्कि यह कई समाज व्यवस्थाओं की सेवा करती है। भाषा का विकास समाज के पूरे विकासकाल से सम्बन्धित है।"[4]

यहाँ सवाल उठता है कि किसी भाषा को संरक्षण की आवष्यकता क्यों होती है तथा इसमें लोक–कथाओं की क्या भूमिका हो सकती है? मेरा यह शोध–लेख इन्हीं सवालों पर आधारित है।

मनुष्य ने अपने जीवन के संघर्षों से जो कुछ भी सीखा और भौगोलिक परिवेष ने उसे जो भी सुविधाएँ प्रदान की उसी के द्वारा उसके संस्कृति का निर्माण हुआ जो उसकी मातृभाषा द्वारा ही संरक्षित और पोषित होकर उसके वंशजों को लोक कथा , लोक गीतों के रूप में मिलता गया है। अगर हमारे पुरखों के इस जीवन संघर्ष की कथा को मिटा दिया जाए तो हमारी सांस्कृतिक धरोहर समाप्त हो जाएगी जिसे हमारी मातृभाषा ने संरक्षित कर रखा है।

हर समाज की अपनी संस्कृति एवं भाषा है जो एक–दूसरे से पृथक होती है। मनुष्य अपनी मातृभाषा के साथ अपनी संस्कृति को भी आगे बढ़ाने का काम करता है तथा वर्तमान और भविष्य में इसके संरक्षण के लिए विभिन्न साहित्यिक एवं गैर–साहित्यिक विधाओं को माध्यम बनाता है, जिसके कारण ही आज हम अपनी भाषा एवं संस्कृति से परिचित हैं। समाज और परिवार द्वारा दी गई षिक्षा नीति जो लोक–कथाओं, पहेलियों, लोकगीतों के माध्यम से हमें हमारे पूर्वजों द्वारा पीढ़ी–दर–पीढ़ी चौक–चौपालों में फुरसत के समय प्राप्त हुई है।

लोक जीवन में लोक कथाओं का स्थान महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इसे कहने और सुनने वाले लोग गाँव के अधिकांश मेहनत मजदूरी करने वाले लोग होते हैं जो कि दिन–भर खेती, पशुचारण तथा जंगली वस्तुओं के संग्रहण आदि जैसे कामों में संलग्न रहते हैं और रात में अपने नाती–पोतों को सुलाते समय लोक कथाओं के द्वारा अपनी संस्कृति और संस्कारों को बताते हैं। इससे भावी पीढ़ी में अपनी मातृभाषा एवं संस्कृति के प्रति प्रेम जागृत होता है।

लोक–कथा, साहित्य का वह माध्यम है जो किसी समुदाय की भाषा द्वारा उसकी सांस्कृतिक–परंपरा, जीवन–दर्षन, रीति–रिवाजों आदि का तो ज्ञान कराता ही है साथ ही इससे उसके प्रवजन के इतिहास का भी पता चलता है। लोक–कथाएँ किसी भी भाषिक समुदाय के लिए महत्वपूर्ण स्थान रखती है। लोककथाएँ उस समाज के प्रत्येक पहलुओं को परत–दर–परत प्रकाषित करती है। हमारे आदि मानव के सभी विष्वास–अंधविष्वास, रीति–रिवाज तथा पूजन–पद्धतियाँ आदि सभी व्यवहार लोक कथाओं के माध्यम से मुखरित होती हैं, जो कि हमारी भाषा एवं संस्कृति के संरक्षण का प्रबल माध्यम बनती हैं।

हम जिस समाज में रहते हैं वहाँ की विभिन्न संस्कृति का आधार हमारी जीवन शैली पर टिका होता है। प्रत्येक समाज की अपनी विषिष्ट जीवन–षैली एवं संस्कृति होती है जिसके अंतर्गत कई वर्जनाएँ/निषेध के साथ–साथ जीवन उत्स मनाने के तरीके होते हैं परंतु संस्कृतियाँ भी निरंतर गतिशील होती हैं और ये गतिषीलता समय के साथ–साथ अपनी आवष्यकताओं एवं विभिन्न संस्कृतियों के अंतर्क्रियाओं का परिणाम होती हैं। ये संस्कृतियाँ ही हैं जो व्यक्ति में संस्कार उत्पन्न करती हैं और बंधुता बढ़ाती हैं।

किसी भी भाषा के लोक साहित्य को लें तो उसमें कुछ शब्द इतने ठेठ/मूल होते हैं जिनका अन्य भाषा में रूपान्तरण करना अत्यंत कठिन होता है और यदि ऐसा किया जाता है तो उसका अर्थ का अनर्थ होने की संभावना ही ज्यादा प्रबल होती है। यहाँ हम लोक कथाओं की बात करें तो हर समाज की अपनी–अपनी लोक कथाएँ हैं जिसे बोलने और सुनाने का अपना लय होता है जो उसी भाषा में अपनी मधुरता और कर्णप्रियता लिए होता है।

भारतीय आर्य भाषाओं के अंतर्गत आनेवाली भाषाओं में मराठी, भोजपूरी, मगही, मैथिली, पंजाबी, बांग्ला, उड़िया, आसामी भाषाओं के शब्द कुरमाली में पाए जाते हैं। संस्कृत के बहुत से

शब्दों को सरल कर कुरमाली में उपयोग में लाए जाते हैं। इसी कारण "डॉ॰ जॉर्ज ग्रियर्सन ने इसे विचित्र भू–भाग के विचित्र व्यक्तियों की भाषा कहा है।"[5]

कुरमाली भाषा झारखंड की अन्य जातिगत भाषाओं की तरह जातिगत भाषा है, परन्तु यह भाषा अपनी जाति तक ही सीमित ना होकर इसके साथ रहने वाले अन्य जातियों द्वारा भी मातृभाषा के रूप में बोली जाती है।

कुरमाली भाषा की लोक कथाएँ गद्य और पद्य दोनों रूपों में पाई जाती हैं। कई लोककथाएँ प्रष्नोत्तर रूप में भी विद्यमान हैं। ये लोककथाएँ षिक्षा का प्रबल माध्यम होते थे और इन्हीं के माध्यम से अपने पीढ़ीयों को षिक्षित और संस्कारित किया जाता था। लोक–कथाएँ मनोरंजन के साथ–साथ समाज में नैतिकता, कर्तव्य बोध, सदाचार, बंधुता, संवेदनषीलता, त्याग आदि गुणों का विकास करती हैं।

कुरमाली लोक कथाओं में षिक्षाप्रद लोक कथाओं का भण्डार है, यहाँ उदाहरणस्वरूप कुरमाली भाषा की लोक कथाओं को ले रही हूँ जो कुरमाली भाषिक लोगों के समाज में प्रचलित आदिम युग से चले आ रहे संस्कृति को दर्शाते हैं –

1. कौआ और करेला

एक बुढ़िया थी, वह चट्टान पर करेला सुखा रही थी। उस समय एक कौआ आया और बुढ़िया से कहा – ऐ बूढ़ी माँ! मुझे करेला दो। मुझे भी खाना है। बुढ़िया ने पहले हाथ–पैर धो आने की हिदायत दी।

कौआ हाथ–मुँह धोने के लिए कुएँ के पास गया और कुँए से पानी की मांग करता है–

कुआँ रे कुआँ पानी दे
ठअरा धवब, कारला खाब।

उत्तर में कुँआ कहता है – घड़ा या चुका ले आओ। तब कौआ कुम्हार के पास जाता है और कहता है –

कुम्हार रे कुम्हार चुका दे
पानी उठाल
ठरा धवब,
कारला खाब।

कुम्हार उत्तर देता है – मिट्टी ला दो तो तुम्हारे लिए चुका बना दूंगा। कौआ मिट्टी से बोलता है –

माटी रे माटी, माटी दे
चुका बनाब, पानी उठाब
ठरा धवब, कारला खाब।

मिट्टी उत्तर देता है – मिट्टी खोदने के लिए औजार ले आओ। कौआ नउवा के पास जाता है और कहता है– नरहनी दो मुझे मिट्टी काटना है–

नउवा रे नउवा, नरहनी दे

माटी कड़ब, चुका बनाब
पानी उठाब, ठरा धवब, कारला खाब

नाई उत्तर में कहता है मेरे पास नरहनी नहीं है तुम कामार के पास जाओ। तब कौआ कामार से माँग करता है –

कामार रे कामार, नरहनी बनाई दे
माटी कड़ब, चुका बनाब, पानी उठाब
ठरा धवब, कारला खाब।

कामार उत्तर देता है – मेरे पास कोयला नहीं कोयला ले आओ। कौआ कोयले के पास जाता है–

कोयला रे कोयला, कोयला दे
नरहनी बनाब, माटी कड़ब, चुका बनाब
पानी उठाब, ठरा धवब, कारला खाब।

कोयले ने कौवे को कोयला दिया। कोयला लेकर वह कामार के पास जाता है। कामार से नरहनी लेकर मिट्टी कोड़ता है और मिट्टी लेकर कुम्हार से घड़ा बनवाता है। घड़ा लेकर कुँआ से पानी लेता है और पानी से चोंच धोकर बुढ़िया से करेली लेकर खाता है।

इस कहानी को हम इस प्रकार देख सकते हैं– कौआ एक बालक है जो अपनी माँ के पास जाता है और खाने की मांग करता है। माँ उसे हाथ–मुँह धोने को कहती है। ये पहली षिक्षा खाने के पहले स्वच्छता का ध्यान रखना है। दूसरी बार में बच्चे को पता चलता है कि पानी कुएँ से मिलता है। कुआँ पे जाने पर उसे मालूम होता है कि पानी उठाने के लिए बर्तन की आवष्यकता है जो कुम्हार से मिलेगा और कुम्हार के पास जाने पर मालूम होता है कि कुम्हार घड़ा मिट्टी से बनाता है वहीं मिट्टी काटने के लिए औजार की आवष्यकता है औजार कामार से मिलेगी और कामार औजार को रूप देने के लिए कोयले की आवष्यकता है।

इस प्रकार इस कथा में बच्चे को षिक्षा मिलती है कि हमें किस वस्तु की प्राप्ति कहाँ–कहाँ से प्राप्त होगी।

इसी प्रकार एक अन्य लोक कथा है–

कन बिहांइ दुइ गड़े आरता

"एक आदमी की एक बेटी थी। बेटी का एक पैर ना होने के कारण विवाह नहीं हो पा रहा था।..... .... ।"[6]

इस कहानी में वर–कन्या पक्ष द्वारा एक–दूसरे से ठगे जाने की कथा है।

वहीं कुरमाली की करम केहनी कृषि और व्यापार की षिक्षा देती है तथा भाई–बंधुओं के सौहार्द्र की षिक्षा देती है। वहीं ईर्ष्या के कारण विपत्तियों को निमंत्रण देता है और अपनी गलती समझने पर उसे सुधारने के लिए दंड को भोगने के लिए तत्पर होता है। जिससे सदा के लिए उसका भाग्य परिवर्तन हो जाता है। यह कथा कुछ इस प्रकार है–

2. करमा–धरमा

बहुत समइअ कर काथा हेकेइक। दुइ भाइ रहत– करमा बेपार करेहे लाक आर धरमा खेत काम करि कनअ–रकम जिबन चालाइ हेलाक। करमा बेपार करिखन गांउ आवलाक न गांवे देखेइस धरमा गांवेक लग संगे नाचेइस गावेइस। इटा देखि के करमा रागे हेलाक जे मंइ एतक धुर ले आवल आहों मर कनअ खअज–खबर ना लेइखन हिंआ एतेक दुखेक दिन काटिकउ रिझे हेइ भुलेइस। उ दिन टा रहेइक भादऽर एकादषी कर दिन। रागे करमांइऽ करम गाछ के उखड़ाइ खन फेंकि देलेइक जेटा सात समुदर पार जाइके गिरलेइक। तखन लेइ करमा कर जिबन कर सुखेकर सेंस हेइ लागलेइक। कन काम करलउ दुइ जुन कर खाएइक नि जुटावे पारे लागलाक। तखअन खिसे धरमा कर खेतेइक धान के राइते उपड़ाइ–उपड़ाइ फेंके लागलेक। तखअन आकासबानी हेलेइक जे। तइ करम देबता कर अपमान करल आहिस उटाकर कर कारअने तअर इ दिन टा देखे पावेहिस त तंइ करम गाछ के आनि के भादर एकादसि दिन घारे गाड़ि के पुजा कर तबे जाइके तअर दिन घुरी आवतोउ।

इटा सुनल बादेइ करमा करम देबता लाइ मुहालाक। डहरे भुखे पेट दुखाए लागलेक नअ कोइर गाछ देखे पावलाक। कोइर के जेसेइ खाइ लाइ नाभावलेन नऽ दऽमे पोका देखे पावलाक। तखन गाछे करमा कर दुखेइक कारन पुछलेइक आर कोइर गाछव आपन बेथा कही करम देबता के सुनाइ देवेलाइ कहलेन। आगुह गेला न दमे गाइ, गोरु के भुखे–पियासे घुरल देखे पावलेन दुओंइ आपन दुख एक दसरा के कहलेथिन आर करमा आगुह गेलऽ। आगुह घोड़ा पावलेक उहो भुखे–पियासे घुरि भुलेहेलाक। दुइयो लगे आपन दुख गिला कहि–सुनी, करमा फेइर आगुह गेलाक। कइ दिन चलल बादेइ सात समुदअर पाइर करल आर करम कर गाछ देखे पावल। गाछ हेंठे देखे पावेइस एकटा घिसटाहा बुढ़ा बसल आहे जाकअर गटआ गातेइ घाव हेल आहेइक आर माछि भिनभिनाहात। अके देखि करमा घिनाइ लागल मनतुक अकर मने हेलेइक जे आपन करमअ के बेस करेइक चाहि इटा आकासबानि हेल रहेइक। उ बुढ़ा के परनाम पाति करि खन अकर सेबा सुसरा करलाक। आर बुढ़ा के आपन दुखेइक केहनि कहि सुनावलेक। बुढ़ाइ अके करम डाइर देइ खन पासेक बांधे नाहाइ कहलेइ। बांधेक पानि दमए पका–डका देखि डरे–डरे करमा नाहालाक। आर घार बाठे डहरअल। घुरते डहरे घोड़ा के पावलेथिक अके कहलेथिक तयं सांति पावबे तखन घोड़ांय करमा संग हेइ अकरे पावबे। तखन घोड़ांय करमा संग हेइ अकरे संग जाय लागल। आगुह गाइ–गोरु के पावलेथिन अरा करमा कर घार जाइ संग हेला। एकटु आगुह गेले आहात आर आकासबानि हेलेंइक जे कोइर गाछेक पासे कलसी गाड़ाल आहात उटाके कनअ गरिब दुखियांइ लेगताक। तबेइ गाछेक फअरे पऽका नि लागत। करमा इटा सुनिखन कलंसि गिला के बाहरावलेन आर घोड़ाक पिठे लादिखन घार लेले गेल। घार पहुँचि खन लेसा–पोता बहु संगे मिलिमिसि करलाक आर अहे दिन टा भादर एकादसि रहेइक तऽ करम गाछ के गाड़ि खन अकर सेबा करला आर दीन–दुखिया के दान देइ उपास करि करम पूजा करला आर एहे नियार अकर सुखेक दिन फेइर घुरि आवलेक।"[7]

ऐसे ही बांदना पर्व की कहानी मवेषियों की रक्षा तथा देख–भाल की षिक्षा देती है। तो वहीं सात भाइ एक बहन की कथा प्रेम और द्वेष की कहानी सुनाती है। ऐसे ही कुरमाली की और भी लोक कथाएँ हैं जो कुछ–न–कुछ षिक्षा तो देती ही हैं और अपनी भाषा एवं संस्कृति का उत्स के साथ संरक्षण एवं प्रसार करती हैं।

यहाँ हम एच0 एन0 सिंह की बातों को लें तो उनका कहना है – "लोक कथाएँ हमारे अतीत जीवन का संकलन ही नहीं बल्कि वर्तमान जीवन के दर्षन भी हैं। कथा साहित्य के माध्यम से ही किसी भाषिक समुदाय की संस्कृति, परम्परा, जीवन–दर्षन, रीति–रिवाज, स्थानान्तरण आदि का पता

चलता है। लोक कथा में किसी जाति के दीर्घ अनुभव और जीवन पद्धति का विवरण तो रहता ही है, साथ–साथ भावी पीढ़ी को सत्–असत् का ज्ञान कराती है।"[8]

इन सभी लोक कथाओं को सुनने और सुनाने का तरीका उसकी भाषा की मधुरता और कर्णप्रियता को लिए हुए हैं जो अन्य भाषा में अगर बोली जाए तो वह अपनी मधुरता खो देगा जिससे सुनने वाली उस लोक कथा द्वारा देने वाली षिक्षा को सही तरीके से ग्रहण नहीं कर पाएगा।

अतः अपनी मातृभाषा को त्यागना अपने जन्मदाताओं को त्यागने के समान समझ सकते हैं। मानव समाज के विकसित होने का कारण एकमात्र उसकी भाषा है जो उसे जन्म से ही माता–पिता, दादा–दादी, नाना–नानी जैसे अपने पारिवारिक रिष्तेदारों द्वारा प्राप्त करते हैं। बच्चे कथा, कहानियों, गीतों द्वारा जितनी तेजी से सिखते हैं उतनी किताबों को पढ़कर नहीं सीख पाते। लोक कथाओं की रोचकता और अपनी मातृभाषा की मधुरता के कारण बच्चों के दिमाग में किसी भी कार्य को करने की जीवंत तस्वीर सुनते–सुनते ही बन जाती है। बच्चे उन लोक कथाओं के साथ ही अपनी कल्पनाओं को जोड़ कर अपने कार्य क्षेत्र का चुनाव करने लग जाते हैं।

निष्कर्षः–

प्रत्येक समाज में साहित्यों एवं लोक–कथाओं का पाया जाना इस बात को स्पष्ट करता है कि ये षिक्षा का प्रबल माध्यम हुआ करती थीं। इन्हीं के द्वारा भावी पीढ़ीयों को सुषिक्षित एवं संस्कारित बनाया जाता था। इनके द्वारा भावी पीढ़ी अपने भाषा एवं संस्कृति से परिचित तो होते ही थे साथ ही उनमें प्रेम, बंधुता, कर्तव्यनिष्ठा, त्याग, बलिदान, सदाचार, नैतिकता, संवेदनषीलता जैसे मानवीय गुणों का सृजन भी होता था। आधुनिक वैष्वीकरण के दौर में जबकि संचार के अनेक अत्याधुनिक तकनीकों का विकास हो गया है, शैक्षणिक प्रारूप बदल चुका है, लोग अपने भाषा, संस्कृति एवं प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं और मानवीय गुणों का तेजी से ह्रास हुआ है। संवेदनहीनता, स्वार्थ, लालसा आदि जैसे दुर्गुण मानव जाति पर हावी हैं। पष्चिमी संस्कृति का अंधानुकरण एवं भौतिकतावादी दृष्टिकोण सांस्कृतिक चुनौति पेष कर रहा है, जिसने कई पारिवारिक, सामाजिक एवं प्राकृतिक समस्याओं को जन्म दिया है। अतः आवष्यकता इस बात की है कि लोगों को अपने मातृभाषा एवं संस्कृति के प्रति संवेदनषील होना होगा तभी वे अपने समाज, देष एवं प्रकृति के प्रति अपने कर्तव्यबोध को जान पाएँगे और तभी पारिवारिक कलह, सामाजिक तनाव, प्राकृतिक–क्षरण आदि जैसी समस्याओं से निजात मिल सकेगी।

संदर्भ ग्रंथः–

1. तिवारी, डॉ. भोलानाथ, ***भाषा विज्ञान***, किताब महल, 22 ए., सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद, पृ.– 5–6
2. वही, पृ.– 6
3. वही, पृ.– 6
4. सिंह, देवषरण, ***झारखण्ड राज्य की रूपरेखा***, पृ.– 19 (साभार– सिंह, डॉ. हरदेव नारायण, ***कुरमाली लोक कथाओं की कथानक रूढ़ियाँः एक अनुषीलन***, झारखंड झरोखा, राँची, झारखंड, पृ.– 22–23)
5. ग्रियर्सन, जे., ***लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया***, दिल्ली, पृ.– 145
6. सिंह, डॉ हरदेव नारायण, ***कुरमाली लोक कथाओं की कथानक रूढ़ियाँः एक अनुषीलन***, झारखंड झरोखा, राँची, झारखंड, पृ.– 80

7. महतो, जटुला– 92वर्ष आयु, पातराडीह, झालदा (प. बंगाल)
8. सिंह, एच. एन., ***कुरमाली लोक कथाएँ,*** झारखंड झरोखा, राँची, झारखंड, पृ.– 8

अलवर राज्य प्रजामण्डल के अनन्य कार्यकर्ता – पंडित भवानीसहाय शर्मा

(सन्तोष कुमार शर्मा, शोधार्थी – इतिहास विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़,
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा)

सारांश – भारत का स्वतंत्रता आन्दोलन विश्व की राजनीति के इतिहास में अपनी तरह का एक अनूठा जन–आंदोलन था। राष्ट्रवादी नेताओं के ऐतिहासिक और क्रांतिकारी नेतृत्व में करोड़ों लोगों ने अपना तन, मन और धन देश के लिए बलिदान कर दिया। उनका राष्ट्र के प्रति प्रेम, संघर्ष और बलिदान इस पीढ़ी के साथ आने वाली पीढ़ियों को राष्ट्र के लिए कुछ कर–गुजरने के लिए प्रेरित करता रहेगा। शौर्य, त्याग और बलिदान की भूमि राजस्थान भी स्वतंत्रता संग्राम में किसी से पीछे नहीं रही। राजस्थान के क्रांतिकारियों को दोहरे, तिहरे अवरोधों एवं यातनाओं का सामना करना पड़ता था। ब्रिटिश राज जो स्वतंत्रता संग्राम का विरोधी था ही, देशी रियासतों के महाराजा और गाँवों के जागीदार भी ब्रिटिश राज के प्रति स्वामीभक्ति दिखाने के उद्देश्य से स्वतंत्रता आन्दोलन को कुचलने के प्रयासों में बढ़–चढ़कर हिस्सा ले रहे थे। इस कारण राजस्थान (तत्कालीन राजपूताना) का स्वतंत्रता संग्राम में महत्व अत्यधिक बढ़ जाता है। अलवर राज्य में भी स्वायत्त शासन की स्थापना और आजादी के आंदोलन के लिए विभिन्न स्वतंत्रता सेनानियों ने जेल यात्रायें की, कष्ट और यातनाओं में जीवन गुजार दिया। इनमें पंडित भवानीसहाय शर्मा का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने अलवर प्रजामंडल आंदोलन को सफल बनाने में अपना अतुलनीय योगदान दिया तथा प्रजामण्डल कार्यकर्ताओं के साथ हड़ताल, जुलूस, सत्याग्रह आदि आन्दोलन करके राष्ट्रवादी भावना का परिचय दिया। इन्होनें अपना पूरा जीवन आम जनता की भलाई में समर्पित कर दिया और हमेशा उनकी आवाज बनकर साथ निभाया। इनका जीवन हमें देश के लिए निःस्वार्थ भाव से सेवा करने की प्रेरणा देता है। आज भी अलवर की जनता के मन में इनके प्रति विशेष सम्मान और लगाव है। इनका नाम भारत के क्रांतिकारियों एवं राष्ट्रवादियों में हमेशा अमर रहेगा। प्रस्तुत शोधपत्र में पंडित भवानीसहाय शर्मा के जीवन संघर्ष, क्रांतिकारी कार्य, स्वतंत्रता आंदोलन और प्रजामण्डल आंदोलन में योगदान एवं उनके सामाजिक–राजनीतिक जीवन का अध्ययन किया गया है।

संकेताक्षर – राष्ट्रवादी, बलिदान, शौर्य, यातना, स्वामीभक्ति, अतुलनीय, जुलूस, सत्याग्रह आदि।

राजगढ़ का परिचय – राजगढ़ एक ऐतिहासिक नगरी रही है। अलवर राज्य की स्थापना से पूर्व माचैड़ी तथा राजगढ़ सत्ता के प्रमुख स्थल रहे हैं। राजगढ़ दिल्ली–अहमदाबाद रेलवे मार्ग में अलवर से 38 कि.मी. दक्षिण में अरावली पर्वत श्रृंखला की गोद में स्थित है। यह 27° 14′ उत्तरी अक्षांश व 78° 38′ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। [1] राजगढ़ कोई स्वतंत्र राज्य नहीं था बल्कि अलवर राज्य की स्थापना के पूर्व का एतिहासिक स्थान रहा है। इसकी नींव बाघराज ने 145 ई. के लगभग रखी थी। बाघसिंह अथवा बाघराज का राजगढ़ के इतिहास में अद्वितीय स्थान है। वह एक प्रतापी राजा था। [2] बाघराज ने इस नगर का नाम 'बाघपत' रखा था, जिसे बाद में इसी वंश के राजा राजदेव ने इस बस्ती का विस्तार कर उसका नाम 'राजगढ़' रखा। [3] राजगढ़ तीन ओर से अरावली पहाड़ियों से घिरी अलवर रियासत की पूर्व राजधानी थी। कालान्तर में अलवर राज्य की स्थापना राव प्रतापसिंह ने की थी। प्रताप सिंह कछवाहा राजपूतों की नरूवश शाखा के मोहब्बतसिंह का पुत्र था। [4] उन्होनें जयपुर और अलवर राज्यों से भू–मार्ग छीनकर अलवर राज्य की स्थापना की। प्रतापसिंह ने मार्ग शीर्ष शुक्ला 3 सम्वत् 1832 (25 दिसम्बर, 1775) सोमवार को अलवर के दुर्ग में प्रवेश किया और माचेड़ी के स्थान पर अलवर को ही अपनी राजधानी बनाकर अलवर राज्य की स्थापना की और अपना राज्याभिषेक करवाया। [5] अलवर राज्य की स्थापना के बाद राजनैतिक सत्ता के केन्द्र रहे

राजगढ़ और माचैड़ी अलवर राज्य के भाग बन गये। इसी ऐतिहासिक कस्बे राजगढ़ को भारत के प्रसिद्ध क्रांतिकारी नेता चन्द्रशेखर आजाद के सहयोगी पंडित भवानीसहाय शर्मा की जन्मभूमि होने का गौरव प्राप्त है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्रीय महासमर में राजगढ़ का विशेष सहयोग रहा है।

पंडित भवानीसहाय का जीवन परिचय – पंडित भवानीसहाय का जन्म अलवर राज्य के राजगढ़ कस्बे में एक मध्यवर्गीय किन्तु प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में 21 मार्च, 1909 तद्नुसार संवत् 1966 में फाल्गुन शुक्ला आंवला एकादशी को माता जीवनी के गर्भ से हुआ। इनके पिता पंडित रामचन्द्र थे जो बम्बई–बड़ौदा एवं सेन्ट्रल इंडिया में रेलवे में गार्ड थे। ये बांदीकुई जक्शन पर गार्ड थे। पंडित भवानीसहाय के बड़े भाई पंडित देवीसहाय भी पिता की तरह रेलवे में गार्ड हो गये थे। भवानीसहाय के बचपन का नाम छुट्टन था और उनकी भाभी भूदेवी उन्हें प्यार से लालाजी कहा करती थी। पंडित भवानीसहाय का ननिहाल पक्ष राष्ट्रीय विचारों से ओतप्रोत था। उनके ममेरे भाई गौरीसहाय जैमन और उनकी पत्नी श्रीमती कमला जैमन ने स्वाधीनता आन्दोलन में बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया और जेल यातनाएँ भी भोगी। उन्होनें कई बार भवानी सहाय को अपने घर में भी छिपाकर रखा। इस तथ्य का विवरण दिल्ली प्रशासन की गजेटियर यूनिट से प्रकाशित एक पुस्तक 'हूज टू ऑफ दिल्ली फ्रीडम फाइटर' में भी मिलता है। इसी प्रकार भिवानी (हरियाणा) निवासी पं. भवानीसहाय के श्वसुर पंडित नेकीराम शर्मा भी अपने समय के प्रख्यात स्वतंत्रता सेनानी थे। उनका एक ओर जहाँ बिड़ला परिवार से पारिवारिक सम्बन्ध था वहीं गांधीजी से भी उनका निकट का सम्पर्क था। भिवानी शहर में पंडित नेकीराम शर्मा की आज भी प्रतिमा लगी हुई है तथा नेकीराम नगर में एक कॉलोनी भी विकसित की गई है।

भवानीसहाय शर्मा की प्रारम्भिक शिक्षा राजगढ़ में हुई तथा मिडिल स्कूल शिक्षा बांदीकुई से प्राप्त की। आगे की शिक्षा प्राप्त करने के लिए दिल्ली गये और वहाँ की तत्कालीन प्रसिद्ध शिक्षण संस्था रामजस कॉलेज में भर्ती हो गये। रामजस कॉलेज उन दिनों दिल्ली के आनन्द पर्वत क्षेत्र में था और वहीं छात्रावास में रहने की व्यवस्था की। रामजस कॉलेज को क्रांतिकारियों को संस्कारित करने का गौरव प्राप्त है। कई ख्यातिप्राप्त क्रांतिकारी इस कॉलेज से जुड़े रहें हैं। भवानीसहाय ने यहीं रहकर बेनिट कॉलेज शीफिल्ड के इंजीनियरिंग कोर्स की भी तैयारी की। भवानीसहाय को समाचार–पत्र तथा ऐतिहासिक एवं राजनीतिक विषय की पुस्तकें पढ़ने का बड़ा शौक था। बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जी के 'आनन्द मठ' उपन्यास ने तो उनके मन में कुछ न कुछ कर गुजरने की ललक पैदा कर दी। वे हमेशा इसी चिन्तन में लगे रहते कि देश को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त कराने के लिए क्यों न 'आन्नद मठ' में वर्णित जैसा कोई संगठन बनाया जाए। अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाना उनकी स्वभावगत विशेषता थी। उनकी कल्पना साकार होने को मचल उठी और अन्ततः उन्होनें अपने छात्रावास में ही विश्वस्त साथियों को लेकर एक दल का गठन किया। यह दल छात्रों तथा समाज के अन्य वर्गों की कठिनाईयों को दूर करने तथा संकट के समय उनकी सहायता करने का काम करता था। इससे प्रेरित होकर और 'चांद' का फांसी अंक, 'भारत में अंग्रेजी राज' जैसी प्रतिबन्धित पुस्तकें पढ़कर जीवन में कुछ कर गुजरने का संकल्प लिया। [6]

भवानीसहाय का क्रांतिकारियों से सम्पर्क – छात्रावास प्रवास के दौरान उनके एक सहपाठी के भाई ने उनका परिचय कैलाशपति नामक व्यक्ति से कराया। कैलाशपति हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन ऐसोसिएशन की दिल्ली शाखा का ऑर्गेनाइजर था। वह अपने दल के सम्बन्ध में न तो कभी किसी

से चर्चा करता था और न ही कोई जानकारी देता था। हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन एक क्रांतिकारी दल था और चन्द्रशेखर आजाद इस दल का नेतृत्व करते थे। इस दल में शामिल होने के कठोर नियम थे। दल की गतिविधियों को पूर्ण विश्वसनीयता और गोपनीयता से अंजाम देना होता था तथा नियमों का कठोरता से पालन करना पड़ता था। सन् 1926 में क्रांतिकारी दल में विदिवत रूप से सम्मिलित हो जाने के बाद भवानीसहाय शर्मा सक्रिय रूप से दल की गतिविधियों से जुड़ गये थे। इनकी गतिविधियों को गोपनीय रखने और दल के नियमों के अनुसार इनके पार्टी के नाम भी अलग–अलग रखे गये। राजगढ़ में वे छुट्टन नाम से जाने जाते थे तो दिल्ली में उनका नाम रामप्रसाद व रामनाथ था। [7] सन् 1927 में इन्हें क्रांतिकारी दल की दिल्ली शाखा का सहायक ऑर्गेनाइजर बना दिया गया। ये पुलिस की नजरों में नहीं आये। लाहौर षड्यंत्र के किसी दूसरे केस के सिलसिले में पुलिस ने जयदेव कपूर और शिव शर्मा को सहारनपुर में गिरफ्तार का लिया। जब पुलिस ने जयदेव कपूर की तलाशी ली तो उनके पास एक पर्चा मिला जिसमें भवानी सहाय के रेवाड़ी में रहने के स्थान का पता अंकित था। तब पुलिस ने इनका नाम भी केस में जोड़ लिया। इनके बड़े भाई को दिल्ली लाकर जानकारी प्राप्त की। पर्ची की लिखाई इनकी लिखाई से मिलाई गई लेकिन दोनों की लिखावट में अन्तर था। इन्होनें कपूर व शिव शर्मा से सम्बन्ध न होने की बात कही तो इन्हें गिरफ्तार नहीं किया गया लेकिन इन पर निगरानी पूरी रखी गई। [8] इस घटना से उनकी क्रांतिकारी गतिविधियों का उनके घरवालों को पता चल गया। उनके भाई ने यह राह छोड़कर विवाह कर घर बसाने की सलाह दी। उन्होने स्पष्ट शब्दों में मना कर दिया और कहा कि अब उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य भारत माता को आजाद कराना रह गया है। मैं आजादी की लड़ाई में प्राण न्यौछावर कर सकता हूँ इसलिए मुझे घर–गृहस्थी में बाँधने का प्रयास नहीं करें।

अलवर क्रांतिकारियों का स्थल रहा है। भगतसिंह राजगुरू, सुखदेव, चन्द्रशेखर आजाद, पंडित विशम्भर दयाल शर्मा, सवलपुरा (बहरोड़) तथा सरिस्का के जंगलों में आये और इन स्थलों को अपनी शरण स्थली बनाया। क्रांतिकारियों ने यहाँ गुप्त शिविर लगाये जिसकी जानकारी सी.आई.डी. रिपोर्ट में अंकित है। पंडित भवानीसहाय शर्मा भी इन क्रांतिकारियों की गतिविधियों में शामिल हुए तथा सितम्बर, 1925 के काकोरी काण्ड में इन्होंने भाग लिया।[9] गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन स्थगित करने का क्रांतिकारियों ने विरोध किया। क्रांतिकारी सरकारी धन को लूटने की योजना बनाने लगे और उन्होनें ट्रेन पर धावा बोल दिया। क्रांतिकारी आन्दोलन इसके बाद जोर पकड़ता चला गया। सरदार भगतसिंह और काकोरी के फरार चन्द्रशेखर आजाद और उनके बाद चटगाँव के सूर्यसेन ने इसमें चार चाँद लगा दिये। सरदार भगतसिंह और उनके बहादुर साथियों को यह श्रेय हाँसिल है कि उन्होनें दल के विचारधारा मोर्चे को समाजवाद तक पहुँचा दिया। 1942 में जब गांधी ने आन्दोलन का आहवान किया था तो वह भी लगभग क्रांतिकारी हो गया था। [10] महान् क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद से भवानीसहाय के बहुत अच्छे सम्बन्ध थे और उनके विश्वास पात्र थे। एक बार रात में चन्द्रशेखर भवानी सहाय के मकान पर आये तथा वहीं रात्रि विश्राम किया। भवानीसहाय छोटे से कमरे में रहते थे और नजदीक में थाना भी था। इसलिए बहुत बड़े क्रांतिकारी नेता को उनकी जगह पर ठहराना उचित नहीं समझा क्योंकि उनके वारंट भी निकले हुए थे। इसके बावजूद आजाद वहां पर ठहरे थे और भवानी सहाय ने रातभर पहरा दिया। [11]

एक दिन भवानी सहाय और चन्द्रशेखर आजाद विस्फोटक सामग्री से भरे बक्से लेकर मेरठ से कानपुर पहुँचे। इस यात्रा में किसी गुप्तचर ने इसकी सूचना पुलिस को पहुँचा दी। चप्पे–चप्पे पर पुलिस होने के बावजूद इन्होनें गलियों से निकलकर अपना सामान सुरक्षित पहुँचाया। [12] 28 अगस्त, 1931 में पंडित जी को दिल्ली षड्यंत्र केस में गिरफ्तार किया गया। उन पर सरकार का तख्ता पलटने, गाड़ोदिया बैंक लूटने, वायसराय पर बम फेंकने आदि के अभियोग लगाये गये।

[13] ये अपने साथियों को गोली चलाने, निशाना साधने, मोटर कार, मोटरसाईकिल आदि चलाने की ट्रेनिंग देने का कार्य भी करते थे। हिरासत में लेने के बाद पुलिस ने इन्हें मुखाबिर बनाने के लिए काफी परेशान किया और शारीरिक एवं मानसिक यातनायें दी। इस केस में इन्हें 8 माह तक जेल में रहना पड़ा। दिल्ली षड्यंत्र केस में इन्हें बरी कर दिया गया पर उन्हें पुलिस के विरूद्ध अपराध मामलों में 110 दफा लगाकर हिरासत में रखा गया। बाद में 10 हजार रुपये की जमानत पर छोड़े गये। 17 फरवरी, 1931 को एक अन्य केस लोशन कमीशन के नेता की गाड़ी के नीचे बम रखने के आरोप में गिरफ्तार कर मोरोलिया लॉक अप में भेज दिया। वहां से 26 जनवरी, 1932 को दो महीने के लिए नजरबंद रखा। 21 अप्रेल, 1932 को रेग्यूलेशन 3/1818 के अन्तर्गत अनिश्चित काल के लिए दिल्ली में नजरबन्द रखा गया। [14] भवानी सहाय एक स्टेट प्रिजनर के रूप में नैनीताल की जेल में रहे। रेग्यूलेशन–III ऑफ 1818 के तहत स्टेट प्रिजनर के रूप में बन्द रहने के कारण उन्हें अनेक सुविधाएँ दी गई। वे उस समय अविवाहित थे। अतः उन्होनें जेल की इस लम्बी अवधि का उपयोग साहित्य सृजन में किया। उन्होने गत यौवन, जुगनू की ज्योति, अश्रुधारा, संध्या, बसन्त प्रभाव, उलझन, रजनी, अविरल आँसू, भ्रमर गान, व्यथा, बोल विधवा, पनिहारिन, भग्नदूत के प्रति आदि कविताओं का सृजन किया। [15] 24 जनवरी, 1993 से 1 फरवरी, 1938 तक ये नैनीताल जेल में बन्द रहे। इन्हें दिल्ली जेल पुनः लाया गया। यहाँ पर वी. पी. वैशम्पायन के साथ ''नजरबन्दी कारण बताओ या रिहा करो'' की घोषणा के साथ भूख हड़ताल की। महात्मा गाँधी इनके मामले में वायसराय से मिले। उनके प्रयासों से इन्हें 19 मार्च, 1939 ई. को बिना शर्त के रिहा कर दिया गया। उसके बाद ये अलवर आकर स्थानीय कांग्रेस में शामिल हो गये। [16]

अलवर स्वातंत्र्य समर में भवानीसहाय का योगदान – सन् 1939 में जब वे जेल से मुक्त हुए तो उन्हें वैवाहिक बन्धन में बाँधने का प्रयास किया। भिवानी (हरियाणा) के पंडित नेकीराम शर्मा की पुत्री दुर्गा से उनका विवाह कर दिया गया। नेकीराम जी उस समय कांग्रेस के बड़े नेता थे और नेहरू जी के साथी रह चुके थे। वे समाजवादी सुधारों के व्यक्ति थे। अतः एक रुपये मात्र के दस्तूर और बीस बारातियों को भोजन कराकर शादी कर दी। जब वे जेल से रिहा होकर आये तो उस समय नेताजी सुभाषचन्द्र के विश्वासपात्र साथी शंकरलाल दिल्ली कांग्रेस के अध्यक्ष थे। शंकरलाल पंडित भवानीसहाय के भी घनिष्ठ मित्र थे। उनके कहने से भवानीसहाय कांग्रेस में सम्मिलित हुए। बिड़ला भवन में उनकी मुलाकात गाँधीजी से हुई। उन्होनें भवानीसहाय को निर्देश दिये कि वे अब अपनी जन्मभूमि को अपना कार्यक्षेत्र बनाये। राजगढ़ आने के बाद अपनी जन्मभूमि को अपना कार्यक्षेत्र बनाकर स्वतंत्रता संग्राम की गतिविधियों से जुड़ गये। [17] अलवर राज्य में राजाओं, सामंतों के द्वारा लोगों के शोषण करने के विरूद्ध इन्होनें आवाज उठाई। लगान, तम्बाकू टैक्स व अन्य करों का बोझ अलवर नरेश द्वारा जब जनता पर डाला तो भवानीसहाय शर्मा ने प्रजामण्डल एवं कांग्रेस कार्यकर्ताओं के साथ हड़ताल, जुलूस एवं सत्याग्रह आदि आन्दोलन करके राष्ट्रवादी भावना का परिचय दिया।[18] अलवर प्रजामण्डल का रजिस्ट्रेशन रामनारायण चौधरी एवं हरिभाऊ, के प्रयासों से 1 अगस्त, 1940 ई. को 'अलवर राज्य प्रजामण्डल' का रजिस्ट्रेशन हो गया।[19] जब रजिस्ट्रेशन हो गया तो अलवर राज्य प्रजामंडल की शाखाएँ राजगढ़, तिजारा, खैरथल, रामगढ़ तथा मांढ़ण में खोली गई।[20] 9 जुलाई, 1940 से द्वितीय विश्वयुद्ध चालू हुआ जिसमें अलवर महाराजा द्वारा 3 माह 10 दिन में 2,36,096 रुपये जनता से एकत्रित कर लिए थे जिसे 31 मार्च, 1941 तक इस फण्ड को 3,50,157 रुपये एकत्रित होने की सम्भावना थी। इस राशि को भारत सरकार (अंग्रेजों) को भेजा गया। प्रजामण्डल आंदोलनकारियों ने आम जनता से युद्ध फण्ड में पैंसे न देने की अपील की। [21] अलवर में जागीर–माफीदारों की नीति का प्रजा में सुधार लाने का वातावरण बन चुका था। सम्मेलन को प्रेरणा देने का कार्य जयपुर रियासत ने किया। फरवरी, 1941 ई. को टीकाराम पालीवाल अलवर

आये। उन्होनें कार्यकर्ताओं के साथ वार्तालाप कर 1–2 जून, 1941 ई. की राजगढ़ में प्रजामण्डल का विशाल सम्मेलन करने का निर्णय लिया।[22] प्रजामण्डल के सदस्यों एवं कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने गाँव–गाँव जाकर सम्मेलन का प्रचार–प्रसार किया।[23] यह अलवर का पहला राजनीतिक सम्मेलन था। इसकी अध्यक्षता गुरू ब्रजनारायण आचार्य[24] ने की। भवानीसहाय दिल्ली से लाउडस्पीकर लाये थे। इस सम्मेलन के अत्यन्त महत्वपूर्ण परिणाम निकले। इससे जागीरी प्रजा को काफी राहत मिली क्योंकि इसने जागीरदारों द्वारा ली जाने वाली कई लाग–बागों को गैर कानूनी ठहराया।[25] अब प्रजामण्डल धीरे–धीरे ग्रामीण क्षेत्रों की ओर अपना ध्यान देने लगा तथा सामाजिक सुधारों को महत्व दिया जाने लगा। 25 जनवरी, 1942 ई. को राजगढ़ में अलवर प्रजामण्डल की जनसभा की गई, जिसकी अध्यक्षता भवानीसहाय शर्मा द्वारा की गई।[26] इस सभा में अंग्रेजों के अधीन उत्पीड़क शासन की आलोचना, जागीरमाफी प्रजा पर सामन्ती अत्याचार का विरोध, जनता में शिक्षा का महत्व व खादी के प्रचार पर प्रकाश डाला गया। इस सभा में प्रमुख समस्याओं के निराकरण हेतु राजगढ़ में अलवर व तिजारा जैसी जनता द्वारा चुने हुए जनप्रतिनिधि होने चाहिए पर बल दिया। इन माँगों को 18 मार्च, 1942 ई. की जनसभा में पुनः दोहराया गया।[27]

अगस्त 1942 को बम्बई अधिवेशन में भारतीय कांग्रेस ने अंगेजों के विरूद्ध जनान्दोलन प्रारम्भ करने की घोषणा की। 1942 के संघर्ष का नारा था 'अंग्रेजों भारत छोड़ो,' गाँधी जी का नारा था – 'करो या मरो'। अलवर प्रजामण्डल ने भी इसमें भाग लिया था। भवानीसहाय भी इस आंदोलन से सक्रिय रूप से जुड़े और राजस्थान वर्कर्स कांफ्रेंस के अध्यक्ष चुने गये। किशनगढ़, तिजारा, मालाखेड़ा और राजगढ़ में सभा की गई जिसमें हिन्दू–मुस्लिम दोनों को एकजुट होकर अंग्रेजों को हिन्दुस्तान से बाहर निकालने पर जोर दे रहे थे।[28] 19 अगस्त, 1942 ई. को राजगढ़ में हड़ताल की गई थी।[29] सन् 1944 में अलवर के गिरधर आश्रम नामक स्थान पर राजपूताना तथा मध्य भारत की प्रजा परिषदों व प्रजामण्डल के कार्यकर्ताओं का सम्मेलन हुआ। सम्मेलन में जयनारायण व्यास और गोकुल भाई भट्ट के साथ मृदुला बेन साराभाई ने भी भाग लिया। अगले वर्ष उदयपुर में आयोजित अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद के अधिवेशन में अलवर के आठ प्रतिनिधियों – सर्वश्री शोभाराम, भोलानाथ, पं. भवानीसहाय, पं. हरनारायण शर्मा, रामजीलाल अग्रवाल, कांशीराम, घासीराम गुप्ता और फूलचन्द गोठड़िया ने भाग लिया।[30] 1946 अलवर में जन आन्दोनों के चरम–उत्कर्ष का वर्ष था। 2 फरवरी, 1946 ई. को खेड़ा मंगलसिंह[31] नामक जागीर में अलवर प्रजामण्डल का एक सम्मेलन हुआ।[32] सरकार ने सभा को भंग करते हुए मास्टर भोलानाथ, भवानीसहाय शर्मा, हरिनारायण शर्मा, कांशीराम गुप्ता, रामचन्द्र उपाध्याय आदि प्रमुख कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया।[33] इन गिरफ्तारियों के विरोध में अलवर में पूर्ण हड़ताल का आयोजन किया गया। विवश होकर सरकार को सभी कार्यकर्ताओं को छोड़ना पड़ा।[34] 8 फरवरी, 1946 को प्रजामण्डल ने सम्पूर्ण राज्य में 'दमन विरोधी दिवस' मनाया।[35] 6 मार्च, 1946 ई. को एक शिष्टमण्डल जिसमें कांशीराम, भोलानाथ, शोभाराम, रामजीलाल, व भवानीसहाय शर्मा शामिल थे प्रधानमंत्री को अपनी मांगों का ज्ञापन दिया।[36] इसमें मुख्य मांगें थी – राज्य कमेटी का पुनर्गठन, प्रजामण्डल को समाचार पत्र निकालने की स्वतंत्रता, जागीर माफी गाँवों में स्थायी बन्दोबस्त, संवैधानिक सुधार, जेल सुधार, बेगार पर प्रतिबंध, तम्बाकू टैक्स की समाप्ति[37] प्रधानमंत्री ने इस शिष्टमण्डल को मात्र आश्वासन देकर लौटा दिया तथा अपना दमनात्मक रूप जारी रखा।[38] अलवर रियासत में 9 अगस्त, 1946 को उत्तरदायी शासन दिवस मनाया गया। इसी सन्दर्भ में राजगढ़ के कार्यकर्ताओं ने स्कूल में जाकर छुट्टी करा दी।[39] इसी समय 17 अगस्त, 1946 ई. को राजगढ़ मे भीड़ ने पं. भवानी सहाय के नेतृत्व में निजामत भवन में अलवर रियासत के झण्डे को जलाकर प्रजामण्डल का झण्डा लगा दिया।[40] इस घटना ने अलवर राज्य समेत सम्पूर्ण मेवात अंचल में व्यापक राजनीतिक जागृति पैदा

की। सम्पूर्ण मेवात में 21 अगस्त, 1946 ई. को राजगढ़ दिवस के रूप में मनाया गया तथा ''गैर जिम्मेदार मिनिस्टर कुर्सी छोड़ो'' एक व्यापक आंदोलन प्रारम्भ हो गया। स्कूल व कॉलेजों में छात्रों द्वारा हड़ताल कर दी गई, महिलाओं ने भी उनका सहयोग किया।[41] इस आंदोलन ने बड़ा रूप धारण कर लिया और सरकार ने व्यापक गिरफ्तारियाँ की। 23 अगस्त, 1946 को भवानी सहाय शर्मा को राजगढ़ से गिरफ्तार कर लिया।[42] बाद में जयनारायण व्यास और हीरालाल शास्त्री के प्रयत्नों से प्रजामण्डल तथा सरकार के बीच समझौता हो गया।[43] हालांकि सरकार ने समझौते का ईमानदारी से पालन नहीं किया।

1947 ई. के दौरान मेवात में साम्प्रदायिक दंगे भड़क गये। ये दंगे अलवर व भरतपुर दोनों राज्य में एक साथ हुए। इसमें अलवर राज्य में अव्यवस्था फैल गई और केन्द्रीय सरकार ने हस्तक्षेप किया। अलवर प्रजामण्डल ने आन्दोलन की योजना बनाई लेकिन गाँधी जी की हत्या के कारण क्रियान्वित नहीं हो पाया। 25 फरवरी, 1948 ई. को सरदार पटेल अलवर आये।[44] भारत की तत्कालीन सरकार ने अलवर व भरतपुर रियासतों को धौलपुर व करौली के साथ मिलकर 30 मार्च, 1948 ई. मत्स्य संघ का निर्माण कर दिया।[45] अलवर प्रजामण्डल के नेता शोभाराम को मत्स्य संघ का प्रधानमंत्री और अलवर को राजधानी बनाया गया। श्री गोकुलभाई भट्ट को पार्लियामेन्ट्री बोर्ड का अध्यक्ष और पं. भवानीसहाय को उपाध्यक्ष बनाया गया। इसी के साथ अलवर में लोकप्रिय शासन की स्थापना हो गई। 15 मई, 1949 ई. को मत्स्य संघ का वृहद् राजस्थान में विलय कर दिया गया। इस प्रकार अलवर राजस्थान प्रान्त का जिला बन गया।

जनसेवा का नया अध्याय (विधानसभा सदस्य के रूप में) – स्वतंत्रता बाद जब पहली बार 1952 में चुनाव हुए तो उन्होनें कांग्रेस के टिकट पर थानागाजी विधानसभा क्षेत्र से चुनाव लड़ा और विजयी हुए। उस समय राजगढ़ एवं थानागाजी एक ही विधानसभा क्षेत्र में आते थे। इस प्रकार उन्हें राज्य की प्रथम विधानसभा का सदस्य होने का गौरव प्राप्त हुआ। 1957 में उन्होनें दुबारा चुनाव लड़ा लेकिन राजनीतिक प्रतिद्वन्द, दलीय घात–प्रतिघात के कारण चुनाव नहीं जीत पाये। इसके बाद उनका राजनीति से मोह भंग हो गया। 15 अगस्त, 1972 को देश की स्वतंत्रता की 25 वीं वर्षगांठ मनाई गई। इस सम्मान समारोह में राजस्थान में एकमात्र पंडित भवानी सहाय शर्मा को स्वतंत्रता सेनानियों का प्रतिनिधि मानकर तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने उन्हें ताम्रपत्र देकर सम्मानित किया। इस अवसर पर उन्होंने कहा कि ''इस सम्मान के असली हकदार तो वे हैं जिन्होंने अपनी मातृभूमि के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया और फाँसी चढ़ गये। हम तो उनके सुकृत्यों के फलभोगी हैं।'' उन्होंने यह सम्मान बड़े संकोच के साथ ग्रहण किया। भवानीसहाय प्रदेश कांग्रेस में स्वतंत्रता सेनानी प्रकोष्ठ के संयोजक तथा प्रदेश कांग्रेस कमेटी के सदस्य रहे।

7 अक्टूबर, 1985 को प्रातः उच्च रक्तचाप के कारण उनका महाप्रयाण हो गया।[46] उनकी शवयात्रा में तत्कालीन प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष श्री अशोक गहलोत सहित अनेक गणमान्य व्यक्ति सम्मिलित हुए। आज पंडित जी हमारे बीच में नहीं हैं लेकिन स्वाधीनता आंदोलन में उनका संघर्ष सदैव विस्मरणीय रहेगा।

निष्कर्ष – भवानीसहाय शर्मा जी महान् व्यक्तित्व के धनी थे जिनका देश के महान् क्रांतिकारियों से निकट का सम्बन्ध था। उन्होंने देश सेवा को अपने जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य बनाया और जीवनभर उस कार्य में लगे रहे। वे एक सिद्धान्तवादी, स्पष्ट वक्ता, ईमानदार, चाटुकारिता से दूर और निजि स्वार्थों से ऊपर उठकर व्यापक हितों में काम करने वाले जुझारू नेता थे। उन्होंने हमेशा आमजन की समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया। इस कारण लोग उनकी एक आवाज पर इकट्ठे

हो जाते थे। भारत के क्रांतिकारियों एवं देशभक्तों में इनका नाम हमेशा अमर रहेगा। इनका जीवन हमें हमेशा प्रेरित करता रहेगा। ऐसी महान् विभूति ''राजस्थान के शेर'' पंडित जी के चरणों में नमन!

सन्दर्भ सूची :

1. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, प्रोविंशिएल सीरीज, पृ. 144
2. विनय, अलवर – अंक, जनवरी 1969, पृष्ठ–32, राजर्षि महाविद्यालय, अलवर
3. ऋतुराज, राजगढ़ – विशेषांक, 1977–78, पृष्ठ –3, श्री खण्डेलवाल प्राथमिक विद्यालय, राजगढ़
4. (अ) राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, क्रमांक 1588 बस्ता 196, बंडल 1, पृष्ठ 2

   (ब) श्यामलदास, वीर विनोद भाग 4, पृष्ठ 1376

   (स) वेब, राजपूताना के सिक्के, अनुवादक डॉ. मांगीलाल व्यास मयंक ने पृष्ठ 142 पर प्रतापसिंह को राव महावत सिंह का पुत्र होना लिखा है जो सही प्रतीत नहीं होता।
5. रा. रा. अभि., बीकानेर, क्रमांक 1589, 556, 746–47 बस्ता 196, 82, 107 बंडल 2, 1, 4, 5 पृष्ठ 16, 3, 1–4 और 5 6

   उपरोक्त बस्तों के अनुसार अलवर राज्य की स्थापना की तिथिमार्ग शीर्ष शुक्ला 3 सम्वत् 1832 दी है जिसकी अंग्रेजी तारीख इंडियन एफेमेरिज वा. 6 पृष्ठ 353 के अनुसार 25 दिसम्बर, 1775 आती है। जबकि सुखवीर सिंह गहलोत ने राजस्थान के इतिहास का तिथिक्रम पृ. 71, श्यामलाल कृत वीर विनोद भाग 4 पृ. 1377 डॉ. रामपाण्डे कृत भरतपुर अप टू 1826 पृ. 118 में अलवर राज्य की स्थापना की तारीख 25 नवम्बर, 1775 दी है जो सही प्रतीत नहीं होती है क्योंकि उक्त तिथि का एफेमेरिज का कन्वर्शन 25 दिसम्बर, 1775 आता है जो ज्यादा सही प्रतीत होता है।
6. डॉ. देवदत्त शर्मा, राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम के अमर पुरोधा – पंडित भवानीसहाय शर्मा, पृ. 1–3
7. डॉ. देवदत्त शर्मा, वही पृष्ठ 3–5
8. हरिनारायण सैनी, जुगमंदिर तायल, जीवनसिंह मानवी – आजादी का आन्दोलन और अलवर, पृ. 63
9. हरिशंकर गोयल – प्रधान सम्पादक, गति, सितम्बर–अक्टूबर 09 संयुक्तांक पृष्ठ–15
10. क्रांतिवीर मन्मथनाथ गुप्त – काकोरी षड़्यंत्र, कुछ महत्वपूर्ण तथ्य, पृ. 83
11. डॉ. देवदत्त शर्मा, वही पृष्ठ 9
12. डॉ. देवतत्त शर्मा, वही पृष्ठ 17
13. फा. नं. 8 एस/147/39, सी.आई.डी. डायरी, पृ. 23 रा. रा. अभि., अलवर
14. हरिनारायण सैनी, जुगमंदिर तायल, जीवनसिंह मानवी – वही, पृष्ठ –156
15. डॉ. देवदत्त शर्मा – वही पृष्ठ 23, 25
16. (i) हरिनारायण सैनी, जुगमंदिर तायल, जीवनसिंह मानवी – वही, पृष्ठ–63

    (ii) फा. नं. 8 एस/147/39, सी.आई.डी. डायरी, पृ. 26–27, रा. रा. अभि., अलवर
17. डॉ. देवदत्त शर्मा – वही पृष्ठ 35–36
18. (i) डॉ. कमल यादव – देशी रियासतों में राजनैतिक चेतना और जन आन्दोलन, पृ. 123–33

    (ii) द्वारका नाथ माथुर (सम्पादक) राजस्थान स्वाधीनता संग्राम के साक्षी, पृष्ठ–208 राजस्थान राज्य

    अभिलेखागार, बीकानेर सन् 2000

19. (i) फा. न. 232—सी/173/39 पत्र नं. 2—13 बीकानेर/40, 3 अगस्त, 1940, प्रधानमंत्री अलवर द्वारा रेजिडेन्ट जयपुर पत्र, रा. रा. अभि. बीकानेर

    (ii) फा. नं. 236 सी/177/39, पृ. 53—54 रा. रा. अभि., अलवर
20. गहलोत, जगदीश सिंह — अलवर व जयपुर राज्य का इतिहास, पृ. 292
21. बस्ता नं. 417 फा. नं. 1 युद्ध समाचार 27 अक्टूबर, 1940, पृ. 3, रा. रा. अभिलेखागार, अलवर, उद्धृत मुंश खां बालौत, डॉ. फूलसिंह सहारिया प्रधान सम्पादक चिराग—ए—मेवात (शोध पत्रिका) जून—दिसम्बर, 2016 पृष्ठ 57
22. फा. नं. 31 प्रजामण्डल समाचार पत्र, डी.ओ. नं. 262 सी/173, पृ. 39 रा. रा. अभिलेखागार, अलवर
23. फा. नं. 162 सी/142/39/पृ.—100 रा. रा. अभिलेखागार, अलवर
24. गुरु ब्रजनारायण राजगढ़ के एक माफीदार थे परन्तु कांग्रेस के प्रमुख नेता और समाज सुधारक थे।
25. गहलोत, जगदीश सिंह — वही पृ. 292
26. फा. नं. 29/पत्र नं. 93—सी/29 जनवरी, 1942, एस. आई. राजगढ़ ने अलवर प्रधानमंत्री को भेजा था, रा. रा. अभिलेखागार, अलवर
27. फा. नं. 129/पत्र नं. 218/सी/23 मार्च, 1942, रा. रा. अभिलेखागार, अलवर
28. फा. नं. 832/सी/25 अगस्त, 1942, फा. नं. 29, रा. रा. अभिलेखागार, अलवर
29. फा. नं. 819/सी/21 अगस्त, 1942, फा. नं. 29 रा. रा. अभिलेखागार, अलवर
30. जुगमंदिर तायल व हरिशंकर, गोयल — आरोह — अवरोह के सोपान विनय (अलवर अंक) 1969, पृ. 196, राजर्षि महाविद्यालय, अलवर
31. खेड़ा मंगलसिंह लक्ष्मणगढ़ निजामत का एक ग्राम है।
32. फा. नं. 34 एल/पी/46, पृ. 44 रा. रा. अभिलेखागार, अलवर
33. (i) फा.नं. 50 एल/पी/46, पृ. 115, रा. रा. अभिलेखागार, बीकानेर

    (ii) फा.नं. 34 एल/पी/46, पृ. 60, रा. रा. अभिलेखागार, बीकानेर
34. डॉ. पेमाराम, एग्रेरियन मूवमेंट इन राजस्थान, (1913—1947) पृ. 258
35. शर्मा, डॉ. बृजकिशोर, राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आंदोलन, पृ. 186
36. फा. नं. ला/गन/नं. 444/पी. पृ.1, रा. रा. अभिलेखागार, अलवर
37. फा. नं. उपरोक्त पृ. 1 से 4
38. फा. नं. उपरोक्त पृ. 12—13
39. फा. नं. 133/एल/पी/46, पृ. 11 रा. रा. अभिलेखागार, बीकानेर
40. फा. नं. 33/एल/पी/46, पृ. 12 रा. रा. अभिलेखागार, बीकानेर
41. (i) फा.नं. ला/नं. 52/एल/पी/46, पृ. 25, रा. रा. अभिलेखागार, बीकानेर

    (ii) अलवर पत्रिका, 21 अगस्त, 1946, पृ. 2
42. फा. नं. 33 एल/पी/46, पृ. 4 रा. रा. अभि., बीकानेर
43. (i) मायाराम, राजपूताना स्टेट गजेटियर, अलवर स्टेट, पृ. 90

    (ii) फा.नं. 3 जे/जे.डी.डी./146, पृ. 20, रा. रा. अभि., अलवर
44. तेज प्रताप, 26 फरवरी, 1948
45. (i) तेज प्रताप, 1 मार्च, 1948

    (ii) डॉ. फूलसिंह सहारिया, पूर्वी राजस्थान का इतिहास, पृ. 67
46. डॉ. देवदत्त शर्मा, वही पृ. 57, 58, 60

शकुन–अपशकुन का पौराणिक शास्त्रों में सचित्र हस्तलिखित वर्णन

(डॉ. निशा सोनी)

प्रकृति में होने वाली अद्‌भुत घटनाओं, विशिष्ट पशु–पक्षियों की शारीरिक क्रियाओं, ग्रहोपग्रहों एवं स्वप्न आदि से प्राप्त शकुनों को शुभाशुभ का सूचक मानने की प्रवृत्ति लगभग संसार के समस्त समाजों में चिरकाल से विश्वास में मानी गई है। आज के सभ्य कहे जाने वाले समाजों में भी शकुनों का प्रचलन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है और उनमें भी शकुनों का अशिक्षित ही नहीं शिक्षित लोग भी विश्वास करते हैं।

शकुन–अपशकुन मानव–मन में छिपे विश्वास–अविश्वास की कड़ी है। शुरू से ही मानव का मन शंकालु रहा है। शकुन–अपशकुन हमारे भारतवर्ष में प्राचीन काल से चले जाते आ रहे है। जहां तक भी हमारी दृष्टि जाती है, हम इस प्रवृत्ति के दर्शन करते हैं। वैदिक साहित्य, ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक एवं सूत्रग्रन्थ उपर्युक्त तथ्य की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं। वैदिक साहित्य के पश्चात् रामायण आदि में शकुन विचार का प्राचुर्य मिलता है। आज भी अनेकानेक शकुन भारतीय समाज में प्रचलित है।

भारतीय संस्कृति के नन्दन कानन में सचित्र हस्तलिखित ग्रन्थों की धरोहर प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। निजि स्तर पर मन्दिर, मठों, भूतपूर्व सामन्तों एवं राजकीय संग्रहालयों में हस्तलिखित ग्रन्थ विद्यमान है। पूरे देश मे यदि व्यापक स्तर पर उनका सर्वेक्षण कर संख्याबद्ध किया जाये तो इनकी तादाद करोड़ों तक पहुँच सकती है। अकेले राजस्थान में इनकी संख्या लगभग 10 लाख है। भाषा एवं विषय की दृष्टि से भी ये ग्रन्थ बहुत ही वैविध्यपूर्ण एवं समर्थ है।

ये हस्तलिखित ग्रन्थ रूपी धरोहर अपने अन्दर छुपे रहस्यों, धारणाओं, आग्रह–दुराग्रह, रीतिरिवाजों, प्रचलित प्रंसगों, अज्ञान गल्प, अतिशयोक्तियों व अनके तथ्यों को समय की परतों के नीचे दबे हुए व ढके प्रतीत होते जा रहे हैं। विषय की दृष्टि से ये ग्रन्थ एक ही विषय पर अनेक प्रतियों में प्राप्त है, और एक विषय वस्तु को आधार बनाकर अनेक रचनाएँ उपलब्ध है। ऐसे ही अनेक विषयों में से सचित्र हस्तलिखित ग्रन्थों में शकुन शास्त्र हमारे समाज में प्रचलित मान्यताओं एवं विश्वास के मूल की अद्वितीय व अलौलिक शक्ति है। यह विषय लोकाचरण या लोक प्रान्तों में, केवल किसी जाति विशेष के लौकिक संस्कार वरन् समाज में प्रचलित विश्वास एवं परम्पराओं धर्माचरण एवं कर्मकाण्ड, मनोभाव व अवधारणों, तन्त्र–मन्त्र एवं जादू–टोना, इतिहासपुराणादि सभी कुछ शकुन शास्त्रों में समाहित है। इन विषयों का दोहन किया जाये एवं विषयानुसार वर्गीकरण कर सम्पादन व शोध किया जाये

तो भविष्य सभ्यता एवं संस्कृति के अनेक नवीन तथ्य उद्घाटित हो सकते हैं जो हमारे पूर्वजों, ऋषि–मुनियों एवं विद्वानों के ज्ञानार्जन का निचोड़ हो।

किन्तु खेद इस बात का है कि हमारे देश की इस अमूल्य धरोहर हस्तलिखित ग्रन्थ परिचय के मोहताज है। इस सचित्र शकुन शास्त्रों का कलात्मक दृष्टि से अध्ययन अभी तक नहीं हुआ है। कुछ विद्वानों ने एक दो ग्रन्थों का विस्तृत अध्ययन कर कुछ सामग्री प्रकाशित की है, परन्तु उनमें कला पक्ष को कोई स्थान नहीं दिया है। सचित्र शास्त्रों का शकुन विषय पर कोई अध्ययन नहीं हुआ है। इनकी कला सामग्री अभी तक अछूती पड़ी थी; उसी को अपने शोध का विषय बनाकर मैंने अपना शोध कार्य पूर्ण किया है। हस्तलिखित सचित्र शकुन ग्रन्थों में शोध का कार्य पूण करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। ये ग्रन्थ हमारे देश की अमूल्य और समृद्ध धरोहर होने के बाद भी अपने परिचय को भी मोहताज है। सरकार संस्कृत भाषा में हस्तलिखित ग्रंन्थों का एक अन्य भाषाओं में बने ग्रन्थों का केट्लॉग तैयार करने का भी सहयोग नहीं कर पा रही है। सरकार ने इन ग्रन्थों पर अपना निजीत्त्व एवं पूर्ण अधिकार मानकर संग्रहालयों एवं प्राच्य विद्या प्रतिष्ठानों में सुरक्षित रखने की व्यवस्था तो कर रही है, किन्तु इन ग्रन्थों पर शोध एवं सम्पादन की आवश्यकता को मध्यनजर रखते हुए शोध विद्यार्थियों को उपलब्ध करवाने की बजाय इन ग्रन्थों को सिर्फ सुरक्षा की वस्तु बनाकर आलमारियों में बन्द कर रखे हैं। शोधार्थियों को कई परेशानियों का सामना बार–बार करना पड़ रहा है, क्योंकि शोधकार्य पूर्ण करने हेतु ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होते हैं। देश की आज़ादी के बाद इन ग्रन्थों के संरक्षण को जितनी प्राथमिकता मिलनी चाहिए, सम्पादन व शोध कार्य होना चाहिए वह नहीं हो पा रहा है। परिणाम स्वरूप अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ काल के प्रवाह में नष्ट हो रहे हैं या रद्दी के भाव बिक रहे है, अथवा तस्करों द्वारा विदेशों में पहुंच रहे है।

इतना ही नहीं इन ग्रन्थों पर शोध कर सम्पादन करने वाले विद्वानों की भी कमी होती जा रही है। नई पीढ़ी का रूझान इस ओर नहीं है। स्थिति यह है कि इन ग्रन्थों को पढ़ने व समझने वालों की धीरे–धीरे कमी होती जा रही है। सचित्र ग्रन्थों में प्रयुक्त देशज व स्थानीय भाषा, शब्दों, स्थानों का अर्थ समझना भी कठिन होता जा रहा है। शकुन मानव के विश्वास का प्रतीक है और शुभ विचार का द्योतक है।

शकुन का तात्पर्य – किसी कार्य के शुभ व अशुभ लक्षण को माना जाता है। हिन्दुधर्म ग्रन्थों के एवं शास्त्रों के अनुसार शंकुति, पक्षी,शकुनि, शकुनी, शकुत्र तथा 'द्विज' पक्षी के पर्यायवाची शब्द है। इसके आधार पर 'शकुन' को इसी श्रृंखला का शब्द माना गया।

कहा जाता है कि भारतीय मनीषियों ने सर्वप्रथम पक्षियों की विभिन्न क्रियाओं, कार्यकलाप एवं चेष्टाओं का सूक्ष्मता से गहन अध्ययन किया और इससे प्राप्त होने वाले ज्ञान को शास्त्र के रूप मे संकलित किया। बाद में पशुओं, जलचर, मनुष्यों एवं वनस्पतियों से संबधित घटनाओं को सम्मिलित कर इस शास्त्र को विस्तार प्रदान किया गया।[1]

कालान्तर में यही शास्त्र **'शकुन शास्त्र'** के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी का अनुसरण करते हुए शकुन–अपशकुन एवं मंगल–अमंगल का विवेचन किया गया व भारतीय साहित्य भण्डार में सचित्र हस्तलिखित ग्रन्थों के रूप में शकुन रूप में प्रचलित मान्यताओं एवम् विश्वास को ग्रन्थरूपी धरोहर में अपने अन्दर छिपे रहस्यों, धारणाओं, आग्रह–दुराग्रह, रीति–रिवाजों, प्रचलित प्रसंगो, अज्ञानगल्प व अतिश्योक्ति के अनेक तथ्यों को शकुन रूप में उपलब्ध कराया

<u>शकुन की परिभाषा</u>–

प्राचीन शकुन ग्रन्थ – 'वसन्तराज शकुन' में राजा चन्द्रसेन ने भट्ट वसन्तराज से प्रार्थना करके 20 वर्षों में शकुन ग्रन्थ 'वसन्तराज शाकुन' नामक शकुन ग्रन्थ की रचना की और शकुन को इस प्रकार परिभाषित किया –

बुद्धिं वो नरपक्षिणों द्विचरणा, यच्छंतु हस्त्याद्वयो माहात्म्यं

च चतुष्पदा रतिसुखं, भृंगादयः षट्पदाः।।1।।

उत्साहं शरभाद्योऽष्टचरणाः खर्जूरकाद्यास्तथा श्रेयोऽनेकपदा

महान्तमपदा भोगं भुजंगादयः।।2।।

अर्थात्

मनुष्य व पक्षी बुद्धि की, 'मोर' रति सुख की, हाथी महिमा की, 'कनखजूरे' श्रेय कर, 'सरीसृप भोग' की वृद्धि करे – इस कथन के अनुसार स्पष्ट किया गया है कि – दो पैर वाले, चार पैर वाले, छः पैर वाले, आठ पैर वाले, और सौ पैर वाले, असंख्य पैर वाले और बिना पैर वाले सभी जीव भविष्य की शुभ–अशुभ की सूचना देने की सामर्थ्य रखते हैं।[2]

शुभाशुभंज्ञानविनिर्णयाय हेतुर्नृणां यः शकुनः स उक्तः।

गतिस्वरालोकनभावचेष्टाःसंकीर्तयामो द्विपदादिकानाम्।

अर्थात्

वसन्तराज ने द्विपद आदि की विविध गतिविधियों से प्राप्त मानव के भावी शुभाशुभ के द्योतक संकेतों को शकुन की संज्ञा दी।[3]

–वसन्तराज शकुन ग्रन्थ–

रेशब जी के अनुसार–

जीव के पूर्व जन्म में जो शुभ–अशुभ कर्म किये हैं गमन के समय पशु–पक्षी उस जीव के कर्म प्रभाव को प्रभावित करते हैं, मूलतः यही शकुन है।[3]

वृहत्संहिता के अनुसार–

मनुष्य पूर्वजन्म में जो अच्छे या बुरे कर्म करता है प्रस्थान के समय पक्षी, उन्हीं कर्मो के फल को प्रकाशित करते हैं, यही शकुन है।[4]

''पक्षिगतिहस्त रेखादिलक्षणात् भविष्यदनुमानम्''

अंग्रेजी का Divination शब्द अधिक व्यापक हैं तथा इससे भावी सूचना की सभी पद्धतियों का बोध होता है, शकुन भी इन पद्धतियों में से एक है।

सृष्टि के समस्त प्राणी अपने कर्म के बन्धन में बंधे हुए हैं। किए हुए कर्मो के फल एवं करने वाले कर्मफल की शुभता के लिए उसका प्रतिफल उत्तम पाने के लिए जो क्रिया'' की जाती है उसे ही 'शकुन' कहते हैं। प्रकृति का अपना व्यवहार और शैली है, उसमें एक क्रम है और उस क्रम को पूर्णरूप से समझना शकुन है।[14]

सूचक संकेत एवं भावी घटना में कारण–कार्य–सम्बन्ध नहीं होता। शकुन वस्तुतः ऐसा संकेत हैं जो कारणान्तर से उत्पन्न होने वाले कार्य की सूचनामात्र देता हैं, स्वयं इस भावी घटना का कारण नहीं होता।[15]

शकुन का अर्थ –

शकुन – शकुन का अर्थ होता है मन में शुभ–अशुभ की पूर्व सूचना का ज्ञान होना।

विचार – विचार का अर्थ हैं मन में उत्पन्न होने वाली बात, भाव, भावना।

इस प्रकार से सम्मिलित रूप में शकुन विचार का अर्थ हुआ–

''मन मे उत्पन्न होने वाली शुभाशुभ भावों की पूर्व सूचना का ज्ञान होना''[16]

इस प्रकार शकुन जिसे सामान्य बोलचाल की भाषा में 'सगुन' कहा जाता है के भाव से प्रत्येक भारतवासी परिचित है। शकुनशास्त्र के अनुसार मुंडेर पर कौए को देखकर किसे यह आभास नहीं होता शायद आज कोई अतिथि आने वाला है। इसी को शकुन कहते

हैं। हमारे मनीषियों द्वारा प्रकृति के प्रति एक परिदृष्यि, सतत् निगरानी से प्राप्त अनुभव ही शकुन है।

शकुन शब्द बना है 'शकुन पक्षी' से जिसके विषय में यह मान्यता रही है कि उसे भविष्य में होने वाली घटनाओं का बहुत पहले से आभास हो जाता है। पशु–पक्षियों का इन्द्रिय ज्ञान मनुष्य की अपेक्षा सैकड़ों गुना अधिक होता है। प्रकृति में होने वाले छोटे से छोटे परिवर्तनों को उनकी अत्यधिक संवेदनशीलता जल्दी ही ग्रहण कर लेती है। वर्तमान युग में ऋतु परिवर्तन, भूचाल आदि के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिकों द्वारा यन्त्रों का अविष्कार किया गया है, परन्तु उनका लाभ सामान्य से अधिक नही मिल पाता। यही कारण है कि यन्त्रों के होते हुए भी पृथ्वी भागों में विभिन्न बाढ़, भूकम्प, तूफान आदि की विनाश लीलाएं आये दिन आकस्मिक रूप से घटती रहती है और वैज्ञानिक उपकरण सही–सही जानकारी नहीं दे पाते।[17]

सचित्र शकुनग्रन्थों में अनेक हस्तलिखित ग्रन्थों का भण्डार है जो विभिन्न प्रकार के 'पक्षी शकुनावली' का सचित्र विवरण मिलता है, इन ग्रन्थों में दस दिशाओं की दस पक्षी के शकुन कहे गये हैं, जिसमें बुलबुल, कौआ, तीतर, कबूतर, बतख, तोता, कुलंग, ऊदऊद, ताऊस आदि पक्षी के शकुन का वर्णन सचित्र रूप से किया गया है व पक्षी को शकुन का महत्वपूर्ण रूप माना गया है।

पाँच शकुन सम्राट –

जिस प्रकार मानवों में बुद्धि व कल्पना का स्तर भिन्न हुआ करता है। उसी प्रकार पशु–पक्षियों की बौद्धिक स्तर एवं मनः शक्ति भिन्न हुआ करती है। उन्नत मानसिक स्तर वाले पशु–पक्षी शकुन के रहते हैं। इसे इस तरह भी कहा जा सकता है कि नियति की इच्छा को संवाहित करने का इनमें उत्तम गुण होता है। होने को व्यक्ति स्वयं भी प्रयोजन की सिद्धि अथवा असिद्धि का आभास कर लेता है। ऐसा ही प्रत्येक पशु–पक्षी भी अदृष्ट का परिज्ञान होता है। पर कोई अधिक दूर तक का कोई किसी विशेष का। इसलिए सभी पशु–पक्षियों का शकुनशास्त्र में महत्व नही है।

काली–चिड़िया, कौआ, कुत्ता, कोचर, सियारी, ये पांच प्राणी ''शकुनो के सम्राट माने जाते हैं। हमारे ब्रह्मवादियों का विश्वास हैं कि इन पाँचों के अधिष्ठात् देवता क्रमशः **सरस्वती, गरुड, यक्ष, चण्डी, और शिवदूती हैं।** इन पशु–पक्षियों की हिंसा करने से इनके अधिष्ठात् देवता अप्रसन्न होते हैं। हम जिन पशुओं अथवा पक्षियों को देवताओं के वाहन के रूप में

देखते हैं वे सामान्यतः उनके अधिष्ठाता होते हैं। इसलिए सम्भवतः उनका वध या पीड़न करने से वे अधिष्ठात् देवता अप्रसन्न हो जाते हैं।[18]

शकुन अपशकुन क्या है –

शकुन–अपशकुन की लोकधारणा हमारे प्राचीन समय से ही रही हैं। आज वैज्ञानिक युग में आदमी चांद, मंगल और शुक्र ग्रह पर नई दुनिया बसाने की सोच रहा हैं, ऐसे में शकुनों तथा अपशकुनो पर विश्वास करना कुछ उचित नहीं लगता, फिर भी समाज का शायद ही कोई ऐसा वर्ग हो जो इन पर विश्वास न करता हो। विद्यार्थी, कलाकार, राजनेता, व्यापारी यहां तक कि वैज्ञानिक भी इन पर विश्वास करते हैं।

कहने का अर्थ यह है कि कुछ ऐसी शक्तियाँ होती हैं जो हमें घटने वाली घटना का पूर्व संकेत देने की कोशिश करती हैं। परन्तु हम समझ नहीं पातें। कुछ व्यक्ति इन्हीं शकुन–अपशकुनों से अंदाजा लगाते हैं कि उनका कार्य पूर्ण होगा या नहीं। ऐसा क्यों ? ऐसा इसलिए है कि मानव जीवन में इन शकुन–अपशकुनों का स्थान प्राचीन काल से ही प्रयोग रहा हैं। ये शकुन या अपशकुन रोजमर्रा के जीवन में देखने को मिल जाते हैं जैसे– नींबू, मिर्ची, काजल–टीका आदि। ये जीवन में इस कदर रचे–बसे हैं कि इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती हैं।

शकुन क्या है ? – शकुन का अर्थ है किसी भी कार्य के पूर्ण होने के शुभ लक्षण, जो हमारे मन में आत्मविश्वास पैदा करते हैं कि हमारा काम पूर्ण होगा।

अपशकुन क्या है ? – अपशकुन इसके विपरीत होता है। किसी कार्य के पूर्ण होने में संदेह हो तो कुछ लक्षणों को देखते ही मन में अवधारणा बना लेता हैं कि ये कार्य पूर्ण नहीं होगा।[18]

कुछ ऐसे लक्षणों को जो कार्य की अपूर्णता को दर्शाते हैं, हम अपशकुन मान लेते हैं। व्यक्ति के जीवन में अच्छी व बुरी, शुभ–अशुभ तथा शकुन–अपशकुन का चक्र भी घूमता है। क्योंकि प्रकृति ने हर चीज को जोडा है उसका जोडा बनाया है। जैसे– नर–मादा, फूल–कांटा, दुःख–सुख, आशा–निराशा, विश्वास–अवश्विास, शुभ–अशुभ। व्यक्ति के जीवन में अच्छा समय जरूर आता है। ऐसा समय कि वह मिट्टी को छुए तो सोना बन जाए अर्थात वह जिस कार्य में हाथ डालता हैं वह सफल होता हैं।

यह वक्त का पहिया हमारे जीवन चक्र के साथ चलता रहता है। इसी अच्छे व बुरे समय को हम शुभ–अशुभ समय कहते हैं। साल का नया दिन एक धारणा है कि साल के पहले दिन जेबों तथा अलमारी में कुछ न कुछ रखना चाहिए। कुछ प्रतीक महिलाओं के लिए

अतिसौभाग्यशाली होते हैं। जिसमे कुछ का वर्णन यहां प्रस्तुत है – माँग सिन्दुर से भरी महिला का मिलना शुभ माना जाता है। यदि गर्भवती महिला बैठकर कोई फल खा रही हैं और फल छूटकर उसकी गोद मे गिर जाए तो शुभ शकुन माना जाता है। उसकी गोद से उठा कर कोई स्त्री जिसके संतान न होती हो उस फल को खा ले तो शीघ्र ही वह संतानवती हो जाती है। उंगलियों में छल्ला, अंगूठी, पैर में बिछुवा धारण करना अच्छा शकुन माना जाता है। यात्रा के समय यदि कोई सुहागन गोद में बच्चा लेकर अचानक सामने आ जाए तो शुभ शकुन माना जाता है।

प्राचीन पौराणिक शास्त्रों में शकुन के स्वरूप का वर्णन

लोक कल्याण को ध्यान मे रखते हुए प्राचीन भारतीय ऋषि–मुनियों ने शकुनशास्त्र की रचना की। यह वर्षो से चले आ रहे उनके सतत् अध्ययन, चिंतन एवं अनुसंधान का निचोड़ था। जिस प्रकार ज्योतिष शास्त्र में सभी ग्रह–नक्षत्रों की स्थिति तथा गति से मनुष्य जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जाता है उसी प्रकार शकुनशास्त्र में पृथ्वी के विभिन्न प्राणियों एवं वस्तुओं द्वारा भविष्य में घटित होने वाली शुभ अशुभ घटनाओं का विश्लेषण किया जाता है। इसलिए पौराणानुसार शकुन–शास्त्र को ज्योतिष शास्त्र का ही एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है।

पौराणिक शास्त्रानुसार शकुन शास्त्री कहते हैं कि – इस शास्त्र का उपदेश स्वयं त्रिनेत्र शंकर ने किया है। यहां त्रिनेत्र कहने के पीछे यह आशय है कि उनका तीसरा नेत्र ज्ञान का सूचक है। यही नेत्र पदार्थ के अन्तस् को और समय की परत के भीतर देख सकता है तथा शिव हमारी विश्वास भूमि है। उनका वाक्य है –

स्वयं त्रिनेत्री भगवान गणानम्।

उपादिशत् शाकुन मुत्रमं यत्।।[20]

गोस्वामी तुलसीदास ने ''रामचरित्र मानस रामायण'' में कई स्थानों पर शकुन रूप में स्वप्नों का सुन्दर विवेचन किया है। जिस समय राम वियोग में महाराजा दशरथ का स्वर्गवास हो गया और गुरू वशिष्ठ ने भरत–शत्रुध्न को उनके ननिहाल से बुलाने के लिए दूतों को भेजा तो उधर भरत जी अपने ननिहाल में स्वप्नों को देखते हैं जो इस प्रकार है–

''अयोध्या काण्ड''

देखहि राति भयानक सपना।

जागि करहि कटु कोटि कल्पना।।

विप्र जोवाई देहि दिन–दाना।

शिव अभिषेक करहिं विधि नाना।।[22]

''त्रिजटा का सपना''

त्रिजटा नाम राक्षसी एका।

रामचरन रति निपुन विवेका।।

सबन्ही बोलि सुनाएसि सपना।

सीतहिं सेह करहु हित अपना।।

सपने वानर लंका जारी।

जातुधान सेना सब मारी।।

–सुन्दरकाण्ड–

भारतीय वैज्ञानिक शास्त्रों के अनुसार शकुन का स्वरूप की प्रकृति कितनी दृढ़ एवं व्यापक हैं, यदि हम इनका दिग्दर्शन करना चाहें तो चरकसंहिता पर दृष्टिपात कर सकते हैं। विशुद्ध रूप में आयुर्वेद–विज्ञान से सम्बद्ध चरकसंहिता जैसे उच्चकोटि के ग्रन्थ भी शकुनों में विश्वास की प्रवृत्ति से अछूते नहीं हैं। इन्द्रियस्थान, अध्याय बारह में रोगी के दूत से प्राप्त होने वाले अनेक शुभाशुभ शकुनों का वर्णन ही नहीं मिलता, प्रत्युत् सिद्धि एवं यश के इच्छुक प्राप्त भिषक् को इन शुभाशुभ शकुनों के अध्ययन के लिए प्रेरित भी किया गया है।

इसी प्रकार इन्द्रियस्थान अध्याय पाँच में स्वप्नों से प्राप्त, इन्द्रियस्थान अध्याय आठ में छाया से प्राप्त, तथा इन्द्रियस्थान अध्याय चार में अनेकानेक शकुनों की चर्चा की गई है।

भारतवर्ष में शकुनों में पौराणिक विश्वास के अनुसार दो अवस्थाएं परिलक्षित होती है। **पहली अवस्था** में शकुनों के संकेतों द्वारा भावी अशुभ घटनाओं को जानने का प्रयत्न किया जाता था जिससे यज्ञ अथवा देवताओं की स्तुति द्वारा अथवा अन्य जादू टोनों के मंत्रों द्वारा उनका निराकरण किया जा सके। **दूसरी अवस्था** में शकुनों के संकेतो द्वारा भावी शुभ या अशुभ घटनाओं की यथार्थता को जानने की चेष्टा की जाती थी। किन्तु विकास की दोनों अवस्थाएं इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं कि शकुनों में विश्वास निर्विवाद रूप से विद्यमान था।

संदर्भ

1. डॉ. जय प्रकाश शर्मा – भारतीय शकुन शास्त्र पृष्ठ 19 (राज ज्यातिषी) इण्डिका पब्लिशर्स– नई दिल्ली
2. भट्ट बसन्त राज – बसन्त राज शकुन पृष्ट 3 प्रथम वर्ग
3. भट्ट बसन्त राज – बसन्त राज शकुन पृष्ट 6 प्रथम वर्ग
4. डॉ. जय प्रकाश शर्मा – भारतीय शकुन शास्त्र पृष्ठ सं0 21 इण्डिका पब्लिशर्स– नई दिल्ली
5. एम. एम. विलियम्स – ए डिक्शनरी ऑफ इंग्लिश एण्ड संस्कृत 1991 पेज नं. 201
6. रामचन्द्र चौधरी – शकुन विचार पेज नं. 5 अमित पॉकेट बुक्स, जालन्धर
7. डॉ. जय प्रकाश शर्मा – भारतीय शकुन शास्त्र पृष्ठ नं. 10 इण्डिका प्रकाशन– नई दिल्ली
8. डॉ. महेन्द्र मिश्रा – शकुन–अपशकुन पेज नं. 1, (ज्योतिषाचार्य) पुनीत प्रकाशन, जयपुर
9. चार्ल्स विनिक – ए डिक्शनरी ऑफ एन्थ्रोपोलोजी पेज नं. 391
10. द सेन्चुरी डिक्शनरी – वो. – 4105
11. ए.एच.एम.सी.डोनाल्ड – द एन्सीक्लोपीडिया अमेरिकन 1947, पेज नं. 682
12. चार्ल्स विनिक – ए. डिक्शनरी ऑफ एन्थ्रोपोलोजी 392
13. फंक एण्ड वेगनल्स – न्यू स्टैण्डर्ड डिक्शनरी ऑफ द इंग्लिश लैंग्वेज वाल्यूम-3
14. पं. वाई. एस. झा – स्वप्न फल एवं शकुन ज्योतिष, (ज्योतिषाचार्य एवं तांत्रिक) अमित पाकेट बुक्स
15. सी. एस. बर्न – द हेन्बुक ऑफ फॉकलोर
16. रामचन्द्र चौधरी – शकुन विचार पल, अमित पाकेट बुक्स जालन्धर
17. पंडि. वाई. एन. झा तुफान – स्वप्न एवं शकुन ज्योतिष अमित पाके बुक्स पेज नं. 76
18. वाई डी. सरस्वती – शकुन–अपशकुन द्वारा भविष्य ज्ञान गोल्ड (ज्योतिषाचार्य) बुक्स (इण्डिया) दिल्ली पेज नं. 5, 6

19. पं. वाई. एन. झा (तूफान – स्वप्न फल एवं ज्योतिष पेज नं. 70
(ज्योतिषाचार्य एवं तांत्रिक), अमित पाकेट बुक्स, जालन्धर

20. गोस्वामी तुलसीदास – रामचरित्र मानस रामायण अयोध्या काण्ड, सुन्दरकाण्ड

21. दीपचन्द्र शर्मा – संस्कृत काव्य में शकुन– पेज नं. 39, 40, 41

22. वाल्मिकि – रामचरित्र मानस– अयोध्या काण्ड, उत्तर काण्ड, बालकाण्ड

23 अपशकुन परिहार – गरूड़पुराण, प्रश्न मार्ग ग्रन्थ अ. (3.29)

24.तुलसीदास – दोहावली– पृष्ठ 460–461

25.आचार्य वाराह मिहिर – वृहत संहिता (अ. 85.5)

107.स्त्री नेत्र फड़कन विचार
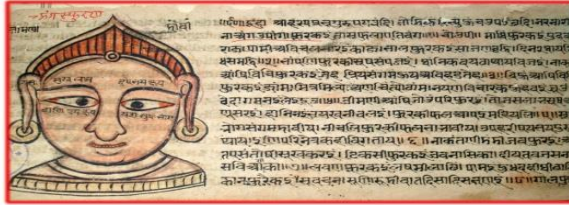
108. पुरूष नेत्र फड़कन विचार

स्त्री व पुरूष नेत्र फड़कन विचार

106

पक्षी शकुनावली (दस दिशानुसार)

41
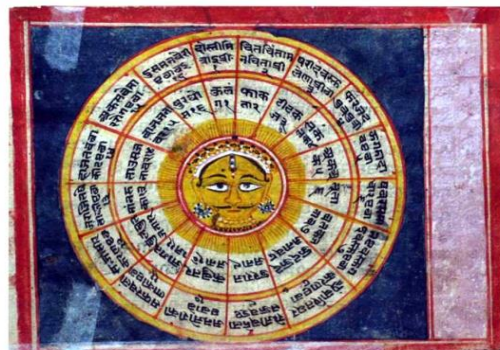
42

आदि पुराण सचित्र (स्वप्न विचार)
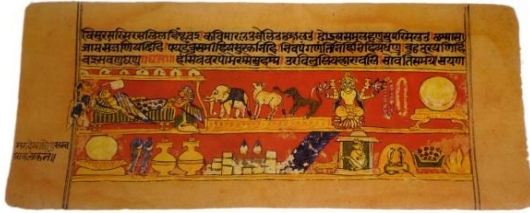
113. यशोवती को स्वप्न में 16 प्रतीक दर्शन
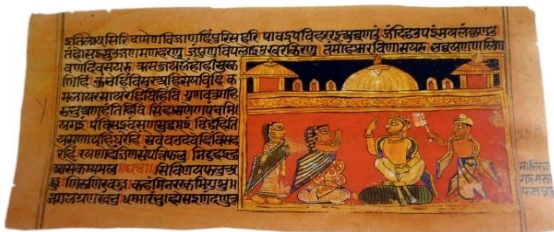
114. स्वप्न फल पूछना

महात्मा गौतम बुद्ध कालीन समाज में व्याप्त विसंगतियों का अध्ययन

(शंकर लाल मकदूम, शोधार्थी, टी०डी०पी०जी० कालेज जौनपुर)

प्रस्तावना

गौतम बुद्ध जिन्हें महात्मा बुद्ध के नाम से सारा संसार जानता है तथा जो बौद्ध धर्म के संस्थापक के रूप में जाने जाते हैं, कपिलवस्तु के राजा शुद्धोधन के पुत्र थे । इनका जन्म ई0 पू0 486– 577 वर्ष (अब तक अस्पष्ट है) माना जाता है।इस समय समाज में कई प्रकार की विकृत्तिया जन्म ले चुकी थी। क्रोध ,लोभ, मोह तथा अहंकार के चलते लोग अन्याय भी करते थे तथा कमजोर लोगों का शोषण भी किया जाता था। मानव के कुण्डित विचार जैसे– हिंसा, बैर, क्रोध तथा पाप हर तरफ फैले हुए थे ।जीवन मात्र एक साधन बनकर रह गया था। मानव जीवन एक अनमोल जीवन है ।इसमें जन्म लेने वाले प्राणी अपने बुध्धित्व एवं आध्यात्मिक ज्ञान के चक्षु से अपने जीवन को साध्य रूप में परिवर्तित कर पारलौकिकता का अनुभव कर सकता है ।अपने जीवन के अर्थ को समझ सकता है तथा अपने जीवन मूल्य को दूसरे की सेवा में लगा कर मूल्यवान बना सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ ना कुछ ऐसी घटनाएं अवश्य घटित होती हैं। जिससे वह सदैव नवीन प्रेरणा व ज्ञान की वृद्धि करता है। परंतु बहुत लोग इसे नजर नजर अंदाज कर मात्र भौतिक सुखों में सुखी तथा दुख में पीड़ित होकर भी उसी क्रियाकलाप में रमे रहते हैं । गौतम बुद्ध ने ऐसा नहीं किया। भौतिक सुखों के बावजूद उनका जीवन बाल्यावस्था से ही साधु–संतों का जीवन रहा है। क्योंकि उन्होंने अपनी काम इंद्रियों ,काम , क्रोध,लोभ,मोह, अहंकार पर नियंत्रण पा लिया था। उनका जन्म , उनकी शिक्षा , बौद्धिक स्तर का विकास , सांसारिक घटनाएं ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएं हैं जिन्होंने उनके आध्यात्मिक ज्ञान में वृद्धि भी करी तथा उनको मानसिक तौर पर बलशाली एवं सशक्त भी बनाया। दृढ़ निश्चय, करुणावादी, सभी जीवो से प्रेम करने वाला हृदय जैसी आधारशिला गौतम बुध के समाज दर्शन में देखी जा सकती हैं।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र में महात्मा बुद्ध के जीवन काल में घटित घटनाओं के कारण समाज दर्शन की पड़ती नीव पर प्रकाश डालना ही प्रमुख उद्देश्य है

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र में वर्णानात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है तथा साक्ष्यों को विभिन्न प्रकार से पुस्तकों, जनरलर्स आदि के माध्यम से एकत्रित कर उनका क्रमबद्ध विश्लेषण एवं संबंध ज्ञात करने का उचित प्रयास किया गया है। अतः प्रस्तुत शोध पत्र दैवतीयक शोधों पर आधारित है। प्रस्तुत शोध में गुणात्मक चरों का प्रयोग किया गया है जिसमें बौद्ध जी का समाज दर्शन आश्रित चर हैं एवं उनके जीवनकाल की घटनाएं स्वतंत्र चर हैं ।विश्लेषण हेतु कार्य– कारण संबंध तकनीक का प्रयोग किया गया है।

प्रस्तुत शोध पत्र में सर्वप्रथम गौतम बुद्ध के जीवन काल में घटित घटनाओं की चर्चा की गई है। तदुपरांत समाज दर्शन को बताया गया है ।अंत में निष्कर्षात्मक विचार प्रस्तुत किया गया है।

महात्मा बुद्ध के जीवन काल से जुड़ी महत्वपूर्ण घटनाएं

बुद्ध जी के जन्म से जुड़ी घटना का साक्ष्य त्रिपिटक ग्रंथ अगुंत्तर निकाय में मिलता है तथा उनकी शिक्षा से जुड़ी घटनाएं भी इसी ग्रंथ में मिलती हैं। बौद्धिक स्तर से जुड़ी घटनाओं का वर्णन भी त्रिपिटक के अन्य संदर्भो में देखा जा सकता है। इन साक्ष्यों को यहां इसलिए प्रस्तुत किया जा रहा है। ताकि उनके समाज दर्शन की नींव एवं आधारशिला को स्पष्ट किया जा सके।

1— जन्म संबंधी घटना

सिद्धार्थ की जन्मतिथि के विषय में विद्वानों एवं शोधकर्ताओं में मतैव्य नहीं है । इस विषय पर विश्व के विद्वान अलग—अलग मत रखते हैं । दीवान बहादुर स्वामिकन्नू पिल्लै के मतानुसार बुद्ध का महापरिनिर्वाण ई0पू0 475 मे वर्ष में हुआ था। बुद्ध 80 वर्ष तक जीवित रहे। इससे निष्कर्ष प्राप्त किया जा सकता है कि बुध्द का जन्म ईसा पूर्व 558 वर्ष में हुआ था।जैन वाड्मय के अनुसार बुध का जन्म ईसा पूर्व 600 वर्ष में माना गया है उनके नाम राहुल सांकृत्यायन के अनुसार बुध्द का जन्म ईसा पूर्व 563 वर्ष में हुआ था। इसी वर्ष से सहमति प्रकट करते हुए डॉ अंबेडकर बुद्ध का जन्म ईसा पूर्व 563 वर्ष मानते हैं। प्राचीन इतिहास के विद्वान के0टी0यस0सराओ के अनुसार बुध्द का जन्म ईसा पूर्व 477 वर्ष में हुआ था।

कुछ अन्य आधुनिक विद्वानों का कहना है ,'बुद्ध का महापरिनिर्वाण ई0 पू0 486—87 वर्ष में हुआ था ।इस प्रकार बुध्द का जन्म ई0पू0 566— 577 वे वर्ष में माना जा सकता है। इस मत के मानने वाले विद्वान 'यूनान के प्रमाणों के आधार पर इस बात को मानते हैं। उनके अनुसार अशोक का राजतिलक लगभग ईसा पूर्व 268 या 267वें वर्ष में हुआ था। जिसके आधार पर बुद्ध का जन्म ईसा पूर्व 566वें वर्ष में माना जा सकता है और महापरिनिर्वाण ई0पू0 486 वे वर्ष में।

आधुनिक काल में नई खोजों के अनुसार और श्रीलंका में महावंश और दीपवंश में प्रदत्त मान्यताओं के अंतर्गत बुद्ध का जन्म अशोक के राज्याभिषेक के ईसा पूर्व 298 वर्ष और महापरिनिर्वाण ईसा पूर्व 218 वर्ष माना गया है। अशोक का राज्याभिषेक ईसा पूर्व 326 वर्ष बताया जाता है। इस प्रकार बुद्ध का जन्म 298. 326 = ईसा पूर्व 624 वर्ष और महापरिनिर्वाण ईसा पूर्व 544 वर्ष माना जा सकता हैद्य 1956 ईस्वी में 2500 वीं बुद्ध जयंती विश्व स्तर पर मनाई गई। उस समय श्रीलंका, दक्षिण पूर्व एशिया आदि बौद्ध देशों में इसी तिथि को मान्यता प्रदान की गई।

2— शिक्षा संबंधी घटनाएं एवं आध्यात्मिक प्रशिक्षण

आठ वर्ष की आयु में शुद्दोधन ने उन आठ ब्राह्मणों को सिद्धार्थ की शिक्षा के लिए नियुक्त किया, जिन्होंने महामाया के स्वप्न की व्याख्या करके भविष्यवाणी की थी। उनके द्वारा सब कुछ सिखा देने के बाद उदीच्य देश के उच्च कुलोत्पन्न प्रथम कोटि के भाषाविद तथा व्याकरण, वेद, वेदांग तथा उपनिषदों के पूरे ज्ञाता सबमित्त को बुलाया यह सिद्धार्थ के दूसरे आचार्य थे । उनके आधीन रहकर सिद्धार्थ ने उस समय के सभी दर्शन शास्त्रों और ज्ञान पर अधिकार प्राप्त कर ली लिया। इसके अतिरिक्त उसने भारद्वाज से चित्त को एकाग्र तथा समाधिस्थ करने का मार्ग सीख लिया। इस प्रकार सिद्धार्थ को सभी प्रकार की शिक्षा मिल रही थी किंतु साथ ही साथ एक क्षत्रिय योग्य सैनिक शिक्षण की ओर भी उदासीनता नहीं दिखाई जा रही थी।

इस आयु का साधारण बालक खेल—कूद में मस्त रहना पसंद करता है, लेकिन सिद्धार्थ जब कभी अपने पिता की जमींदारी में जाता वहां कृषि संबंधी कोई काम ना होता,तो किसी

एकांत कोने में जाकर ध्यानरूढ़ हो जाता था। इससे सिद्धार्थ के अंतर्मुखी होने का पता चलता है एवं सिद्धार्थ की बचपन की प्रवृत्तियों में उसके बुध्द बनने एवं तदुपरांत उनके समाजदर्शन के बीज अंकुरित परिलक्षित होते हैं

3– बौद्धिक स्तर से जुड़ी घटनाएं

बुध्द के समाजदर्शन के मूलाधार प्रज्ञा,शील,मैत्री और करुणा हैं। ये चारों ही बातें सिद्धार्थ के जीवन के सिद्धांत थे।एक महत्वपूर्ण घटना से ये चारों बातें प्रकट होती हैं । उनका क्षत्रिय वंश था । इस कारण उसे धनुष चलाने तथा अन्य शस्त्रों का प्रयोग करने की शिक्षा मिली थी। लेकिन यह किसी प्राणी को अनावश्यक रूप से कष्ट देना नहीं चाहता था। वह शिकारियों के दल के साथ जाने से इनकार कर दिया करता था। उसके मित्र कहते,क्यों तुम्हें शेर–चीतों से डर लगता है?' वह उत्तर देता, मैं जानता हूं कि तुम शेर–चीतों के मारने वाले नहीं हो, तुम हिरण और खरगोश जैसे निस्पृह जानवरों को मारने वाले हो। उसके एक मित्र ने व्यंग करते हुए कहा,' शिकार के लिए नहीं, तो अपने मित्रों का निशाना देखने के लिए आओ' सिद्धार्थ का उत्तर उनके हृदय की करुणा को व्यक्त करता है। मैं निर्दोष प्राणियों के वध का साक्षी नहीं होना चाहता।

सिद्धार्थ की करुणा कितनी अनुपम एवं महान थी कि अपने भाई को प्रसन्न करने की अपेक्षा एक पक्षी की जान बचाना अधिक श्रेयस्कर समझा। इन घटनाओं से यह निरपेक्ष रूप से सिद्ध हो जाता है कि सिद्धार्थ बचपन से ही प्रज्ञावान और करुणामयी थे। उनके समाजदर्शन को बीज रूप में उनके बाल्यकाल की घटनाओं में देखा जा सकता है।

भारतीय इतिहास में सिद्धार्थ के महाभिनिष्क्रमण को इस प्रकार प्रस्तुत किया है, जो सामान्य सोच के अनुकूल नहीं है। बुध्द के गृहत्याग एवं प्रवज्या के बारे में परंपरागत यह मान्यता रही है। एक समय की बात है कि कुमार सिद्धार्थ कपिलवस्तु का अवलोकन करने निकले उस दिन नगर को खूब सजाया गया था । कुमार सिद्धार्थ नगर की शोभा को देखता जा रहा था कि उसका ध्यान सड़क के एक ओर लेट कर अंतिम सांस लेते एक बीमार व्यक्ति की ओर गया, जो कष्ट के कारण भूमि पर पड़ा हुआ तड़प रहा है और थोड़ी देर में उसका देहांत हो गया। इस घटना का सिद्धार्थ पर गहरा प्रभाव पड़ा।

इसके बाद लाठी टेककर जाता हुआ एक बूढ़ा,श्मशान की ओर जाती हुई एक अर्थी और एक शांत मुख सन्यासी दिखाई दिए। ''पहले तीनों दृश्यों को देखकर सिद्धार्थ का दबा हुआ वैराग्य एकदम प्रबल हो गया।'' ''उसे भोगविलास का जीवन अत्यंत तुच्छ और क्षणिक जान पढ़ने लगा।'' ''सन्यासी को देखकर उमंग आई कि मैं फिर संसार से विरक्त हो जाऊं।'' '' उसने संसार का परित्याग कर सन्यास ले लेने का दृढ़ संकल्प कर लिया।''

इस प्रकार गृहस्थ जीवन के दुखों और सशस्त्र प्रवित्ति–मार्ग से बोधिसत्व ऊब गए और उन्होंने सशस्त्र–निवृत्ति मार्ग को स्वीकार किया ।सुत्तनिपात ग्रंथ के ही प्रबज्जा सूत्र के प्रारंभ में गाथाएं हैं,जिसके अंतर्गत ''आयुष्मान आनंद भगवान की पूजा का वर्णन किया है और बताया है कि किस प्रकार से विम्बिसार के प्रलोभन में ना पड़ कर मुक्ति की गवेषणा के लिए आगे बढ़ गए।''

पब्बज्ज कित्तयिस्सामि, यथा पब्बजि चक्खुमा।
यथा वीमांसमानो सो पब्बजँ समरोचयि।।1।।
संबंधों, यं मं घरवासो, रजस्सायतनं इति।
अब्भोकासों च पबबज्जा , इति दसवां पब्बजि।।2।।

अर्थात ''जिस प्रकार चक्षुष्मान(बुध्द) हुए,उनकी प्रव्रज्या का मैं वर्णन करूंगा कि किस प्रकार विचार करते हुए उन्होंने प्रव्रज्या को पसंद किया। यह घर गृहस्थी का रहना संकटपूर्ण है, यह पापों का घर है । प्रव्रज्या खुले आकाश की भांति है, ऐसा देखकर (वे) प्रव्रजित हुए।''

यह कथन कोई अप्रासंगिक नहीं, वरन इसका आधार त्रिपिटक के अन्य संदर्भों में भी देखा जा सकता है। वहां भगवान कहते हैं,'' हे अग्निवेसन! संबोधि (ज्ञान) होने से पहले बोधिसत्व की स्थिति में ही मुझे लगा कि गृहस्थ आश्रम अड़चनों और कूड़े – कचरे की जगह है, तो प्रव्रज्या खुली हवा है। गृहस्थ आश्रम में रहकर अत्यंत परिपूर्ण एवं परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का आचरण करना संभव नहीं है। अतः मुंडन करके और काषायवस्त्र धारण करके घर से बाहर निकलकर परिव्राजक होना उचित है।''

लेकिन इसी बात को 'अरियपरियेसन सुत्त' में थोड़ा भिन्न प्रकार से दिया गया है। भगवान भिक्षुओं को कहते हैं' ''हे भिक्षुयों ! संबोधी (ज्ञान)होने के पूर्व जब मैं बोधिसत्व था' तभी मैं स्वयं जन्मधर्मी होते हुए भी जन्म के चक्कर में फंसी हुई वस्तुओं (पुत्र – दारा ,दास – दासी आदि) के पीछे लगा हुआ था। (अर्थात मुझे लगता था कि मेरा सुख इन वस्तुओं पर निर्भर है।) स्वयं जरा धर्मी होते हुए, जरा ,व्याधि, मरण और शोक के चक्कर में फंसी हुई वस्तुओं के पीछे पड़ा हुआ था तब मेरे मन में यह विचार आया कि मैं स्वयं जन्म,जरा ,मरण, व्याधि और शौक से संबंध हूं , तो भी उन्ही से संबद्ध पुत्र–दारा आदि के पीछे पड़ा हूं, यह ठीक नहीं है। अतः यह उचित है कि यह जन्म , जरा आदि से होने वाली हानि देखकर अजान ,अजरा,अव्याधि,अमग और अशोक परम श्रेष्ठ निर्माण–पद का मैं शोध करूं।

स्पष्ट है कि जिसने स्वयं सर्वत्र का परित्याग कर सत्य का मार्ग पा लिया हो , वही दूसरे को सही मार्ग दिखा सकता है।

बुद्ध का समाजदर्शन

बुध का समाज दर्शन जिन मूल्यों पर निर्भर करता है, उनकी संख्या तो अनेक हैं,लेकिन फिर भी उन्हें निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है।बुध्द का समाज दर्शन धम्मपद (धम्मठ वग्ग,दंड वग्ग,क्रोध वग्ग,ब्राह्मण वग्ग, यमक वग्ग,सुख वग्ग,निरअ वग्ग,पुप्फ वग्ग,पाप वग्ग,मल वग्ग,बुध्द वग्ग आदि) ग्रंथ में मिलता है।

1. अहिंसा– बुध्द आर्यों के द्वारा यज्ञों में दी जाने वाली पशुओं की बलि एवं हिंसा के प्रबल विरोधी थे ।उन्होंने हिंसा का कभी समर्थन नहीं किया इस संदर्भ में उन्होंने कहा प्राणियों की हिंसा करने से कोई आर्य नहीं होता। सभी प्राणियों की हिंसा न करने से आर्य कहलाता है । जो सुख चाहने वाले प्राणियों को अपने सुख की चाह से दंडित करता है वह मर कर भी सुख नहीं पाता।जो सुख चाहने वाले प्राणियों को अपने सुख की चाह से दंडित नहीं करता वह मर कर भी सुख पाता है । अंत में बुद्ध ने अहिंसा के लाभ को बताते हुए कहा जो मनुष्य हिंसा से रहित है नित्य अपने शरीर से संयत है,वह उस अच्युत पद को प्राप्त करते हैं, जिसे प्राप्त कर वह शौक नहीं करते। अहिंसा का महत्व बताते हुए वह कहते हैं चर–अचर प्राणियों में प्रहार–विरत हो,जो ना मारता है ना मारने की प्रेरणा देता है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।बुध्द के युग में ब्राह्मण यज्ञों में अश्व,गौ,मनुष्य आदि की बलियां देकर हिंसा में लगे रहते हैं । बुद्ध ने ऐसे लोगों को सद्मार्ग दिखाया, जिसके फलस्वरूप अनेक ब्राह्मण बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गए और इससे वर्ण व्यवस्था को बहुत बड़ा धक्का लगा।

2. अक्रोध– क्रोध और हिंसा में बड़ा गहरा और उच्च कोटि का सकारात्मक संबंध है। यह दोनों ही प्रवृतियां समाज की अवनति का मुख्य कारण होती हैं। इसलिए इस संदर्भ में वह कहते हैं, क्रोध को छोड़ दें, अभिमान का त्याग करें, सारे संयोजनो(बंधनो) से पार हो जाएं, ऐसे नाम रूप से आसक्त ना होने वाले तथा परिग्रह रहित को दुख संताप नहीं देते,जो चढ़े क्रोध को भ्रमण करते रथ की भांति रोक लेता है उसी को मैं सारथी कहता हूं दूसरे तो केवल लगाम पकड़ने वाले हैं ।अक्रोध(प्रेम) से क्रोध को जीते,असाधु को साधुता (भलाई)से जीते, कंजूस को दान देने से जीते और झूठ बोलने वाले को सत्य से जीते ।सच बोलें क्रोध ना करें थोड़ा भी मांगने पर दे दे इन तीन बातों से पुरुष देवताओं के पास जाता है।बुध्द के युग में ब्राह्मण हिंसक होने के कारण क्रोधी और गुस्सैल हुआ करते थे बात बात में शाप देना उनकी आदत थी इसलिए बुध ने ब्राह्मणों पर लगाम लगाने के लिए यह उपदेश दिए। इससे वर्ण व्यवस्था को भारी धक्का लगा।

3.अवैर– क्रोध और वैर का गहरा संबंध है।इस विषय में बुध्द का कथन है संसार में वैर से वैर कभी शांत नहीं होता अवैर(मैत्री)से ही वैर शांत होता है– यही सदा का नियम है। उसने मुझे डांटा , उसने मुझे मारा, उसने मुझे जीत लिया, उसने मेरा लूट लिया जो ऐसा भाव मन में बनाए रखते हैं उनका वैर शांत हो जाता है।अनाड़ी लोग इसका ख्याल नहीं रखते कि हम इस संसार में नहीं रहेंगे जो अहो! हम सुख पूर्वक जीवन बिता रहे हैं,वैरी मनुष्य के बीच अवैरी होकर हम विहार करते हैं बुध्दके इन वचनों का पालन करने से समाज में समरसता पाई जा सकती है वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मणों को सर्वोच्च साध्य मन जाता है । क्षत्रिय द्वितीय और वैश्य तृतीय साध्य के रूप में होते है।शुद्र इन तीनो वर्णो के लिए साधन मात्र है।जिसके फलस्वरूप शुद्रो का शोषण , उन पर अत्याचार एवं हत्याएं और उनकी महिलाओं पर बलात्कार होते रहे हैं, जिससे भारतीय समाज में विघटन उत्पन्न हो गया है।

4.सत्यभाषण– भगवान बुध्द ने सत्य पर बहुत बल दिया है।बुध्द के समजदर्शन में सत्य महत्वपूर्ण स्थान रखता है । इस विषय मे बुध्द का कथन है,असत्यवादी नरक में जाता है और वो भी जो करके नही कहता है। दोनों ही प्रकार के नीच कर्म करने वाले मनुष्य मर कर समान है। जैसे सुंदर वर्ण युक्त निर्गन्ध पुष्प होता है वैसे ही आचरण न करने वाले के लिए सुभाषित वाणी निष्फल होती है।जैसे सुंदर वर्णयुक्त सुगंधित पुष्प होता है,वैसे ही आचरण करने वाले के लिए सुभाषित वाणी सफल होती है। बुध्द के इन उपदेशो का यदि ब्राह्मण अनुशीलन करने लगें तो ब्राह्मणवाद समाप्त हो जाएगा।

5. पुण्य कर्म– समाज के सर्वांगीण विकास के लिए सभी प्रकार के पुण्य कर्मों का करना आवश्यक होता है। इस विषय में बुद्ध कहते हैं यदि मनुष्य पुण्य करें तो उसे बार–बार करें उसमें रत होए क्योंकि पुण्य का संचय सुखदायक होता है । जब तक पुण्य का फल मिलता है तब उसे पुण्य दिखलाई देने लगता है वह मेरे पास नहीं आएगा ऐसा सोचकर पुण्य की अवहेलना न करें ,जैसे पानी की बूंद– बूंद के गिरने से घड़ा भर जाता है वैसे ही धीर पुरुष थोड़ा–थोड़ा संचय करते हुए पुण्य को भर लेता है पुण्य करने से जो इस लोक में मोद करता है और परलोक में जाकर भी पुण्यशील दोनों ही जगह जाकर मोद करता है ।वह अपने कर्मों की विशुद्धि को देखकर मोद करता है,और जो इस लोक में आनंद करता है और परलोक में जकर भी पुण्यशील दोनो जगह आनंद करता है। मैंने पुण्य किया है सोच आनंदित होता है सुगति को प्राप्त हो और भी अधिक आनंद करता है । यथार्थ में स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए पुण्य आवश्यक होता है वर्ण व्यवस्था में अज्ञान और अविद्या के कारण ब्राह्मणों ने अन्य वर्णों के लोगों को ऐसा भ्रमित कर दिया कि वे पुण्य

और पाप में अंतर नहीं कर सके। जिस दिन वह पुण्य और पाप में अंतर करके पुण्य का अनुशीलन करने लगेंगे उसी दिन वर्ण व्यवस्था समाप्त हो जाएगी।

6.पाप–कर्म–– भगवान बुद्ध के अनुसार मनुष्य को पाप कर्म कभी नहीं करने चाहिए। मनुष्य यदि पाप कर दें तो उसे बार–बार न करें उसमें रत् न होवे,क्योंकि पाप का संचय दुःखदायक है । जब तक पाप का फल नहीं मिलता तब तक पापी भी पाप को अच्छा ही समझता है किंतु जब पाप का फल मिलता है तब उसे पाप दिखाई देने लगता है ना आकाश में न समुद्र के मध्य में न पर्वतों के शिखर में प्रवेश कर संसार में कोई स्थान नहीं जहां रहकर पाप–कर्मों (के फल) से प्राणी बन सके। पाप–कर्म करते समय मूर्ख उसे नहीं समझता है किंतु पीछे (वह) दुर्बुद्धि से अपने ही कर्मों के कारण आग से जले की भांति अनुताप करता है।निर्लज्ज कौवे जैसा (स्वार्थ में)शूर, दूसरे का अहित करने वाले अतीत वकवादी पापी मनुष्य का जीवन सुख पूर्वक नहीं बीतता है ।इस प्रकार बुध्द के समाजदर्शन में पाप कर्म को सबसे हेय समझा गया है।

7.शीलवान होना– आदर्श समाज के लिए कोई भी समाजदर्शन शील के मूल्यों से युक्त होना चाहिए। इस विषय में बुद्ध का कथन है दुःशील और एकाग्रता रहित के 100 वर्ष के जाने से भी शीलवान और ध्यानी का 1 दिन का जीवन श्रेष्ठ है पुष्प, चंदन, तगर या चमेली किसी की भी सुगंध उल्टी हवा नहीं जाती। सत्य पुरुष सभी दिशाओं में सुगंध बहाता है । चंदन या तगर कमल या जूही इन सभी की सुगंधो से शील (सदाचार) की सुगंध उत्तम है। तगर और चंदन की जो यह गंध फैलती है वह अल्प मात्र है और जो यह सिलवानो की गंध है वह उत्तम (गंध) देवताओं में फैलती है, जो शीलवानो निरालस विहरने वाले हो यथार्थ ज्ञान द्वारा मुक्त हो गए हैं उनके मार्ग को मार नहीं पाता श्रद्धावान, शीलवान, यथ और भोग से युक्त(पुरुष) जिस जिस स्थान पर जाता है वही वही पूजित होता है।

8.चित्त को सद्मार्ग पर लगाना–– चित्त पर नियंत्रण करना आवश्यक है। चित्त को सद– मार्ग पर लगाने से ही मनुष्य एवं समाज का सर्वांगीण विकास हो सकता है बुध का कथन है चित्त क्षणिक है चंचल है इसे रोकना कठिन है और इसका निवारण करना भी दुष्कर है ऐसे चित्त को मेधावी पुरुष उसी प्रकार सीधा रखता है जैसे बाण बनाने वाला बाण को, जैसे जलाशय से निकालकर स्थल में फेंक दी गई मछली तड़पती है उसी प्रकार यह चित्त मार के फंदे से निकलने के लिए तड़पता है जिसका निग्रह करना बड़ा कठिन है जो बहुत हल्के स्वभाव का है जो जहां चाहे झट चला जाता है ऐसे चित्र का दमन करना उत्तम है दमन किया हुआ चित्र सुखदायक होता है जिसे समझना आसान नहीं जो अत्यंत चालाक है जो जहां चाहे झट चला जाता है ऐसे चित्र की बुद्धिमान पुरुष रक्षा करते हैं सुरक्षित चित्त सुखदायक होता है।बुध्द समझते हैं कि स्वस्थ समाज के निर्माण में चित्र महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है वर्ण व्यवस्था के द्वारा भारतीय समाज अप्राकृतिक विभाजन के कारण चारों वर्णों के चित्तो को दूषित एवं पापमय कर दिया आज भारतीय के चित्तो को परिशुद्ध करने के लिए यह परम आवश्यक है कि वर्ण व्यवस्था को समाप्त किया जाए।

9.समाज कल्याण– बुध का समाज दर्शन समाज कल्याण पर बल देता है समाज कल्याण के लिए बुद्ध कहते हैं नीच धर्म का सेवन न करें प्रमाद से न रहे मिथ्या धारणा में न पड़े, आवागमन के चक्र को ना बढ़ाएं। सुचरित्र धर्म का आचरण करें दुराचरण ना करें धर्माचारी इस लोक और परलोक दोनों जगह सुख पूर्वक रहता है। बुध्द ने समाज कल्याण के लिए दान की प्रशंसा करते हुए कहा कंजूस देवलोक नहीं जाते हैं मूर्ख दान की प्रशंसा नहीं करते पंडित दान का अनुमोदन कर उसी से परलोक में सुखी होता है वर्ण व्यवस्था और जातिवाद के कारण वैदिक और हिंदू धर्म में समाज कल्याण का नितांत अभाव पाया जाता है उसका सबसे बड़ा कारण यह है कि प्राचीन काल से ही

चार वर्ण सहस्त्रो जातियों में विभाजित होते रहे हैं इस कारण समाज कल्याण के स्थान पर प्रत्येक मानव और जातियां संकुचित विचारधारा से सिकुड़ती चली गई इस कारण वे समाज कल्याण के स्थान पर अपनी अपनी जातियों के कल्याण तक ही सीमित रह जाती हैं बुध्द के समाज कल्याण का परिप्रेक्ष्य अत्यंत व्यापक है इसका सीधा अर्थ मानव कल्याण था बुध्द के इस प्रत्यय ने वर्ण व्यवस्था को गंभीर आघात पहुंचाया था।

10.पाशविक प्रवित्तियों का त्याग— बुद्ध का समाजदर्शन मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों को त्यागकर मानवीय गुणों के संवर्धन की बात कहता है। जिससे समाज कल्याण में किसी भी प्रकार का अवरोध न आए है । प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक भारत में अनेक प्रकार की दूषित प्रवृतियां पाई जाती हैं इनकी समाप्त की केवल मात्र बुद्ध की करुणा मैत्री सील और प्रभा से की जा सकती है जिनसे वर्ण व्यवस्था और जातिवाद को समाप्त किया जा सकता है।

11. स्वस्थ समाज का निर्माण— बुद्ध का समाज दर्शन स्वस्थ समाज एवं शोषण रहित समाज के निर्माण की बात कहता है। बुध्द भूख को सबसे बड़ा रोग मानते हैं जो स्वस्थ समाज के निर्माण में बाधक होता है। इस संदर्भ में बुध्द कहते हैं भूख सबसे बड़ा रोग है निरोग होना परम लाभ है संतोष परम धन है विश्वास सबसे बड़ा बंधु और निर्माण सबसे बड़ा सुख है। भूख, गरीबी, निरक्षरता, भेदभाव, ऊंच—नीच छुआछूत, असमानता, शोषण, बलात्कार ,हिंसा भ्रष्टाचार यहां के चलन बन चुके हैं। बुद्ध ने इन्हें समाप्त करने के लिए वर्ण व्यवस्था पर जबर्दस्त प्रहार किए। उसका कारण यह है कि इन सभी बुराइयों की जड़ जातिवाद है।

12. समाज कल्याण के लिए मल त्याग— महात्मा बुद्ध का समाज दर्शन बताता है कि समाज कल्याण के लिए व्यक्ति को अपने मन के मल दूर करने चाहिए । सुनार जैसे चांदी के मैल को क्रमशः क्षण—क्षण थोड़ा—थोड़ा जलाकर साफ करता है वैसे ही बुद्धिमान पुरुष अपने मल को क्रमशः दूर करें। जैसे लोहे का मोर्चा उससे उत्पन्न होकर उसी को खाता है वैसे ही सदाचार का उल्लंघन करने वाले मनुष्य को अपने ही कर्म उसे दुर्गति को प्राप्त कराते हैं। स्त्री का मैल दुराचार है दानी का मैल कंजूसी है। पाप इस लोक और परलोक का मैल है उससे बढ़कर अविद्या परम मल है। इन सभी फलों का मूल कारण वर्ण व्यवस्था और जातिवाद है। बुद्ध इस तथ्य को भली भांति जान चुके थे इसलिए इन्हें समाप्त करने के लिए उन्होंने जातिवाद पर भयंकर प्रहार किए और उन्हें अपने कार्य में काफी सफलता भी मिली थी।

13. उद्योग करना— बुद्ध का समाज दर्शन आलस्य के त्यागने पर बल देकर उद्योग और परिश्रम का प्रतिपादन करता है। इससे स्वस्थ समाज का निर्माण होता है। इस संदर्भ में बुद्ध का कथन है जो उद्योग करने के समय उद्योग ना करने वाला युवा और बलवान होकर भी आलस्य से युक्त होता है जिसने उच्च आकांक्षाओं को छोड़ दिया है और जो दीर्घ सूत्री हैं वह आलसी प्रज्ञा के मार्ग को प्राप्त नहीं करता है। वाणी का संयम करें मन का संयम करें शरीर से अनुसरण करें इन तीनों पदों को शुद्ध करें बुद्ध के बताए मार्ग का अनुसरण करें।

14. करुणा और शील — बुद्ध का समाज दर्शन करुणा और शील के मूल्य के अनुशीलन पर बल देता है। इनके पालन करने से समाज बुराइयों से बचकर समाज कल्याण की ओर अग्रसर होता हुआ स्वस्थ समाज की स्थापना कर सकता है। दुःशील और एकाग्रता रहित 100 वर्ष के जीने से भी शीलवान और ध्यानी का 1 दिन का जीवन श्रेष्ठ है।

15. कामना–त्यागी– बुद्ध का समाज दर्शन मानव कल्याण हेतु त्याग पर बल देता है। इस संदर्भ में बुद्ध का कथन है तृष्णा के स्रोत को काट दो पराक्रम कर कामनाओं को दूर कर दो। संस्कारों क्षय को जानकर निर्वाण का साक्षात्कार कर लोगे। बुद्ध ने समाज कल्याण के लिए अपरिग्रही और त्यागी बनने की बात पर बल दिया है। वर्ण व्यवस्था और जाति प्रथा में कोई भी वर्ड और जाति अपरिग्रही और त्यागी नहीं होती । ब्राह्मण वर्ण दान लेते क्षत्रिय अन्य राज्यों को अपने अधिकार क्षेत्र में करके लूट खसोट करने और वैश्यो को व्यवसाय के कारण अपरग्रही और त्यागी बनने का अवसर ही प्राप्त नहीं है। लेकिन बुद्ध एवं अन्य श्रमणों के आंदोलन से वर्ण व्यवस्था पर काफी प्रहार हुए थे।

16. वर्ण व्यवस्था और जाति भेद का निषेध– बुद्ध का समाज दर्शन वर्ण व्यवस्था और जाति भेद का निषेध करता है। इस दर्शन के अनुसार सभी मनुष्य प्रकृति के पुत्र हैं । मनुष्य में जन्म और कर्म के आधार पर भेद करना अनुचित कार्य है। इस विषय में बुद्ध ने कहा की जातियां केवल व्यवसाय के आधार पर दी गई संज्ञाएँ है। जो व्यवहार के लिए बनाई गई थी । यथार्थ में मनुष्य में कोई भेद नही बल्कि सभी मनुष्य समान होते है । धम्म पद के अनुसार बुध्द का समाज दर्शन समस्त मानवीय मूल्यों से ओतप्रोत है।

उपसंहार

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि बुद्धत्व प्राप्त के पूर्व ही सिद्धार्थ के व्यवहारों एवं उनके चरित्र में कहीं न कहीं ऐसे विचार बाल्यावस्था से ही पनपे हुए थे। जो धीरे–धीरे और सशक्त होते गए तथा बुद्धत्व प्राप्त के बाद पूर्णता उनकी आत्मा में विलीन हो गए जो समाज दर्शन के रूप में उभरकर संपूर्ण पृथ्वी पर प्रवाहित कर दिए गए।

सन्दर्भ

1. बी0आर0 अंबेडकर (1991), भगवान बुद्ध और उनका धर्म , सिद्धार्थ प्रकाशन मुंबई।

2. धर्मानंद कोसांबी (1982), भगवान बुद्ध जीवन एवं दर्शन(हिंदी अनुवाद) लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।

3. सुशील कुमार मुनि (1958), जैन धर्म, नई दिल्ली।

4 .राहुल सांकृत्यायन (1961), दर्शन दिग्दर्शन, कितान महल, इलाहाबादद्य

5. बी०आर० अंबेडकर (1991) भगवान बुद्ध और उनका धर्म ,सिद्धार्थ प्रकाशन, मुंबई ।

6. के० टी० यस० सराओ (1989)ओरिजन एंड नेचर ऑफ एन्सिएन्ट बुध्धिज्म इस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली।

7. डी०डी० कौशांबी (1982)भगवान बुद्ध जीवन एवं दर्शन (हिंदी अनुवाद) लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।

8. द इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन(1987) माइर्सिया एलाइडे , संपा ,मैकमिलन पब्लि. कम्प न्यूयॉर्क।

9. तदैव।

10.तदैव।

11.तदैव।

12.तदैव।

13. तदैव।

14. बी0आर0 अंबेडकर (1991), भगवान बुद्ध और उनका धर्म , सिद्धार्थ प्रकाशन मुंबई।

15. तदैव।

16. तदैव।

17. तदैव।

18. तदैव।

19 सत्यकेतु विद्यालंकार (1947)प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग श्री सरस्वती सदन, मसूरीद्य

20.तदैव।

21. तदैव।

22. तदैव।

23. तदैव।

24. तदैव।

25 अनु.भिक्षु धर्म रक्षित ,सुत निपात ,मोतीलाल बनारसीदास, दिल्लीद्य

26. तदैव।

27. . धर्मानंद कोसांबी (1982), भगवान बुद्ध जीवन एवं दर्शन(हिंदी अनुवाद) लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।

28.तदैवद्य

29.अनु० धर्म भिक्षु धर्मरक्षित (1922), धम्मपद,सारनाथद्य

वैदिक कालीन शिक्षा : एक अध्ययन

(राजबीर सिंह, सहायक प्राध्यापक, दयाल सिंह महाविद्यालय, करनाल)

मानव सभ्य एवं सुसंस्कृत शिक्षा के माध्यम से ही बनता है। ऋग्वेद में आज भी भांति न तो स्कूल, कॉलेज ही थे और पढ़ने की सामग्री ही प्राप्त थी। परन्तु फिर भी उस काल में शिक्षा का अच्छा विकास था। संस्कृत जैसी भाषा उस काल में पूर्ण विकसित थी। उसी भाषा में उन ग्रन्थों की रचना हुई, जो आज भी विश्व में प्राचीन तथा सर्वोतम माने जाते हैं। ऋग्वेद की रचना तो इतनी सर्वोत्कृष्ट है कि मनुष्य उसे देव रचना ही मानते हैं। यह सब इस बात का परिचायक है कि इस काल में विद्या पल्लवित थी। आर्य विद्वान होते थे। परन्तु शिक्षा देने का कार्य उस समय ऋषियों के हाथ में था, जो शिक्षा प्राप्ति के अभिलाषी होते थे, वे ऋषियों के आश्रमों में जाते थे, वहीं निवास करते थे और शिक्षाध्यापन करते थे।[1]

मुख्य बिन्दु : अनुशासन व शिष्टाचार, शिक्षा—पद्धति, पाठ्य—विषय, वैदिक भाषा, शिक्षा का उद्देश्य व नारी शिक्षा।

अनुशासन व शिष्टाचारः

अनुशासन संपूर्ण वैदिक शिक्षा का केन्द्र बिन्दु था। आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हेतु बालक में आत्मनियन्त्रण की शक्ति परमावश्यक थी। यह शक्ति बालक को गुरु—शिष्य के आत्मीय एवं मधुर संबंधों से प्राप्त होती थी। अतः दोनों का आचरण, व्यवहार, आदर्श और अनुकरण पर आश्रित था। दोनों ही ओर से विनम्रता सिद्ध तथा साक्ष्य थी।[2]

विद्यार्थी इस जगत् के संपूर्ण विप्लव—विद्रोह से परे प्रकृति की मनोहर अंक में गुरु चरणों में बैठ कर आध्यात्मिक समस्याओं की साधना, मनन और चिन्तन के द्वारा किया करते थे। जिज्ञासु शिष्य गुरु गृह में रहकर उनकी सेवा करता हुआ गुरु के आदर्श गुणों को अपने में धारण कर लेता था। विद्यार्थी के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए यह आवश्यक था, क्योंकि गुरु ही आदर्शों, परम्पराओं तथा सामाजिक नीतियों का प्रतीक था। गुरुओं की सेवा से विद्यार्थियों में विनय तथा अनुशासन का भाव उत्पन्न होता था। इसलिए आज की तरह इस काल में शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन की समस्या कहीं भी उत्पन्न दिखाई नहीं देती थी। इसके साथ—साथ जीवनोपयोगी उद्यम में भी सहज ही कुशल हो जाता था। सादा जीवन और उच्च विचार उस काल की प्रमुख देन थी।[3]

शिक्षा पद्धतिः

वैदिक कालीन शिक्षण विधि मौखिक एवं प्रश्नोत्तर प्रधान थी। इसे प्रत्यक्ष विधि के नाम से भी जाना जाता था। शिक्षा का स्वरूप पूर्णतः व्यक्तिगत हुआ करता था। विद्यार्थी अपने दैनिक जीवन में मंत्रों का पाठ एवं उसकी व्याख्या करते थे। साहित्य—काव्य तथा न्याय के क्षेत्र में निरन्तर वाद—विवाद खण्डन तथा मण्डन विद्यार्थियों द्वारा किया जाता था, जिससे विद्यार्थियों की प्रत्युत्पन्न मतित्व व वक्तृत्व का विकास होता था। राजनीति तथा नैतिकता की शिक्षा कथाओं के माध्यम से दी जाती थी, जिसके व्यख्यान का निरूपण गुरु—शिष्य संवाद के माध्यम से होता था। यह शिक्षा निःशुल्क थी। शिक्षा प्राप्त करके शिष्य गुरु को गाय, अन्न या अश्व किसी भी रूप में गुरु दक्षिणा देता था। विद्यार्थियों की 25 वर्ष की ब्रह्मचर्य की अवधि को उत्तरोत्तर विकास क्रम से सत्र एवं समय में विभाजित किया जाता था। जिस दिन अध्ययन बंद रहता था, उसे अनध्याय शब्द से सम्बोधित करते थे। अध्ययन की समाप्ति समापन कहलाती थी।[4]

पाठ्य—विषयः

वैदिक भारत में पाठ्य–विषय भी व्यापक थे। आरम्भिक वैदिक–युग में वेद–मन्त्र, इतिहास, नाराशंसी गाथाएं विषय थे। उत्तर वैदिक–युग में वेदों की व्याख्याओं–ब्राह्मण ग्रन्थों को पाठ्य–विषय में समाहित किया गया। उपनिषद् और सुत्र युग में वेदांगों के अतिरिक्त अनेक विद्वानों की शिक्षा विधि का समावेश किया गया।[5]

शिक्षा का क्षेत्र धर्म था, उसका उद्देश्य विद्यार्थी का चरित्र–निर्माण तथा बुद्धि का विकास होता था।[6] अतः उस काल में धार्मिक ग्रन्थों का ही अध्ययन किया जाता था। परन्तु छन्दोग्य–उपनिषद् से ज्ञान होता है कि उस काल में इतिहास पुराण, ब्रह्म विद्या, व्याकरण, गणित, नृत्य एवं संगीत की भी शिक्षा दी जाती थी।[7] पुस्तकीय ज्ञान अर्जन के साथ उस काल में छात्र व छात्राओं को वाद–विवाद घोषित होने वाले छात्रों का समाज में आदर था। शिक्षा आज के समय की तरह सैद्धान्तिक भी कराया जाता था। शिक्षाधिकारी उस समय धार्मिक शिक्षा के तो विशेषज्ञ होते ही थे, पर साथ में उन्हें अन्य साहित्यिक ग्रन्थों का भी अच्छा ज्ञान होता था।[8]

शिक्षा का उद्देश्यः

वैदिक कालीन शिक्षा का उद्देश्य में व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास करना था। इसके लिए आत्म सम्मान, आत्मविश्वास, आत्मसंयम व न्याय आदि गुणों का विकास करना था। शिक्षा के उद्देश्य को निर्धारित करते हुए प्रो. शिवदत्त ज्ञानी ने लिखा है कि ''प्राचीन शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य मनुष्य को निसर्ग सिद्ध शक्तियों का सम्यक विकास करके उसे सच्चे अर्थ में मनुष्य बनाना था, जिससे वह जीवन की पहेलियों को सुलझाने में समर्थ हो सके।[9]

वैदिक भाषाः

वेदों की रचना उच्च कोटि के ऋषियों ने की थी। उनकी भाषा वैदिक काल की साधारण जनता की भाषा है, किन्तु उसमें उच्च वर्ग की भाषा की विशेषताएं मिलती हैं। वेदों के रचने वाले ऋषियों की भाषा सत्त अभ्यास से मँजी हुई प्रतीत होती है। इस भाषा में प्राचीनता की दी हुई दृढ़ता और संपन्नता सर्वत्र झलकती है।

वेदों की भाषा का विकास होता रहा, साथ ही वह व्याकरण के नियमों से धीरे–धीरे सुव्यवस्थित होती रही। उपनिषदों तक आते–आते यह भाषा संस्कृत के अति निकट आ जाती है।[10] वैदिक साहित्य की भाषा संगीतमय रही है। उसके उदात्त, अनुदात्त और स्वरित उच्चारण संस्कृत भाषा में नहीं चल सके।[11]

नारी शिक्षाः

ऋग्वेद में स्त्री शिक्षा का प्रचार था उस समय स्त्रियाँ वेदाध्ययन करती थी और मन्त्रों की रचयिता भी थी। ऋग्वेद के अनेक सूक्तों की रचयिता स्त्रियां थी। घोषा नाम की ब्रह्मवादिनी ने दशमण्डल के 39वें एवं 40वें सूक्तों की रचना की। इससे विदित होता है कि उन दिनों स्त्रियां शिक्षिता होती थी। इसके अतिरिक्त लोपामुद्रा अपाला, लोपशा, विश्वावरा, सूर्या आदि ऋषिकाओं ने एक–एक सूक्तों की रचना की। बृहस्पति की पत्नी जुहू, विवस्तान की पुत्री यमी, श्रद्धा, सर्वराज्ञी आदि ऋषिकाओं ने एक–एक सूक्त की रचना की। इससे स्पष्ट है कि उस समय स्त्रियाँ मन्त्रों की रचना करने वाली थी। स्त्रियाँ केवल मन्त्रों की रचयिता ही नहीं थी, बल्कि कविताएँ भी करती थी, गान–विद्या में कुशल होती थी, नृत्य कला भी जानती थी। इससे स्पष्ट है कि उस समय स्त्रियों को विविध कलाओं की शिक्षा दी जाती थी।[12]

उपर्युक्त संदर्भो को देखने से पता चलता है कि वैदिक शिक्षा बहुत ही समृद्ध थी। शिक्षा की प्रकृति आध्यात्मिक होते हुए भी भौतिक समृद्धि की बात करती थी। वैदिक काल की शिक्षा प्रणाली चरित्र निर्माण, व्यक्तित्त्व विकास, संस्कार निर्माण, मूल्य निर्माण, सत्य की खोज, सामाजिक कुशलता तथा विश्व कल्याण के उद्देश्यों की प्राप्ति में पूर्णतः सफल रहा है। अतः उस समय की

शिक्षा व्यवस्था की विशेषताओं को वर्तमान शिक्षा पद्धति में शामिल कर इसे समृद्ध बनाया जा सकता है। वर्तमान कला में वैदिक शिक्षा पूर्ण रूप से प्रासंगिक है।

संदर्भः

1. शर्मा, हरिशंकर : प्राचीन भारत, रामा पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 1977, पृ. 62–63
2. त्रिपाठी, शोभना : वैदिक कालीन शिक्षा की विशेषताएं तथा उद्देश्य, इण्टरनेशनल जरनल ऑफ रिसर्च इन ऑन सबजेक्ट मल्टी लैंग्वेज, वोल्यूम–3, इश्यू–9, अक्तुबर, 2015, पृ. 11
3. सिंह, डॉ. राजकिशोर, यादव, डॉ. उषा : प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1982, पृ. 47–48
4. त्रिपाठी, शोभना : पूर्वोक्त, पृ. 11
5. सिंह, डॉ. राजकिशोर, यादव, डॉ. उषा : पूर्वोक्त, पृ. 49
6. ऋग्वेद : 3/62/10
7. छन्दोग्योपनिषद् : 7/1/2
8. शर्मा, हरिशंकर : पूर्वोक्त, पृ. 69
9. त्रिपाठी, शोभना : पूर्वोक्त, प. 12
10. उपाध्याय, डॉ. रामजी : भारत की प्राचीन संस्कृति, किताब महल, इलाहाबाद, 1948, पृ. 240
11. वही : पृ. 241
12. द्विवेदी, डॉ. पारसनाथ : वैदिक साहित्य का इतिहास, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2000, पृ. 70–71

सिन्धु सरस्वती सभ्यता में प्रमुख व्यपारिक केन्द्र

(अमित कुमार, शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय हरिद्वार, उतराखण्ड)

भूमिका

3500 ई. पू. भारत में विश्व की तीसरी कॉस्य युगीन सभ्यता का उदय हुआ। जनसंकुल नगर, अत्यंत दक्षता से परिचालित उद्योग, दूरदराज तक फैला वाणिज्य और एक चित्रात्मक लिपि इसकी प्रमुख विशेषताएं थी। सर्वप्रथम 1921–22 ई. में हड़प्पा तथा मोहनजोदडो के उत्खनन से इस नगरीय सभ्यता के बारें में जानकारी प्राप्त हुई। अभी तक इस सभ्यता से संबन्धित लगभग 5000 पुरास्थल भारत, पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान में खोजे गए हैं। आरम्भ में खोजे गए अधिकतर पुरास्थल सिन्धु व उसकी सहायक नदियों की घाटी में स्थित होने के कारण इसे 'सिन्धु सभ्यता' का नाम दिया गया। कुछ विद्वान इसे प्रथम ज्ञात पुरास्थल के आधार पर 'हडप्पा सभ्यता' कहते है परन्तु नवीनतम अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है कि 950 के आस–पास पुरास्थल सरस्वती नदी के किनारे व काफी संख्या में उसकी सहायक नदियों की घाटियों में स्थित हैं। इसीलिए इसे 'सिन्धु – सरस्वती सभ्यता' के नाम से पुकारते है जो अधिक तर्क संगत लगता है इस सभ्यता के विभिन्न नगरों का नदियों के किनारें बसा होना यह सिद्ध करता है कि सैंधव कालीन नगर परस्पर नदी मार्गों से जुड़े हुए थे तथा व्यापार इन्ही नदी मार्गो के माध्यम से होता था। सिन्धु सभ्यता के प्रमुख व्यपारिक केन्द्र हरियाणा में बनावली, कुणाल, राखीगढ़ी, गुजरात में लोथल, धौलावीरा और रंगपुर, सुरकोटडा और मालवण, राजस्थान में कालीबँगा, पंजाब में हड़प्पा, रोपड़ और संघोल, बलूचिस्तान में सुत्कागेनडोर और सुत्काकोह, सिन्ध में कोटदीजी, मोहनजोदड़ो और चन्हुदड़ो, तथा जम्मू कश्मीर में मांडा आदि थे। जिनका विस्तृत विवरण इस प्रकार हैः–

हरियाणा में सुरजभान तथा जे. पी. जोशी द्वारा सरस्वती और दृष्द्वती नदी की घाटियों का सर्वे किया गया। जिनके परिणाम स्वरूप यहाँ से प्राग सैंधव, सैंधव तथा उत्तर–सैंधव संस्कृति के अनेक पुरास्थल प्रकाश में आए हैं। हरियाणा से सैंधव–संस्कृति के अनेक पुरास्थलों से व्यपारिक केन्द्रों और व्यपारिक वस्तुओं का पता लगाया जा सकता हैं। इन पुरावशेषों में सेलखड़ी पत्थर तथा मिट्टी की लेखयुक्त 3400 से अधिक मोहरें पाई गई हैं। जिन पर तरह–तरह के लगभग 400 ध्वन्यात्मक और चित्रलिप्यात्मक चिन्ह बने हुए है (अ. कोरोत्सकाया,1984 :26) । इनमें से कुछ पुरास्थलों का क्षेत्रफल इतना विस्तृत है कि प्राप्त प्रमाणों के आधार पर उन्हें सैंधव संस्कृति के विशाल व्यपारिक केन्द्र माना जा सकता हैं।

प्रमुख व्यपारिक केन्द्र

बनावलीः–

यह सैंधव कालीन भारत में प्रमुख व्यपारिक केन्द्र था। बनावली नामक पुरास्थल हरियाणा राज्य के फतेहबाद जिले से 14 कि.मी उत्तर–पूर्व में तथा बनावली गाँव से आधा कि.मी. दक्षिण–पश्चिम में घग्घर एंव सरस्वती नदी मार्ग पर स्थित हैं। यह पुरास्थल लगभग 900 वर्ग मीटर क्षेत्र में फैला हुआ हैं। जिसकी समतल भूमि से ऊँचाई लगभग 10 मीटर हैं। यह पुरास्थल कालीबंगा से 220 कि. मी. उत्तर–पश्चिम दिशा में स्थित हैं। (बी0बी0 लाल,1997:255)

इस नगर की खोज 1965 ई. में की गई तथा उत्खनन् हरियाणा पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के श्री आर. एस. बिष्ट द्वारा सन् 1947–77 में किया गया। यहाँ से सैंधव संस्कृति के तीन काल पाए गए हैं।

बनावली से प्राप्त भौतिक अवशेष काफी समृद्ध है। यहाँ से मिट्टी के उत्कृष्ठ बर्तन, सेलखड़ी की मुहरें एवं सिन्धु संस्कृति कालीन विशिष्ट लिपि वाली पक्की मिट्टी की मुहरें मिली हैं। अन्य वस्तुओं में स्वर्णपत्र युक्त मनकें, वैदूर्यमणि के मनकें, नक्काशीदार गोमेद, सेलखडी व मिट्टी के पकाए गये मनके आदि शामिल है। बनावली के एक मकान से कई मुहरें एवं बाट मिले, जो किसी व्यपारी का मकान हो सकता हैं। बनावली और कुणाल से मिले ताँबें के भाले, उस्तरे का सम्बन्ध आर. सी. आग्रवाल ने राजस्थान के गणेश्वर से प्राप्त ताँबे से बताया है। बनावली से सैंधव संस्कृति कालीन सोने के मनके मिले हैं। बनावली से चर्टब्लेड, चाल्सीडॉनी आगेट और कार्नेलियन के मनके मिले हैं। बनावली, बालू तथा राखीगढ़ी से बुनने व सिलने के लिए ताँबे एवं हड्डियों की सुईयाँ प्राप्त हुई है (आर. सी. अग्रवाल एवं विजय कुमार,1982:125) । इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इस संस्कृति के लोग कपड़ा बुनना जानते थे। यहाँ पर वस्त्र उद्योग विकसित हो चुका था।

कुणालः–

सैंधव संस्कृति का एक और व्यपारिक केन्द्र कुणाल था। यह पुरास्थल हरियाणा प्रान्त के फतेहाबाद जिले में स्थित हैं। यह रतिया तहसील में भूना कस्बे से पश्चिम में 12 कि. मी. की दूरी पर स्थित हैं। यह पुरास्थल सरस्वती नदी के बाएँ तट पर स्थित हैं। कुणाल बनावली से 20 कि. मी. की दूरी पर है। पुरास्थल समतल भूमि से लगभग 3.10 मी. ऊँचाई पर हैं।

इस पुरास्थल का उत्खन्न हरियाणा पुरातत्व एंव संग्रहालय विभाग द्वारा सन 1986 में श्री जे. एस. खत्री तथा एम. आचार्य द्वारा कराया गया इससे प्रारम्भिक सैंधव लोगों के पश्चिमी क्षेत्रों के साथ व्यापारिक सम्बन्धों का पता चलता हैं।सम्भवतः कुणाल में वस्तुओं का आयात–निर्यात घग्घर–हाकरा व्यापारिक मार्ग द्वारा होता था (एस.आर.राव, 1962:102) । यहाँ से बहुमूल्य पत्थर, लैपिस–लैजुली के मनकें और चाँदी के आभूषण मिले हैं, जिनके लिए कच्चा माल अफगानिस्तान से आता था। इस पुरास्थल से मिट्टी का बना हुआ एक सांचा मिला है, जिस पर धातु लगी हुई थी। सम्भवतः इसका उपयोग धातु को गलाने के लिए किया जाता था। इससे स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है कि कुणाल में धातु उद्योग विकसित अवस्था में था। यहाँ तैयाल माल सैंधव संस्कृति के अन्य केन्द्रों को भेजा जाता था। इस पुरास्थल से चक्र तथा कप के आकार वाले सोने के मनके प्राप्त हुए हैं। जिनसे पता चलता है कि इस केन्द्र के व्यापारियों के दक्षिणाी क्षेत्र के सैंधव लोगों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध थे (एस. पिग्गट,1998:9) । कुणाल से लाजवर्द, करकेतन और सुलेमानी अर्द्धप्रस्तर के मनके बहुत अधिक मात्रा में पाए गये हैं।

राखीगढ़ीः–

राखीगढ़ी जिला हिसार का एक प्रसिद्ध गाँव हैं। गाँव के नजदीक ही लगभग 2 कि. मी. लम्बा–चौड़ा थेह दृषद्वती के पुराने, सुखे किनारे पर स्थित हैं। इस थेह की ऊँचाई लगभग 17 मी. हैं। यह पुरास्थल जीन्द में 11 कि. मी. दक्षिण में स्थित हैं। डा. सुरजभान और आचार्य भगवान देव ने इस पुरास्थल की खोज की थी तथा डा. अमरेन्द्र नाथ, प्रौ0 वसत सिंदे सर, संजय मजुल सर के निर्देशन में इस पुरास्थल का उत्खनन करवाया था। यहाँ पर प्राग–सैंधव तथा सैंधव संस्कृति कालीन प्रमाण प्राप्त हुए है।

राखीगढ़ी सैंधव काल में घग्घर सरस्वती हाकरा नदी मार्ग द्वारा आमरी, कोटदीजी तथा कालीबंगा **बालू, फरमाणा** से जुड़ा हुआ था। इन व्यापारिक केन्द्रों को सरस्वती और दृष्द्वती नदी अलग–अलग भागों में विभाजित करती थी। एक व्यापारिक मार्ग से आमरी से राखीगढ़ी तथा कोटडीजी से कालीबंगा जुडा हुआ था। इसी तरह राखीगढ़ी, लोथल और मोहनजोदड़ो से जुड़ा हुआ था। इन सभी केन्द्रों के मध्य व्यापारिक सम्बन्ध थे(एस. पिग्गट,1998:9)।

सरस्वती घाटी के परिपक्व सैंधव संस्कृति के लोगो ने जम्मू–कश्मीर से नव–पाषाणिक लोगों के साथ संगठित व्यपारिक सम्बन्ध बनाए जिससे गेहूं, जौं, चावल आदि कृषि उत्पादों और खनिजों का आवगमन नियमित हो गया। राखीगढी से प्राप्त हुए किमती पत्थरों में आगेट, कार्नेलियन, जैस्पर, चाल्सीडॅानी, लैपिज–लेजुली, टोपाज, क्रिस्टल आदि मिले हैं। (नयनजोत लाहिरी,1992:38)

गुजरात प्रान्त के विशाल क्षेत्र में सैंधव संस्कृति कालीन अनेक पुरास्थल प्रकाश में आए हैं। इनमें से कुछ स्थानों पर सभ्यता अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई थी। इस प्रान्त में सैधव संस्कृति कालीन प्रमुख केन्द्र लोथल, धौलावीरा, रंगपुर, सुरकोटड़ा, मालवण, रोजदी, देसलपुर आदि हैं। जिनमें लोथल, धौलावीरा, रगंपुर, सुरकोटड़ा और मालवण, अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण प्रमुख व्यापारिक केन्द्र थे।

लोथलः–

गुजरात में अहमदाबाद से करीब 80 कि. मी. दक्षिण पश्चिम में धोलका तालुक के सरगवाला ग्राम के पास भोगवा एंव साबरमती नदियों के मैदान में खम्भात की खाड़ी से लगभग 12 कि. मी. दूर स्थित लोथल सैंधव संस्कृति का महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र था। एस. आर. राव द्वारा 1954–62 के दौरान किए गए इस पुरास्थल के उत्खनन् से समकालीन संस्कृति के पाँच स्तर मिले हैं।(बी. आलचिन एवं एफ.आर.आलचिन,1986:167,71)

किसी नगर की सरंचना में वहाँ की भौगोलिक परिस्थिति का प्रभाव रहता हैं। यही कारण है कि लोथल की नगर योजना सैन्धव–संस्कृति के अन्य केन्द्रों से भिन्न थी। नगर–दुर्ग के दक्षिण पश्चिम कोने में एक भंडारगृह था।निचले नगर के उत्तर में एक बाजार और दक्षिण में एक औद्यौगिक क्षेत्र था। समुद्र तट के अत्यन्त निकट होने के कारण लोथल को बन्दरगाह के रूप में विकसित किया गया था। लोथल भोगवा नदी के मध्यम से समुद्र से जुड़ा हुआ था। यातायात के साधनों के रूप में पोत–निर्माण एंव नावों के अप्रत्यक्ष प्रमाण भी लोथल के उत्खनन् से ज्ञात होते है(बी0बी0 लाल,1997:129)।

राव के अनुसार सैंधव वासी व्यपार एंव उपनिवेश स्थापित करने के लिए 2450 ईसा पू. में लोथल आए थे। लोथल विश्व की एक महत्वपूर्ण बन्दरगाह और व्यापारिक केन्द्र था, जहाँ से भारत का मध्य एशिया से व्यापार होता था। लोथल से एक आयताकार गोदीबाड़ा (डॅाकयार्ड) के प्रमाण मिले हैं। जिसका आकार (218×36 मी.) था। नाव को रोकने के लिए नोकाघाट तथा पत्थर के लँगर आदि के साक्ष्य भी यहाँ से मिले हैं। यद्यपि कुछ विद्वानों ने लोथल की गोदी को तालाब में निरूपित किया हैं। तथापि अधिकांश पुरातत्त्ववेता इस बात से सहमत है कि लोथल में व्यापारिक क्रिया–कलापों के लिए एक गोदीबाड़ा थी। पश्चिमी भारत एंव मकरान के तटवर्ती क्षेत्र सिन्धु संस्कृति की बस्तियाँ सम्भवतः समुद्र तटीय व्यापारिक पड़ाव के लिए बन्दरगाहों का काम करती थी। लोथल एक तटवर्ती केन्द्र था, जिमसें अन्य केन्द्रों से आए हुए जहाजों को आश्रय देने के लिए उपयुक्त बाँध बने हुए थे(बी0बी0 लाल,1997:129) ।

इस बन्दरगाह के उत्खनन् से कुछ ऐसी वस्तुए मिली है, जो सुमरे से भारत आती थी। लोथल में सुसा से ताँबे के पिण्ड मंगवाए जाते थे। इसी प्रकार सूसा में लोथल से ले जाई गई कुछ वस्तुएं भी मिली हैं। जैसे कार्नोलियन के मनके जिनके उपर श्वेत रंग की धारियों से डिजाईन बनाई जाती थी।

दजला और फरात नदियों के मुहानें पर बसे उर नामक व्यापारिक केन्द्र से समुद्री नौकाएं सीधी लोथल आती थी। 'उर' से मुद्रओं के अतिरिक्त सोने के मनकें तथा मिट्टी के बर्तन भी मिले हैं, जिनका सामंजस्य लोथल से प्राप्त अवशेषों से था ऐसा प्रतीत होता है कि कालान्तर में भारत और सुमेर का व्यपार सीधा न होकर बहरीन द्वीप के द्वारा होता था। वहाँ से लाई गई मुद्रा लोथल के उत्खनन् से प्राप्त हुई हैं।

इस पुरास्थल से प्राप्त अनेक मुद्राओं से इस बात की पुष्टि होती है कि इन मुद्राओं पर एक ओर सैंधव लिपि से युक्त मोहर की छाप है तथा दूसरी ओर भेजे जाने वाले माल का चिन्ह अंकित होता था। लोथल से प्राप्त एक मुद्रा पर वस्त्र के निशान मिले हैं। जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ वस्त्र उद्योग विकसित था। लोथल से ताँबे की वस्तुएं तथा मनके बनाने के कारखानों के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। लोथल चंक–शैल का पश्चिमी नगरों को निर्यात करने वाला मुख्य केन्द्र था।(एस.आर.राव, 1962:102)

धौलावीराः–

धौलावीरा सैंधव–संस्कृति कालीन एक बड़ा नगर तथा व्यापारिक केन्द्र था। गुजरात के कच्छ जिले के भचाऊ तालुक में सिति धौलावीरा आज साधारण गाँव है जो नवीनतम खोज है और भारत में खोजे गये सैधव संस्कृति कालीन दो सबसे बडे नगरों में हैं। स्थानीय रूप से कोटड़ा के नाम से पहचाने जाने वाले इस सैंधव संस्कृति कालीन नगर के अवशेष मंदसर और मनहर, बरसाती नदियों के बीच खादर में स्थित है, जो विशाल कच्छ के रूप में एक बड़ा अलग–थलग द्वीप हैं (ए. घोष,1989:46)। इसके प्रमाण 74 हैक्टेयर क्षेत्र में फैले हुए हैं। धौलावीरा के प्राचीन टीलों की खोज सर्वप्रथम भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के जे. पी. जोशी ने की थी, लेकिन इसका व्यापक उत्खनन् कार्य भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के आर. एस. बिष्ट के नेतृत्व में 1990–91 में किया गया था। धौलावीरा प्रमुख तीन भागों में विभाजित था, जिनमें से दो भाग आयताकार दुर्गबंदी तथा प्राचीरों द्वारा पूरी तरह सुरक्षित थे। आयताकार मुख्य स्थल लगभग 700 मी. पूर्व से पश्चिम एंव 600 मी. उत्तर से दक्षिण पत्थर के टुकड़ों से बनी दीवार से घिरा था। पूर्वी तरफ निचला नगर था। धौलावीरा से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर इस पुरास्थल को निश्चित रूप से व्यापारिक केन्द्र माना जा सकता हैं। तटवर्ती प्रान्त कच्छ तथा काठियावाड़ और गुजरात की बन्दरगाहों से परिपक्व सैंधव कालीन व्यपार और अधिक विकसित हुआ। लोथल, सुरकोटड़ा, तथा धौलावीरा आदि से सैंधव कालीन अन्य केन्द्रों को माल भेजा जाता था। कच्छ के इन पुरास्थलों से मिले मिट्टी के बर्तनों के अध्यय से हमें ज्ञात होता हैं। कि इस क्षेत्र का राजस्थान से सम्बन्ध था। धौलावीरा उद्योग तथा व्यापार–वाणिज्य के दृष्टिकोण से सैंधव कालीन एक समृद्ध नगर था। यहाँ से कुछ कृषि सामग्री और उद्योगों में तैयार वस्तुओं का व्यापार लोथल, सुरकोटड़ा आदि के साथ होता था (किरण कुमार थपल्याल एवं सकंटा प्रसाद शुक्ल,1976:103) । इस संस्कृति के विभिन्न केन्द्रो से प्राप्त कीमती वस्तुओं, कार्नेलियन के मनके, ताँबे के आभूषण, मिटट्ी की आकृतियाँ और मुहरें आदि का सम्बन्ध बहरीन, मैसोपोटामिया, ईरान तथा मिश्र से प्राप्त वस्तुओं के साथ था। सैंधव कालीन अनेक मोहरें इन विदेशी पुरास्थलों से प्राप्त हुई हैं। धौलावीरा का बड़े पैमाने पर उत्खनन् करवाने से यहाँ से 15 मुद्राएं तथा 14 मुद्रांक मिले हैं।

रंगपुरः–

रंगपुर लोथल से लगभग 50 कि. मी. उत्तर पूर्व में और अमहदाबाद के दक्षिण पश्चिम में भूतपूर्व लिम्बिड राज्य में भादर नदी के तट पर धुन्धका रेलवे स्टेशन से करीब 5 कि. मी. की दूरी पर हैं। इस पुरास्थल पर माधोस्वरूप वत्स ने 1931–54 में उत्खनन् करवाया था। रंगपुर कृषि उत्पादन के लिए प्रसिद्ध था। यहाँ पर कृषि उत्पादों का बाजार लगता था। रंगपुर के निवासी धान की कृषि करते थे। यहाँ धान सैंधव कालीन अन्य केन्द्रों को निर्यात किया जाता था। यहां के निवासी दूसरे स्थानों से कृषि उत्पाद में सहायक उपकरणों के लिए चर्टब्लेड तथा तांबे की कुल्हाड़ी आदि उपकरण मगवातें थे। चर्टब्लेड के छोटे–छोटे टुकड़ों को हड्डी और लकड़ी के लट्ठे में सटाकर उपकरण के रूप में प्रयोग किया जाता था(एस.आर.राव,1973ः 102)।

सुरकोटड़ाः–

यह पुरास्थल कच्छ जिले में अदेसर से 12 किलोमीटर उत्तर–पूर्व में स्थित हैं। इस पुरास्थल की खोज तथा उत्खनन् (1964 ई. में) श्री जगतपति जोशी के निर्देशन में किया गया। प्रथम काल के प्रथम चरण में यहाँ पर गढ़ी आवास क्षेत्र मिला हैं। गढ़ी के बाहर परकोटा से घिरा बड़ा क्षेत्र था। रक्षा दीवार नीव के पास लगभग सात मीटर चौड़ी थी। इस पुरास्थल से प्राप्त मृदभाण्ड अन्यत्र प्राप्त सिन्धु सभ्यता के बर्तनों से मिलते–झुलते हैं(किरण कुमार थपल्याल एवं सकंटा प्रसाद शुक्ल,1976ः115)। प्रथम काल के द्वितीय चरण में एक लाल रंग का भाण्ड भी मिला हैं। तृतीय चरण में सफेद रंग के चित्रित काले और लाल भाण्ड काफी संख्या में पाए गये हैं।

मालवाः– यह पुरास्थल काठियावाड़ के सुरत जिले में ताप्ती नदी के निचले मुहाने पर स्थित हैं। संभवतः यह सिन्धु सभ्यता का एक बन्दरगाह था। आल्विन तथा जोशी ने 1967 ई. में इस पुरास्थल का पता लगाया और 1970 ई. में यहाँ पर सीमित उत्खनन् किया। इस पुरास्थल से लाल, पाण्डु, चमकीले लाल, काले और लाल मृदभाण्ड मिले है। ये मृदभाण्ड इस बात के घोतक है कि मालवण में मध्य भारतीय (मालवा), दक्कनी और सौराष्ट्र की ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति का संगम रहा। इसके अलावा इस पुरास्थल से विभिन्न प्रकार की पत्थरों के बने शल्क और क्रोड, तांबे और कांसे के उपकरण, सांड की मृणमूर्तियाँ तथा कार्नेलियन के मनके भी मिले है (किरण कुमार थपल्याल एवं सकंटा प्रसाद शुक्ल,1976ः16)।

राजस्थान प्रान्त में प्राचीन सरस्वती नदी के सूखे हुए मार्ग के आस–पास अनेक सैधंव संस्कृति के पुरास्थलों की खोज की गई हैं। राजस्थान में सरस्वती नदी को घग्घर के नाम से जाना जाता हैं। राजस्थान में सैंधव संस्कृति का सबसे प्रमुख व्यापारिक केन्द्र कालीबंगा था।

कालीबंगाः–

राजस्थान के उत्तर–पूर्वी गंगानगर जिले में कालीबंगा नामक सैंधव सभ्यता का एक महत्वपूर्ण पुरास्थल घग्घर नदी के बांए तट पर स्थित हैं। यह पुरास्थल हड़प्पा से 200 कि. मी. दक्षिण पूर्व तथा कोटदीजी से 480 कि. मी. पूर्व में स्थित हैं। इसकी खोज सन् 1957 में अमलानन्द घोष ने की थी। सन् 1959–60 से लगातार एक दशक तक भारततीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग की ओर से बी. बी लाल तथा बी. के. थापर के संयुक्त तत्वाधान में यहाँ पर उत्खनन् हुआ। कालीबंगा पुरास्थल पर दो टीले स्थित है, जिनमें से पश्चिम दिशा में दुर्ग वाला छोटा टीला तथा पूर्व में नगर वाला बड़ा टीला हैं। यह पुरास्थल सैंधव संस्कृति का एक बड़ा व्यापारिक केन्द्र था, जो सोथी, सीसवाल, राखीगढ़ी, बालू, से जुड़ा हुआ था (किरण कुमार थपल्याल एवं सकंटा प्रसाद शुक्ल,1976ः13)।

कालीबंगा सैंधवकालीन एक समृद्ध व्यापारिक केन्द्र था। यहाँ से 56 ताबें के उपकरण मिले है, जिनमें अंजन शालकाएं, छल्ले, तारें, तांबे के टुकड़े, चूड़ियाँ और कुल्हाडी आदि हैं। यहाँ से धातु गलाने वाली भट्ठियों के प्रमाण मिले हैं। यहाँ से एक बर्तन का टुकड़ा मिला हैं। जिस पर सूती वस्त्र के निशान हैं। इसमें अनुमान लगाया जा सकता है कि कालीबंगा में वस्त्र उद्योग विकसित अवस्था में था। कालीबंगा और मोहनजोदड़ों के निचले स्तरों से सेलखडी की वस्तुएं और मिट्टी के टूटे हुए बर्तन मिले है, जो इरान तथा मैसोपोटामिया के समतुल्य हैं। इस पुरास्थल से प्राप्त सेलखड़ी की अभिलिखित मुहरें और मिट्टी की छोटी मुहरें महत्वपूर्ण साक्ष्य है। यहाँ से प्राप्त बेलनाकार मुहर मैसोपोटामिया से मिली मुहर के समरूप हैं। यहाँ के समरूप हैं। यहाँ से प्राप्त मुहरों से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय सैधंव संस्कृति के मैसोपोटामिया से व्यापारिक सम्बन्ध थे।

पंजाब का क्षेत्र भारत में प्राचीन काल से उपजाऊ क्षेत्र हैं। जहाँ पर एक संस्कृति विकसित होने के सभी स्त्रोत उपलब्ध थे। अन्य प्रान्तों की भांति पंजाब में सैंधव संस्कृति के मुख्य केन्द्र हड़प्पा, रोपड़, संघोल, कोटला–निहंग–खान, मोहराना, संघोल, बाडा तथा ढलेवा आदि हैं। इनमें हड़प्पा, रोपड़ और संघोल का विकास एक व्यापारिक केन्द्र के रूप में हुआ।

हड़प्पाः–

हड़प्पा मोण्टगोमरी जिले (पाकिस्तान) में इसी नाम के कस्बे से 15 मील दक्षिण पश्चिम में रावी नदी के बांए किनारे पर स्थित हैं। हडप्पा के टीले के बारें में प्रथम उल्लेख चार्ल्स मैरसन ने 1826 ई. में किया था। 1921 ई. में रायबहादुर दयाराम साहनी ने इसका पुनरान्वेषण किया और 1923–24 तथा 1924–25 में उत्खनन करवाया। इसके बाद इस पुरास्थल के 1926–27 से 1933–34 तक माधोस्वरूप वत्स के निर्देशन में उत्खनन् हुए। 1946 में व्हीलर ने यहाँ उत्खनन् किया जिससे महत्वपूर्ण नये तथ्यों की जानकारी प्राप्त हुई। जिनमें एक टीले की पहचान गढी के रूप में की गई हैं। अनुमानतः मूलरूप से यह नगर 5 किलोमीटर के क्षेत्र में बसा था (किरण कुमार थपल्याल एवं सकंटा प्रसाद शुक्ल,1976:8)। इस व्यापारिक केन्द्र से चूडियाँ, छल्ले, बालों में लगाने वाली पीने मिली हैं। हड़प्पा से हमें ताबों के मनके मिले हैं जो बेलनाकार है।

रोपड़ः–

सैंधव कालीन यह व्यापारिक केन्द्र सतलुज नदी के बाएं तट पर पंजाब प्रान्त के रोपड़ नामक स्थान पर स्थित है, जिसे आधुनिक रूप नगर के नाम से जाना जाता हैं। इस पुरास्थल का प्रथम उत्खनन् सन् 1950 में बी. बी. लाल ने तथा उसके बाद सन् 1953–55 तक वाई.डी.शर्मा ने करवाया। यह पुरास्थल तीन टीलों में विभाजित हैं। इस पुरास्थल की ऊँचाई लगभग 15 मी. हैं। यह पुरास्थल पंजाब में बाड़ा से 25 कि.मी पूर्व में स्थित हैं।

इस पुरास्थल के आस–पास का क्षेत्र कृषि के लिए उपजाऊ हैं। सैंधव काल में भी यहाँ पर कपास की कृषि की जाती थी। यहाँ से कपास मोहनजोदड़ों भेजी जाती थी। पंजाब में चावल का आयात गुजरात से होता था। इस व्यापारिक केन्द्र से व्यापार जल और स्थल मार्गो से होता रहा होगा। नगरीकरण के विकास के साथ–साथ सैंधव काल में व्यापार में उत्तरोत्तर विकास होता गया। ऐसा प्रतीत होता है कि कालीबंगा रोपड़ के रास्ते से हड़प्पा से जुड़ा हुआ था। इस प्रकार रोपड़ के व्यापारिक सम्बन्ध कालीबंगा तथा हड़प्पा दोनों के साथ थे। घग्घर नदी मार्ग के द्वारा सैंधव कालीन केन्द्र बनावली, कुणाल आदि रोपड़ से जुड़े हुए था (एस.पी.गुप्ता,1996:422)। इसी मार्ग से पूर्वी पंजाब और हरियाणा के केन्द्रों के व्यापारिक सम्बन्ध सिन्ध तथा बलुचिस्तान से बने हुए थे।

इस व्यापारिक केन्द्र से कुछ अर्द्धमूल्यवान, प्रस्तर, आगेट, कार्नेलियन, क्रिस्टल, जैस्पर, चाल्सीडॉनी, लार्जवर्द, आदि के मनके प्राप्त होते हैं। जिनमें स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ पर सिन्धु काल में मनके बनाने का उद्योग विकसित रहा होगा। यहाँ से प्राप्त पुरावशेषों में मुख्यतःस्टेटाइट की मुद्राएं, पक्की मिटट्री के मुद्रांक जिन पर सिन्धु लिपि के धुँधले चिन्ह अंकित हैं। चर्ट पत्थर के बाट–बटखरे, ताबें का एक उस्तरा तथा बाणाग्र, स्टेटाइट हौर कार्नेलियन के मनके आदि हैं। इन सभी प्राप्त प्रमाणों के अध्ययन से पता चलता है कि रोपड़ सैंधव संस्कृति कालीन एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था।

संघोलः–

संघोल लुधियाना जिले में, चंडीगढ़ से 40 किलोमीटर दूर स्थित हैं। इस पुरास्थल का उत्खनन् पंजाब पुरातत्व विभाग्र की ओर से एस. एस. तलवार तथा रवीन्द्र सिंह विष्ट ने करवाया। इस व्यापारिक केन्द्र से तांबे की दो छेनियाँ, कांचली मिट्टी की चुडियाँ, बाली और मनके पाए गये हैं (किरण कुमार थपल्याल एवं सकंटा प्रसाद शुक्ल,1976:5)।

सुत्कागेनडोरः–

यह करांची से लगभग 300 मील पश्चिम में और बलूच–मकरान समुद्र–तट से 56.32 किलोमीटर उत्तर में दाश्त नदी के पूर्वी किनारे पर स्थित हैं। स्टाइन ने 1927 ई. में इस पुरास्थल की खोज की। 1926 ई. में जार्ज डेल्स ने इस पुरास्थल का सर्वेक्षण किया और उन्हें यहाँ पर बन्दरगाह, दुर्ग और निचले नगर की रूप रेखा मिली। डेल्स के अनुसार मूलतः सुत्कगेनडोर समुद्र के बहुत समीप था और इसने एक बन्दरगाह के रूप में सिन्धु सभ्यता और बेबीलोन के मध्य व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई होगी।

सोत्काकोहः–

यह पुरास्थल परिन से लगभग 8 मील, शादीकोर नदी की घाटी में सुत्कगेनडोर से पूर्व में स्थित है (किरण कुमार थपल्याल एवं सकंटा प्रसाद शुक्ल,1976:5)। डेल्स ने 1962 ई. में इस पुरास्थल की खोज की थी। यहाँ पर दो टीले मिले हैं। पूर्वी टीले के पूर्वी किनारें पर लगभग 488 मीटर लम्बी दीवार होने के साक्ष्य मिले हैं। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि सोत्काकोह बन्दरगाह न होकर समुद्र तट और समुद्र से दुरवर्ती भू–भाग के मध्य व्यापार का केन्द्र रहा होगा।

कोटदीजीः–

कोटदीजी सिन्ध प्रांत के खेरपुर नगर से 24 किलोमीटर दक्षिण और मोहनजोदड़ो से 40. 24 किलोमीटर पूर्व में स्थित हैं। इस पुरास्थल का उत्खनन पाकिस्तान पुरातत्व विभाग के निर्देशक फजल अहमद खां ने 1955 और 1957 ई. में करवाया। इस व्यापारिक केन्द्र से चर्ट के फलक और मिट्टी के पिंड मिले हैं। पत्थर के बाणाग्र यहाँ के सिन्धु सभ्यता काल की विशेषता है जो अन्य सिन्धु सभ्यता के स्थलों में नही मिलती (किरण कुमार थपल्याल एवं सकंटा प्रसाद शुक्ल,1976:7)।

मोहनजोदड़ोः–

यह सिन्धु नदी के पूर्वी किनारे पर स्थित हैं। यह दक्षिण में लगभग 6 मीटर ऊंचा है और उत्तर में लगभग 12 मीटर। इस पुरास्थल का उत्खनन् 1922 से 1930 ई. तक मार्शल के नेतृत्व में

कराया गया। इस पुरास्थल से जो मृदभाण्ड व अन्य वस्तुएं मिली है वे पुराविदों के अनुसार बलूचिस्तान की सभ्यताओं के मृदभाण्डों से बहुत मिलती झुलती हैं।

चन्हुदड़ोः—

चन्हुदड़ो नाम पुरास्थल मोहनजोदड़ो से दक्षिण—पूर्व दिशा में लगभग 128.75 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। ननी गोपाल मजूमदार ने 1931 ई. में इसका उत्खनन् कराया। फिर मैके ने 1935 ई. इसका उत्खनन किया। सिन्धु सभ्यता के सन्दर्भ में प्राप्त बर्तन, मुद्रा, ताम्र उपकरण, मनके, बाट—बटखेर आदि हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से प्राप्त इसी तरह की वस्तुओं से मिलते—जुलते हैं। उत्खनन् के दौरान यहाँ से मनके बनाने के कई कारखाने प्राप्त हुए हैं(किरण कुमार थपल्याल एवं सकंटा प्रसाद शुक्ल,1976:7) ।

मांडाः—

जम्मू—कश्मीर के क्षेत्र से भी सैंधव सस्कृति कालीन प्रमुख केन्द्र मांडा की खोज की गई। यह जम्मू से लगभग 28 कि. मी. उत्तर—पश्चिम में सिन्धु नदी की एक सहायक नदी चेनाब के दाहिने तट पर पीर—पंजाल पर्वत श्रृंखला की तराई में स्थित हैं। यहाँ से उत्खनन् के पश्चात् तीन संस्कृतियों के प्रमाण मिले हैं। सभवतः नव पाषाणिक कश्मीर से कच्चा माल मांडा के परिपक्व सैंधल स्थलों तक भेजा जाता था। अरावली क्षेत्र से लकड़ी मोहनजोदड़ों और उर आदि समुद्री जहाज बनाने वाले केन्द्र को निर्यात की जाती थी। मांडा के द्वारा हिमालय क्षेत्र से लकड़ी के व्यापार को नियत्रिंत किया जाता था। देवदार और शिलाजीत की प्राप्ति उत्तर में हिमालय की श्रृंखलाओं से की जाती थी। उत्तर भारत में सिन्धु कालीन प्रमुख केंन्द्र मांडा से हिमालय क्षेत्र से प्राप्त वस्तुओं का निर्यात सिन्धु के अन्य केन्द्रों को किया जाता था। यहाँ से प्राप्त सैंधव संस्कृति कालीन वस्तुओं में दोहरे सिरे वाली ताम्र—पिन से स्पष्ट होता है कि इसका पश्चिम एशिया से व्यापारिक सम्बन्ध था।(किरण कुमार थपल्याल एवं सकंटा प्रसाद शुक्ल,1976:103)

निष्कर्षः—

रूप में कह सकते हैं कि सैंधव काल से ही व्यापार का आर्थिक जीवन में महत्वूपर्ण स्थान रहा हैं। इस काल में कृषि उत्पादों में वृद्धि के कारण लोगों के बीच नियमित व्यापार शुरू हो गया था। सिन्धु सभ्यता के व्यापारी लोग आन्तरिक व्यापार के साथ—साथ बाह्य व्यापार भी करते थे। व्यापारिक मार्गो एवं यातायात के साधनों ने सैंधव काल के व्यपार को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सैंधव लोगों ने व्यपार के लिए आन्तरिक तथा बाह्य व्यापारकि मार्गो का प्रयोग किया। अनेक जल तथा स्थल मार्गो से व्यपार को मजबूती मिली।

सन्दर्भ

1. अग्रवाल, डी.पी.: दि कॉपर—ब्रॉज एज इन इण्डिया, मुशी राम मनोहर लाल पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 1971

2. आग्रवाल, आर.एसः ट्रेड सैन्टर एण्ड रूट्स इन नार्दन इण्डिया, बी.आर पब्लिशिंग कापोर्रेशन, दिल्ली, 1982

3. आत्तचिन, बी. तथा आर. : दि राईज ऑफ सिविलाइजेशन इन इण्डिया एंड पाकिस्तान, नई दिल्ली,1986

4. अस्थाना, शशी : हिस्ट्री एण्ड आर्कियोलॉजी ऑफ इण्डियाज कान्टेक्ट विद अदर कन्ट्रीजफ्रॉम अर्लिअस्ट टाईम टू 300 बी.सी, नई दिल्ली, 1975.

5. कोरोत्सकाया, अ. : भारत के नगर, मास्को, 1984.

6. कोहल, फिलिप एल. : दि आर्कियॉलोजी ऑफ ट्रेड, डायलैक्टिकल एन्थ्रोपोलोजी, 1975

7. गुप्ता, डी.के. : प्राचीन भारत में व्यापार, जयपुर, 2001

8. गाड, सी.जे. : सील्ज ऑफ एंशियन्ट इण्डियन स्टाइल फाऊंड एट उर, 1932

9. चक्रवर्ती, एच.पी : ट्रेड एण्ड कॉमर्स ऑफ एंशियन्ट इण्डिया, कलकत्ता, 1966

10. चक्रवर्ती. डी. : ''सीलज एज एन एविडैन्स ऑफ इण्डस वैस्ट एशिया इन्टररिलेशन'', हिस्ट्री एण्ड सोसाइटी, कलकत्ता, 1978

11. डेल्स, जी. एफ : ''हड़प्पन आऊटपोस्ट ऑन दि मकरान कोस्ट'', एन्टीकुटी–ग्ग्टए 92, 1962

12. डेल्स, जी.एफ. : अरली ह्यूमन कान्टेक्ट फ्रॉम दि पर्शियन गल्फ थ्रो बलूचिस्तान एण्ड साऊथ अफगानिस्तान, 1971

13. डुरिंग कैम्पर, ई.सी.एल : हड़प्पन ट्रेड इन दि अरबियन गल्फ इन दि थ्रड मिलेनियम बी.सी., मैसोपोटामिया, 1972

14. थपल्याल, किरण कुमार एवं संकटा प्रसाद शुक्ल : सिन्धु सभ्यता, लखनऊ, 1976

15. प्रसाद, पी.सी.ः फारेन ट्रेड एण्ड कामर्स इन एंशियन्ट इण्डिया, अभिनव पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1977

16. बायबे, टी.जी.ः ''दि एंशियन्ट इण्डियन स्टाइल सीलज फ्रॉम बहरीन'', एन्टीकुटी, 1958

17. मैके, ई.ः चन्हुदड़ो एक्सकेवेशन, 1935–36, नई दिल्ली, 1943

18. मार्शल, जे.ः मोहनजोदड़ो एण्ड दि इण्ड्स सिविलाइजेशन, वॉल्यम– 1,2,3 लन्दन, 1931

19. मोतीचन्द्रः ट्रेड एण्ड ट्रेड रुट्स इन एंशियन्ट इण्डिया, नई दिल्ली, 1977

20. मोतीचन्द्रः सार्थवाह, पटना, 1953

21. राव, एस.आर.ः लोथल एण्ड, इण्ड्स सिविलाइजेशन, मुम्बई, 1973

22. राव, एस.आर.ः लोथल एण्ड इण्ड्स सिविलाइजेशन, मुम्बई, 1973

23. राव. एस.आरः फर्दस एक्सकेवेशन एट लोथल, ललित कला, 1962

24. राय, नन्द जीः प्राचीन भारत में यातायात के साधन, दिल्ली, 1992

25. लाल, बी.बीः दि अरलिएस्ट सिविलाइजेशन ऑफ साउथ एशिया, आर्यन पब्लिशर्स, नई दिल्ली

26. लाहिरी, नयनजीतः दि आर्कियोलोजी ऑफ इण्डियन एण्ड ट्रेड रुटस, दिल्ली, 1992

27. वाजपेयी, कृष्ण दत्तः प्राचीन भारत के विदेशों से सम्बन्ध, इन्दौर, 1973

28. शास्त्री, केदारनाथः सिन्धु सभ्यता आदि केन्द्र हड़प्पा, आत्मा राम एण्ड संस, दिल्ली

29. शर्मा, आर.एसः लाईट ऑन अर्ली इंडियन सोसायटी एण्ड इकोनामी, मुम्बई, 1966

30 लीमांस, डब्लु.एफ.ः फॉरन ट्रेड इन दि ओल्ड बेबिलोनियन पिरियड, लंदन, 1960

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं स्वामी विवेकानंद जी के शिक्षा दर्शन में मूल्यपरक शिक्षा का मानव जीवन पर प्रभाव

(संतोष कुमार सिंह शोधार्थी राजा हरपाल सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय सिंगरामऊ जौनपुर)

प्रस्तावना

गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर ने अपने शिक्षा दर्शन के विकास के साथ–साथ दर्शन का भी विकास किया। अतः उनके जीवन दर्शन के विकास में जिन तत्वों का प्रभाव पड़ा उन्हीं तत्वों का प्रभाव उनके शिक्षा दर्शन के विकास में भी पड़ा। टैगोर के शिक्षा दर्शन के निर्माण पर उनके परिवार का विशेष प्रभाव पड़ा जो कि सभी प्रकार के प्रगतिशील विचारों एवं कार्यों और विभिन्न राजनैतिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक धार्मिक आंदोलनों का केंद्र था।

श्री एस० सी० सरकार ने इस तथ्य की खोज करते हुए लिखा है उन्होंने स्वयं ही शिक्षा के उन सभी सिद्धांतों की खोज की जिनका आगे चलकर उन्हें अपने लिए प्रतिपादन करना था इसके अतिरिक्त गुरुदेव रविंद्र नाथ टैगोर ने अपनी तीव्र बुद्धि द्वारा प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञानों का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था जिनका कि उनके शिक्षा दर्शन के निर्माण में पर्याप्त प्रभाव पड़ा इस प्रकार उनपर टैगोर के विकास में अनेक महत्वपूर्ण बातों का प्रावधान पड़ा।

रवींद्रनाथ टैगोर के अनुसार,

"शिक्षा की धारणा शरीर तथा आत्मा से ही जो प्रकृति की गोद में स्वास्थ्य एवं प्रसन्न प्रसन्न निश्चित होकर विकास करता है"

"रविंद्र नाथ टैगोर का मानना था कि प्रकृति मानव तथा अंतरराष्ट्रीय संबंधों मे परस्पर मेल एवं प्रेम होना चाहिए"

"उन्होंने सच्ची शिक्षा के द्वारा वर्तमान के सभी वस्तुओं में मेल और प्रेम की भावना विकसित करना चाहते थे टैगोर का विश्वास था कि शिक्षा प्राप्त करते बालक को स्वतंत्र वातावरण मिलना परम आवश्यक है"

"रूसो की भात टैगोर भी प्रकृति को बालक की शिक्षा को सर्वश्रेष्ठ साधन मानते थे उन्होंने टैगोर लिखा है प्रकृति के पश्चात बालक का सामाजिक व्यवहार की धारा के संपर्क में आना चाहिए"

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर का जीवन वर्णन

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म बंगाल के ख्याति प्राप्त शुद्ध सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत परिवार में 7 मई सन 1861 में कोलकाता में हुआ था उनके पिता का नाम महर्षि देवेंद्र नाथ टैगोर था उस समय उनका परिवार अपनी समृद्धि कला एवं संगीत के लिए सारे बंगाल में प्रसिद्ध था टैगोर का अपने माता–पिता से विधता देशभक्ति धर्म प्रियता साधु का आदि गुण उत्तराधिकार के रूप में मिला था इनके प्राप्त हुए पिता इन्हें एक साथ गायक वैज्ञानिक दार्शनिक डॉक्टर साहित्यकार सभी कुछ बना देना चाहते थे इनका जीवन नौकरों के संरक्षण में व्यतीत हुआ तो उन्हें घर की चहारदीवारी में रखते थे जिनके कारण उनमें प्रकृति के प्रति प्रेम जागृत हो गया अंत में उनकी जीवन लीला सन 1941 में समाप्त हो गई

टैगोर जी की शिक्षा

गुरुदेव भारत में एक ऐसी शिक्षा चाहते थे जो वातावरण के निकटतम संपर्क में दी जाए वह समझते थे कि शिक्षा का उद्देश संपूर्ण प्रकृति तथा संपूर्ण जीवन से व्यक्ति में एकत्र की भावना का विकास है समायोजित व्यक्ति के लिए वह एकत्र की भावना ही सबसे महत्वपूर्ण समझते थे वह चाहते थे कि शिक्षा द्वारा विद्यार्थी में यह क्षमता विकसित हो जाएगी वह प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित कर सके और समाज के साथ मनुष्यता का व्यवहार कर सकें तथा शिक्षा के मूल्यों का अवलोकन एवं व्यवहारिक रूप में क्रियान्वित करना एवं व्यवसायिक करण ना होकर अपितु व्यावहारिक एवं मानवतावादी एवं मानव परक शिक्षा होनी चाहिए इस पर जोर दिया।

उदीयमान कवि –

मैं कस्तूरी मृग सा रहा भटकता द्य

अपनी ही सुरभि से पागल द्यद्य

अपने घर वापस आना कुछ वैसा ही था जैसा कोई नन्हा बहादुर साहस पूर्ण विजय के बाद लौटता है हिमालय के पर्वतीय प्रदेश तब ऐसे नहीं थे जैसा कि आज के मोटर कारों और हवाई जहाजों ने उन्हें बना दिया या बदल दिया है वह सुदूर व्यापी सपने जैसे थे अक्षरों में वर्णित देवी देवताओं के विचरण स्थल और नायकों तथा ऋषि यों द्वारा गम्य थे जैसा कि किताबों में पढ़ने से जान पड़ता है उस पौराणिक प्रदेश में और वह भी विस्मयकारी महर्ष के साथ सचमुच एक बहुत बड़ा सम्मान था जिसमें कि सारे परिवार में उसे बालक की हैसियत को अचानक काफी ऊंचा उठा दिया नौकरों के शासन काल का अंत हुआ अब घर के अंदर प्रकोष्ठा में उसका स्वागत किया जाता जहां अभी माननीय मां बड़ी प्रसन्नता के साथ अपनी सबसे छोटी संतान को दूसरी महिलाओं के सामने पेश करती जो उनके साहसिक कारनामों को सुनने को बेचौन थी टैगोर जी के एक उदय महान कवि ने ही साथ–साथ इनके कविताओं की रचनाओं में भी उच्च कोर्ट की दर्शन झलकता था यद्यपि वसंत कुमार राय ने रविंद्र नाथ टैगोर से भेंट कर यह अनुरोध किया था कि वे अपनी रचनाओं का आधिकारिक अनुवाद करें क्योंकि उन्हें यह मालूम था कि सभी उनकी रचनाओं से लोग परिचित हो सकेंगे उन्होंने कहा देर सवेर आपको नोबेल पुरस्कार अवश्य प्राप्त होगा न केवल भारत बल्कि एशिया के किसी भी साहित्यकार को अब तक यह सम्मान नहीं मिला। रवींद्नाथ टैगोर ने तब वही ही सहजता से उनसे पूछा था क्या किसी एशिया वासी को इस पुरस्कार के योग्य समझा भी जाता है। इस बीच हरित मोनरो ने शिकागो मैगजीन पोएट्री के दिसंबर अंक में गीतांजलि की कविताएं प्रकाशित की थी यह संभवत पश्चिम का पहला साहित्य पत्र था जिसमें उनकी कविताएं छपी थी इसके तुरंत बाद ही शिकागो विश्वविद्यालय ने उन्हें अपने महा व्याख्यान के लिए आमंत्रित किया यह तब की बात है जब रवींद्नाथ उरवाना में ही ठहरे हुए थे।

16 साल बाद कभी एवं उच्च कोटि के भारतीय शिक्षा दर्शन शास्त्री की मृत्यु के पूर्व भी उनकी याद ताजा थी जब वृद्ध जर्जर और अपने अंत की प्रतीक्षा करते हुए उन्होंने अपनी अंतिम कविताओं में जगह दी (शेष लेखा)

मैं यह चाहता था कि एक बार फिर मैं अपना रास्ता ढूंढ उन विदेशी जगहों को जहां प्रेम का संदेश मेरी प्रतीक्षा में है कल के सपने पंख लगाकर उड़ते आएंगे, और धीरे–धीरे अपने नए घोषणाओं में फड़फड़ आएंगे।

पुरानी से पुरानी स्मृतियां बांसुरी को उसकी खोई लय में सजाएंगे मैं नहीं जानता उसकी भाषा लेकिन जो कुछ उसकी आंखों ने कहा था वह हमेशा के लिए मनो व्यवस्था में मुखर रहेगी

रवीन्द्रनाथ जी इस प्रकार वर्ष समाप्ति के पहले कोलकाता में इंडियन क्लासिकल कांग्रेश के पहले सत्र की अध्यक्षता की जहां उन्होंने भारत के लोग धर्म और लोक परंपराओं की उच्च दार्शनिकता सार्थकता पर व्याख्यान दिया नए वर्ष की शुरुआत के कुछ समय बाद वे अखिल भारतीय संगीत सभा में भाग लेने के लिए लखनऊ गए रवीना टैगोर की एक उच्च कोर्ट के दार्शनिक शिक्षा शास्त्री एवं संगीत के प्रेमी उच्च कोटि के कवि व लेखक भारतीय विद्वानों में माने जाते हैं उनका दर्शन मूल्य पर आधारित एवं मानवतावादी उद्देश्यों पर आधारित था जनकल्याण की शिक्षा पर बल दिया प्रकृति की छठा में शिक्षा का केंद्र बनाने की चेष्टा की इसीलिए शांतिनिकेतन विश्वविद्यालय की स्थापना की।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा के उद्देश्य –

1– शारीरिक विकास का उद्देश्य

2– मानसिक विकास का उद्देश्य

3– शिक्षा तथा जीवन में सामंजस्य स्थापित करना

4– आध्यात्मिक संस्कृत का विकास करना

5– पूर्व मानव के रूप में विकसित करना

6– सत्य एवं एकता कायम रखना

7– मूल्यपरक शिक्षा पर विशेष बल एवं आध्यात्मिक संस्कृति का विकास की ओर उन्मुख

8– राष्ट्रीयता का विकास

9– नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास

10– समस्त शक्तियों का विकास

11– अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास

12– सामाजिक विकास

स्वामी विवेकानंद जी का जीवन वर्णन–

स्वामी विवेकानंद जी का भारतीय दार्शनिकों में सबसे बेहतरीन विचार को में से एक हैं उनका जन्म 12 जनवरी अट्ठारह सौ 63 को मकर संक्रांति के दिन कोलकाता के प्रसिद्ध वकील श्री विश्वनाथ दत्त के घर में हुआ था उनकी माता का नाम भुवनेश्वरी देवी था युवा स्वामी विवेकानंद जिनका असली नाम नरेंद्र दत्त था एक एक बुद्धिमान और एथलेटिक एथलीट थे गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस के विचारों का उनके जीवन पर प्रभाव पड़ा अपने गुरु के संपर्क में आने के बाद उन्होंने विवेकानंद नाम कमाया स्वामी जी ने भारतीय सभ्यता और दैनिक जीवन की गहन समझ के प्रयास में पूरे भारत का भ्रमण किया जब पूरी भारतीय सभ्यता एक गहरी निराशा में गिरी हुई थी उस समय स्वामी विवेकानंद के विचार और दर्शन एक तेज रोशनी की तरह समाज भर में सभी की जागरूकता को रोशन कर रहे थे उन्होंने सोचा पूर्ण अंधकार का एकमात्र कारण अशिक्षा ही है

उन्होंने साबित या विमुक्तए अर्थात विद्या ही मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है का सिद्धांत प्रतिपादित किया युवाओं को स्वामी जी ने डर को ज्ञान बल शारीरिक बल आचरण बल और नैतिक आचरण बल के साथ बदलने की सलाह दी थी जो जीवन में सबसे ज्यादा मायने रखता था उनके आदर्श आधुनिक भारत और शेष विश्व में उतने ही लागू और प्रशंसनीय है जितने भी अतीत के भारत में बदलते समय और परिस्थितियों के बावजूद

स्वामी विवेकानंद की शिक्षा–

1– मानसिक एवं बौद्धिक विकास

2– नैतिक एवं चारित्रिक विकास

3– शारीरिक विकास

4– समाज सेवा की भावना का विकास

5– नारी शिक्षा का विकास

6– व्यवसायिक शिक्षा का विकास

7– धार्मिक तथा आत्मिक शक्ति का विकास

8– विश्व बंधुत्व की भावना का विकास

9– वर्तमान में प्रासंगिकता का अध्ययन का विकास

स्वामी विवेकानंद के शिक्षा का उद्देश्य –

जो शिक्षा प्रणाली आम आदमी को जीवन के संघर्ष का सामना करने की क्षमता प्रदान करने में सहायक नहीं है मनुष्य की नैतिक शक्ति उसकी सेवा शक्ति उसके अंदर शेर की तरह है साहस का विकास नहीं करती है वह भी योग्य है शिक्षा के नाम पर

लेखक एक मार्ग में शिक्षा के उद्देश्यों के बारे में पूछता है कि स्वामी विवेकानंद ने निम्नलिखित को प्रमुख शैक्षिक लक्ष्यों के रूप में रूप में सूचीबद्ध किया

1– अंतर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्त

2– मानव निर्माण करना

3– शारीरिक पूर्णता

4– चरित्र का निर्माण

5– जीवन संघर्ष की तैयारी

6– राष्ट्रीयता की भावना का विकास

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार,

"उठो जागो तब तक मत रुको जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाय"

"मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही बन जाता है द्य"

गुरुदेव रविंद्र नाथ टैगोर स्वामी विवेकानंद के शिक्षा के प्रति विचारों पर अध्ययन –

सार –

शिक्षा को निश्चित लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए एक नियोजित गतिविधि है जैसे सूचना प्रसारण या कौशल और चरित्र का विकास इन उद्देश्यों में समझ तर्क करुणा और ईमानदारी की वृद्धि शामिल हो सकती है शिक्षा को शिक्षा से अलग करने के उद्देश्य से कई अध्ययन आलोचनात्मक सोच की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हैं जबकि कुछ सिद्धांत इस बात पर जोर देते हैं कि शिक्षा को एक छात्र की प्रगति की ओर ले जाना चाहिए अन्य लोग जब शब्द की परिभाषा के पक्ष में हैं जो मूल्य तथा स्ट हैं वह कुछ अलग अर्थों में शिक्षा मानसिक स्थिति और स्वभाव को भी संदर्भित कर सकती है जो शिक्षित व्यक्तियों के पास होती है ना कि अभ्यास के बजाय शिक्षा का मूल उद्देश्य सांस्कृतिक विरासत को भावी पीढ़ियां तक पहुंचाना था आज के शैक्षिक उद्देश्यों में तेजी से नई अवधारणाएं शामिल है जैसे सीखने की स्वतंत्रता समकालीन सामाजिक कौशल सहानुभूति और पर पृष्ठ व्यवसाय क्षमताएं इस लेख में स्वामी विवेकानंद एवं गुरुदेव रविंद्र नाथ टैगोर के शैक्षिक विचारों पर अध्ययन किया है

विश्व बंधुत्व की भावना का विकास–

स्वामी विवेकानंद की शिक्षा में वसुधैव कुटुंबकम की खेती के साथ–साथ देशभक्ति की भावना भी शामिल थी उनकी राष्ट्रीयता सीमित नहीं लगती थी बल्कि इसमें व्यापकता की भावना थी वह वैश्विक भाईचारे की भावना में विश्वास करते थे क्योंकि उन्होंने ब्रह्मांड को सभी लोगों में उस परम अस्तित्व को प्रतिबंधित करने के रूप में देखा था

निष्कर्ष–

महान राष्ट्रवादी और देशभक्त स्वामी विवेकानंद उन्होंने अपने व्याख्यान और लेखन विशेषकर युवा पीढ़ी के माध्यम से भारत के युवा लोगों में आत्मविश्वास आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास को प्रोत्साहन किया उन्होंने भारतीय संस्कृति के निर्माण में भी मदद की उन्होंने उत्कृष्ट विचारों के साथ साथ विदेशी ज्ञान और विज्ञान को शामिल करने पर जोर दिया उनके संबंधों का तरीका पूरी युवा पीढ़ी को गर्व के साथ आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करता है वह अब हमारे बीच शारीरिक रूप से रहकर और अपने आध्यात्मिक ज्ञान और स्फूर्ति वर्धक विचारों को साझा करके देश को निर्देशित कर रहे हैं

अपने काम और उपलब्धियों से रवीना टैगोर दुनिया भर में अभिनय शिक्षकों के नेटवर्क ओं में शामिल हो गए जिनमें रूसो पेस्टोलॉजी फ्लॉवेल मांटेसरी डीबी और हाल ही में एकं नोल्स शामिल हैं हालांकि टैगोर भारत के राष्ट्रीय गीत के लेखक अपनी मातृभूमि के एक शानदार राजदूत हैं वह दुनिया के एक सच्चे व्यक्ति भी हैं जो पारंपरिक भारतीय और समकालीन पश्चिमी संस्कृति और दोनों को बेहतरीन पहलुओं का प्रतीक है टैगोर जी ने शांति निकेतन की स्थापना की यही कारण है कि मानव मन केवल अपने ज्ञान को आत्मसात करने में सक्षम है कई व्यक्तित्व लक्षणों के महत्व और व्यावहारिक महत्व का टैगोर द्वारा विस्तार किया गया था

संदर्भ सूची

1– उन्नीथन टी.के.एन. (ईडी) शिक्षा के माध्यम से मानव मूल्य अहमदाबाद, गुजरात, विद्यापीठ प्रथम संस्करण नवंबर 2005

2– प्रोफेसर प्रसाद कृष्ण मूल्यों में शिक्षा मूल्य शिक्षा के लिए रणनीतियों और चुनौतियां

3– जीवन क्रिस्टो ,स्कूलों में मूल्यों का महत्व चरित्र शिक्षा को लागू करना विनोना स्टेट यूनिवर्सिटी रोचेस्टर सेंटर

4– स्वामी विवेकानंद का पूर्ण कार्य, नव खंडों में ीजजचध्ध्बूअ.इमसनतउंजी.वतहध10 पर रामचंद्र ,गुहा आधुनिक भारत के निर्माता पेंगगुइंन नई दिल्ली 2010

5– स्वामी विवेकानंद स्वामी निखिलानंद की जीवनी http//ivnlive-in-com/yuva/bio-pdp पर उपलब्ध है।

6– स्वामी विवेकानंद की शिक्षाएं और उद्धरण

7– रवीन्द्रनाथ टैगोरः ए बायोग्राफिकल स्टडी ऑनेस्टराइज मैं के मिलन एंड क. लंदन 1915

8– टैगोरः एसटीडीः धुर्जटी प्रसाद मुखर्जी पदा पब्लिकेशन मुंबई 1943

9– रवीन्द्रनाथ टैगोर और अरविंद घोष के शिक्षा दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन ड.म्क शोध प्रबंध महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय रोहतक 2008

10– हरिवंश तरुण मानव शिक्षा दर्शन एवं शैक्षिक समाजशास्त्र प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली 2003

11– शीलू मैरी इलेक्स शिक्षा दर्शन रजत प्रकाशन नई दिल्ली 2008

12– अवचित हिमांश शिक्षा व उदीयमान भारतीय समाज अवस्था प्रकाशन जयपुर 2006

13– टैगोर वाई फायर साइड मैत्रेई देवी रूपा एंड कंपनी कोलकाता 1961

श्री स्वामी विवेकानंद जी के आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

(शिखा सिंह, शोधार्थी, गृहविज्ञान, जे0एस0 विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश)

भूमिका–

जीवन का आधार शिक्षा है। बिना शिक्षा प्राप्त किये मनुष्य की स्थिति पशुवत होती है। अतः स्वामी जी ने शिक्षा को मनुष्य जीवन का सबसे अहम हिस्सा माना है। स्वामी जी ने शिक्षा को व्यक्ति का आत्मा विकास व व्यक्तिगत विकास का एक रूप माना हैं, शिक्षा को आत्मा विकास की प्रक्रिया माना है। बालक स्वयं अपने को शिक्षित करता है। विवेकानन्द के शब्दों में ''जिस तरह से आप एक पौधा नहीं उगा सकते, उसी तरह से आप किसी बालक को शिक्षा नहीं दे सकते। पौधा स्वयं अपनी प्रकृति को विकसित करता है।'' परन्तु क्या इसका अर्थ यह है कि शिक्षा से शिक्षक कोई महत्त्व नहीं है? शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षक का महत्त्व बालक के आत्मा–विकास के मार्ग की बाधाओं को दूर करने में है। अतः स्वामी जी शिक्षा में किसी प्रकार का दबाव न चाहते हुए बालक के जीवन में स्वतन्त्र शिक्षा दर्शन व्यवधान चाहते हैं।

स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों का हम पूर्ण रूप से अध्ययन कर चुके है। स्वामी विवेकानन्द शिक्षा में निरन्तर परिवर्तन के पक्षधर थे और मनुष्य की आन्तरिक प्रतिभा को उभारने पर जोर देते थे। उन्होंने कहा था विद्यार्थी की आवश्यकता के अनुसार शिक्षा में परिवर्तन होना चाहिए। अतीत जीवनों ने हमारी प्रवृत्तियों को गढ़ा है, इसलिये विद्यार्थी की उसकी प्रवृत्तियों के अनुसार मार्ग दिखाना चाहिए।

इस प्रकार विवेकानन्द ने स्त्री, पुरूष, धनी, निर्धन सभी में शिक्षा के प्रसार पर जोर दिया है। उनकी शिक्षा प्रणाली भारत की दार्शनिक और आध्यात्मिक परम्परा के अनुरूप थी वे स्वदेशी के जबर्दस्त हिमायती थे और पाश्चात्य संस्कृति के अन्धानुकरण के विरूद्ध थे। जहाँ उन्होंने एक ओर भारत को पाश्चात्य विज्ञान और प्रवृतिवाद अपनाने के लिये कहां कहां उन्होंने दूसरी और ब्रह्मचर्य और आध्यात्म के प्राचीन आदर्शों को शिक्षा में सबसे प्रमुख स्थान दिया है। युवक युवतियों के लिये पाठ्यचर्या निर्धारित करते समय उन्होंने साहस, आत्म विश्वास, एकाग्रता, नैतिक चरित्र के गुण निर्माण करने पर विशेष रूप से ध्यान दिया।

डॉ. आर.एस.मनी के शब्दों में–''उनके जीवन का लक्ष्य इस बात का प्रचार करना था कि लोगों में श्रद्धा तथा मानसिक वीर्य का विकास हो वे आत्मा का ज्ञान प्राप्त करें तथा अपने जीवन को दूसरों की भलाई के लिये त्याग दें। यही थी उनकी इच्छा तथा आर्शीवाद।''

शिक्षा दर्शन –

वेदान्त आत्मा की पूर्णता में विश्वास करता है, उसका स्पष्टीकरण है कि आत्म ज्ञान होने पर सारा ज्ञान साक्षात हो जाता है परन्तु इस आत्मा ज्ञान को प्राप्त करने के लिये पहले मनुष्य को पहले प्राकृतिक स्वरूप का ज्ञान करना होता है, फिर सामाजिक स्वरूप का और उसके बाद आध्यात्मिक स्वरूप का। स्वामी जी ने भौतिक ज्ञान के लिये प्रत्यक्ष अनुकरण व्याख्यान, निर्देशन, विचार–विमर्श और प्रयोग विधियों का समर्थन किया है।

1. शिक्षण सिद्धान्त –

स्वामी जी ने शिक्षा प्राप्त करने के लिये अनेक रूपों का वर्णन किया

है। जैसे, चरित्र, गठन के रूप में, आत्म विकास एवं शिक्षा में स्वतन्त्रता के रूप में।

2. पाठ्यक्रम–

स्वामी जी ने पाठ्यक्रम में आध्यात्मिक पूर्णता के लिये धर्म के साथ साथ दर्शन, पुराण, उपनिषद, साधु, संगत, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, खेलकूद आदि को सम्मिलित किया है।

3. शिक्षार्थी–

स्वामी जी के अनुसार शिक्षार्थी कही जो ब्रह्मचर्य पालन के साथ–साथ गुरू के प्रति पूर्ण रूप से कृतज्ञ हो।

4. नारी शिक्षा–

स्वामी जी ने कहा कि जब तक हम नारी को शिक्षित नहीं करेंगे तब तक हम समाज को शिक्षित नहीं कर सकते है।

5. एकाग्रता –

स्वामी जी ने एकाग्रता को शिक्षा के लिये आवश्यक माना है।

निष्कर्ष–

अति संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि स्वामी विवेकानन्द का दर्शन बहुआयामी है। जिसमें मानव जीवन के अनेक पहलुओं पर विचार करते हुये उसके शैक्षणिक क्षेत्र की भी विवेचना की गई है। भारत ने दीर्घकालीन परतन्त्रता की श्रंखलाओं को तोड़कर स्वतन्त्र वातावरण में जब अपनी श्वांस ली तब यह आवश्यक हो गया था कि उस सामाजिक परिवर्तन के दौर में शिक्षा व्यवस्था में भी अपेक्षित परिवर्तन लाये जायें अर्थात् भौतिक मूल्यों तथा आध्यात्मिक मूल्यों के मध्य सन्तुलन स्थापित किया जाये और इस समन्वय तथा सन्तुलन के आधार पर शिक्षा के उद्देश्यों को स्पष्ट किया जाये, तथा राष्ट्रवाद को अन्तर्राष्ट्रवाद का सहयोगी बनाया जाये। इस समस्त विचारों की पृष्ठभूमि में स्वामी विवेकानन्द की शिक्षा दर्शन का विकास हुआ। इनकी दृष्टि में समाज के नव निर्माण का कार्य आध्यात्मिक मूल्यों के द्वारा ही सम्भव है। स्वामी विवेकानन्द ने अपने शैक्षिक विचार अपने विभिन्न भाषणों तथा रचनाओं में अभिव्यक्त किये हैं।

आधुनिक शैक्षिक सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन की महान उपयोगिता है। इसमें ऐसे शैक्षिक सिद्धान्तों, मान्यताओं तथा अवधारणाओं का समायोजन मिलता है जिसके आधार पर इसे आधुनिक भारत की शैक्षिक आवश्यकताओं के सन्दर्भ में एक सजीव शिक्षा दर्शन कहा जा सकता है तथा इसकी उपयोगिता भविष्य में भी अक्षुण रहेगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– बुच, एम.बी. (1991) थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

2– दुबे, रमाकान्त (1991) विश्व के कुछ महान शिक्षाशास्त्री, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।

3– गुप्त, राम बाबु (1974) भारतीय शिक्षा का इतिहास, सामाजिक विज्ञान प्रकाशन, कानपुर

4– जोशी, शांति (1975) समसामयिकी भारतीय दर्शनिक, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

5– लाल, रमण बिहारी (1980) शिक्षा के दार्शनिक तथा समाज शस्त्रीय सिद्धान्त, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

6– मिश्र, आत्मनन्द (1976) भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।

7– राठौर, कुसुमलता (1976) शंकराचार्य व अन्य भारतीय शिक्षा दार्शनिकों की शैक्षिक विचाराधारा, अनु बुक डिपो, मेरठ।

8– शर्मा, रामनाथ एवं शर्मा, राजेन्द्र कुमार (2006) शिक्षा दर्शन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

9– शर्मा, आर.ए. (2006) शिक्षा अनुसंधान, आर.लाल. बुक डिपो, मेरठ।

10– शर्मा, रामनाथ एवं बंसल, आर.ए. (1976) शिक्षा के सिद्धान्त, केदारनाथ रामनाथ प्रकाशन, मेरठ।

11– सक्सेना, एन.आर. स्वरूप (1996) शिक्षा सिद्धान्त, आर.लाल बुक डिपो मेरठ।

12– विवेकान्द (1976) शिकागो सम्मेलन में प्रवचन, श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर।

13– त्यागी, गुरूशरण दास एवं नन्द, विजय कुमार (2001) उदीयमान भारत में शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

14– डॉ0 अस्थाना गीता एवं पाण्डा अनिल कमार (2009) 'साहित्य रत्नालय कानपुर।

15– डॉ0 त्रिपाठी नरेश चन्द्र एवं डॉ0 ला बिहारी विश्वनाथ (2012) 'अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।

16– गुप्त, राजेन्द्र प्रसाद (1997) 'स्वामी विवेकानन्दः व्यक्ति और विचार' प्रकाशन राधा पब्लिकेशन दरियागंज नई दिल्ली।

17– स्वामी, व्योमरूपानन्द 'विवेकानन्द संचयन' रामकृष्ण मठ नागपुर।

18– www. eric.ed.gov

19– www. dartmouth. edu

20– www. cnwikipedia.org/wiki

21– www. google. co.

ग्रामीण समाज में पिछड़े वर्गों के शैक्षिक एवं आर्थिक उत्थान से नेतृत्व विकास पर प्रभाव

(शोधार्थी–ओम प्रकाश सिंह, शोध निर्देशक–प्रो0 सीता राम सिंह, प्राचार्य, जे0एल0एन0पी0जी0 कॉलेज, बाराबंकी (उ0प्र0))

शोध सारः–

वास्तव में संख्या के आधार पर शासन, प्रशासन तथा राजनैतिक जीवन में भागीदारी तथा लाभ के सभी जगहों पर पिछड़ी जातियों का प्रतिनिधित्व प्रायः न के बराबर है जिसे दूर कर उन्हें भी राष्ट्रीय धारा में भागीदार बनाकर तथा प्रतिनिधित्व देकर सामाजवादी समाज की रचना में अग्रसर हुआ जा सकता है। पिछड़े नेताओं की आकांक्षा अमूमन एक प्रदेश की जाति–विशेष के नेता बने रहने से आगे बढ़ ही नहीं पाई, ऐसे नेतृत्व के चलते देश में पिछड़ी जातियों के उभार की क्रांतिकारी संभावनाएँ छीज गई। कोई सवा सौ साल पहले स्वामी विवेकानंद ने कहा था, ‘‘भारत शूद्रों का होगा।’’ उनका उद्बोधन औपनिवेशिक और सांस्कृतिक गुलामी के खिलाफ भारत में एक नई शक्ति की तलाश से पैदा हुआ था। एक शताब्दी बाद समाजवादी चिंतक किशन पटनायक ने इसी बात को नए अर्थ में दोहराया था। दलित उभार और मंडलीकरण के दौर में किशन जी ने पूंजीवाद और भूमंडलीकरण के प्रतिरोध की शक्ति के रूप में गैर–द्विज समाज को चिन्हित किया था। सामाजिक न्याय की राजनीति आरक्षण व्यवस्था को बचाए रखने की राजनीति में सिमट गई है। देश का यह सबसे बड़ा समुदाय दिशाहीन और अकेला है। ऐसे में हैरानी की बात नहीं कि इनमें से एक बड़ा तबका, खासतौर पर अति पिछड़ी जातियाँ अब नरेन्द्र मोदी की भाजपना में अपना उद्धार खोज रही हैं। इस मरीचिका से बाहर आने और सामाजिक न्याय की सार्थक राजनीति के लिए एक नई शुरूआत करनी होगी।

बीज शब्दः– ग्रामीण पिछड़ा वर्ग, शैक्षिक व आर्थिक विकास, नेतृत्व

प्रस्तावनाः–

भारतीय संविधान में राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धान्तों को पालन करने की संवैधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत अनुच्छेद 46 में इस बात का उल्लेख किया गया है कि राज्य जन्ता के कमजोर वर्गों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों को विशेष सावधानी से बढ़ावा देगा। इस प्रकार राज्य पिछड़े वर्गों के अर्थ सम्बन्धी तथा शिक्षा सम्बन्धी हितों को बढ़ावा देकर अपने संवैधानिक कर्तव्य का पालन करेगा तथा लम्बी अवधि में समाज को समतामय बनाने का कर्तव्य पूरा करेगा। लेकिन संविधान में पिछड़े वर्ग की न तो कोई स्पष्ट परिभाषा

निर्धारित की गई न ही उनके उत्थान के लिए कोई सार्थक प्रयास किए गए। सौभाग्य से1950 और 1970 के दशक में **काका कालेलकर** और **वी0पी मण्डल** की अध्यक्षता में क्रमशः दो पिछड़ा वर्ग आयोगों का गठन समाज के पिछड़े वर्गों के विकास को गति प्रदान करने के लिए गठित किया गया। 1992 के **इन्द्रा साहनी** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार को निर्देश दिया था कि वह लाभ और सुरक्षा के उद्देश्य से अन्य पिछड़े वर्गों के समावेशन और बहिष्करण पर विचार करने तथा जाँच एवं सिफारिश के लिए एक स्थानीय निकाय का गठन करे। इन्हीं निर्देशों के अनुपालन में संसद ने वर्ष 1993 में एक **राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग** अधिनियम पारित किया। पिछड़े वर्गों की शैक्षिक और आर्थिक हितों को प्रभावी ढंग से संरक्षित करने के लिए वर्ष 2017 में 123वाँ संविधान संशोधन विधेयक संसद में पारित किया गया तथा **2018 में** इस विधेयक को राष्ट्रपति से मंजूरी मिलने के उपरान्त **राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग** अस्तित्व में आया। साथ ही संसद द्वारा राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग अधिनियम 1993 को निरस्त कर दिया गया। क्योंकि अब यह अप्रासंगिक हो गया था। समाज में पिछड़ा वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को संरक्षित के लिए प्रावधानों में संविधान के अनुच्छेद 340 में सामाजिक और शैक्षिक पिछड़ापन के शिकार वर्गों की पहचान करना तथा 102वें संविधान के द्वारा 338 (B) तथा 342 (A) तथा 366 आदि के द्वारा अन्य पिछड़ा वर्गों के लिए कल्याणकारी उपायों की तलाश और क्रियान्वयन का अधिकार प्रदान करती है। इन्हीं प्रयासों से पिछड़े वर्गों में नेतृत्व का विकास हुआ और शैक्षिक और आर्थिक विकास को गति मिली तथा उनमें राजनैतिक विचारधारा का प्रादुर्भाव आरम्भ हुआ। वास्तव में पिछड़े वर्गों के हितों का सुरक्षा प्रदान करने के प्रति सजगता के द्वारा प्रतिवेदन तैयार करते–करते यह आशा बनी कि संभवतः भविष्य में प्रदेश के पिछड़े वर्ग के उत्थान का कार्य तीव्रगति से किया जा सकेगा। परन्तु पिछड़े वर्ग की वास्तविक स्थिति को नजदीक से देखने पर पता चलता है कि पिछड़े वर्ग के ग्रामीण अंचलों में पिछड़े वर्ग के लोग अशिक्षा तथा गरीबी के गहन अंधकार में पड़े है। पुरानी दकियानूसी पूर्व मान्यतायें, ऊँच–नीच, भेदभाव पूर्ण सामाजिक व्यवस्था के शिकार हैं। किस प्रकार उनका सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक शोषण हो रहा है। जबकि पिछड़े वर्ग की जनता में अधिकांश मूलतः खेती पर आधारित काश्तकार, दस्तकार, शिल्पकार, पशुपालक तथा समाज की सेवा करने वाले लोग शामिल हैं। विज्ञान की प्रगति तथा कल–कारखानों की स्थापना से ग्रामों के दस्तकार तथा शिल्पकार प्रायः बेकार हो गये हैं, क्योंकि इनके पैतृक पेशों को कल–कारखानों ने छीन लिया है। जिन चीजों को वे अपने कला कौशल से बनाते थे, उन्हें अब मशीनें बनाने लगी हैं। कला–कौशल का मशीनी करण हो गया है तथा वे पूर्णतया अकुशल मजदूर बन गये हैं। कृषि पर उनकी अधिक आश्रितता बढ़ गयी है, साथ ही उनकी बेरोजगारी बढ़ी है। जनसंख्या

वृद्धि तथा कृषि पर अधिक आश्रितता बढ़ने से खेती भी अब कम होती जा रही है। तात्पर्य यह है कि सदियों से चली आ रही कठोर एवं जटिल सामाजिक व्यवस्था के शिकार पिछड़े वर्ग के इन लोगों को विज्ञान की प्रति तथा कल–कारखानों की स्थापना ने बेरोजगार बनाकर आर्थिक रूप से पंगु बना दिया है। अब उनकी समस्यायें और बढ़ गयी हैं अतः उनकी समस्याओं को शैक्षिक और आर्थिक विकास के द्वारा निराकारित किया जा सकता है।

(क) पिछड़ा वर्ग का शैक्षिक विकासः–

पिछड़ा वर्ग के पिछड़ेपन को प्रायः सभी संभव रूप में दूर करने तथा पिछड़े वर्ग के उत्थान हेतु शिक्षा के प्रसार और उसे निरन्तर बढ़ाने के कार्य को अत्यधिक महत्व दिया जाना चाहिए। पिछड़े वर्ग के लोगों में अशिक्षा के कारणों में गरीबी या आर्थिक तंगी स्कूलों का उनके निवास से दूर होना, छात्रावासों में असुविधा का अनुभव तथा उच्च शिक्षा स्तर पर प्रवेश न मिलने के कारणों को प्रमुख दी जा सकती है। साथ ही पिछड़े वर्ग को पर्याप्त शासन सहयोग न मिलना। सरकारी नौकरियों में पिछड़े वर्ग के पात्रों को आरक्षण नहीं होने से पिछड़े वर्ग के पढ़े लिखे लड़के बेकार या बेरोजगार होने रहते हैं। इसके परिणामस्वरूप पिछड़े वर्ग के लोगों में अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए वह उत्साह नहीं रहता, जो हरिजन तथा आदिवासी वर्ग के लोगों में पाया जाता है। अतः शिक्षा के प्रति उनमें कोई उत्सा नहीं रहता है। यदि शासन हरिजन आदिवासियों के बच्चों के समान पिछड़े वर्ग के बच्चों को भी पढ़ाने में सुविधायें एवं सुलभ साधन प्रदान करें तथ्ज्ञा उनके लिए भी नौकरियों में पर्याप्त आरक्षण की व्यवस्था करें तो निश्चित ही पिछड़े वर्ग के लोगों पढ़ाई के प्रति उत्साह बढ़ेगा तथा वे इसके प्रति आकर्षित होंगे।

यह जरूरी है कि शासन संविधान के अनुच्छेद 46 की मंशा को ध्यान में रखकर पिछड़े वर्ग के शिक्षा विषयक हित को विशेष ध्यान देकर बढ़ावा दे। यह भी जरूरी है कि पिछड़े वर्ग में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से शिक्षा का प्रसार किया जावे ताकि इस वर्ग के अभिभावकों में अपने बच्चों को शिक्षित करने की अभिरूचि पैदा हो। क्योंकि पिछड़े वर्ग के प्रौढ़ लोगों में शिक्षा का प्रसार बहुत कम है। वे इसके लाभों से परिचित नहीं है।

(अ) प्राथमिक शिक्षा से उच्चतर माध्यमिक शिक्षा तक पिछड़ा वर्ग की स्थिति सुधारने के उपायः–

1. पिछड़े वर्ग की आबादी में नर्सरी व मांटेसरी स्कूल खोले जायें, जिनमें बच्चो को निःशुल्क पढ़ाई की व्यवस्था हो। उन्हें पुस्तकें कापी, पेंसिल तथा बच्चों को दो सेट स्कूली ड्रेस, कपड़े मुफ्त दिये जावे। दोपहर का भोजन भी गरीब बच्चों को मुफ्त दिया जाय।

2. पिछड़े वर्ग के छात्रों को स्कूल के समय के बाद अध्यापकों द्वारा ट्यूशन की व्यवस्था की जावें। ऐसे अध्यापकों को उनके वेतन के अलावा अतिरिक्त वेतन दिया जाये।
3. छात्रावास की व्यवस्था की जावे। जब तक छात्रावास की व्यवस्था पिछड़े वर्ग के छात्रों को अलग से नहीं होती है, तब तक 25 प्रतिशत के अनुपात से सार्वजनिक स्कूल के छात्रावासों में पिछड़े वर्ग के छात्रों के लिए स्थान आरक्षित किये जावें। यहाँ निर्धन छात्रों के लिए निःशुल्क आवास, भोजन, पाठ्यपुस्तकों व लेखन सामग्री की प्रति वर्ष व्यवस्था की जायें।

फिर भी यह प्रसन्नता की बात है कि शासन ने पिछड़े वर्ग की जातियाँ घोषित करके उनके छात्रों को हायर सेकेण्डरी तक छात्रवृत्ति प्रदान की है तथा प्राथमिक शिक्षा तक पिछड़े वर्ग के छात्र छात्राओं को निःशुल्क पुस्तके देने तथा छात्राओं को स्कूल ड्रेस प्रदान करने की घोषणा की है।

(ब) व्यावसायिक, तकनीकी तथा उच्च शिक्षा में प्रवेश हेतु पिछड़े वर्ग की स्थिति को सुधारने के उपायः–

1. व्यवसायिक तकनीकी तथा उच्च शिक्षा में पिछड़े वर्ग के विद्यार्थियों को प्रवेश हेतु 35%प्रतिशत स्थान आरक्षित किए जायें। इसमें एम0बी0बी0एस0, बी0डी0एस0, बी0ए0, एम0एस0, कृषि, इंजीनियरिंग, तकनीकी एवं व्यवसायिक शिक्षा संस्थायों की सभी संकाय शामिल समझी जावें।
2. पिछड़े वर्ग के विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति दी जावे और पाठ्यपुस्तकें खरीदने के लिए आर्थिक सहायता दी जावें तथा उनको निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जावें।
3. प्रदेश में विद्याध्ययन के लिए भेजे जाने वाले पिछड़े वर्ग के छात्रों को शासकीय खर्च पर भेजा जावें।
4. कालेज व छात्रावासों में पिछड़े वर्ग के छात्रों के लिए 35 प्रतिशत स्थान आरक्षित किए जावें तथा उनका निःशुल्क आवास व भोजन की व्यवस्था की जावें।
5. ग्रामीण अंचलों में अधिक से अधिक महाविद्यालय खोले जावें।
6. पिछड़े वर्ग के परीक्षार्थियों के लिए पी0एम0टी0, पी0ए0टी0, पी0एस0सी0, आई0ए0एस0, आई0पी0एस0 तथा आई0एफ0एस0 आदि प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए शासन द्वारा निःशुल्क कोचिंग, आवास, भोजन, पाठ्यपुस्तकों की व्यवस्था की जावें।
7. बस या ट्रेन आदि द्वारा दूर स्थान से आने वाले छात्रों के लिए यात्रा भत्ता दिया जावे।

वस्तुतः शासन की कक्षा–8 की निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था होने के बावजूद शिक्षा संस्थायें शाला विकास, खेल–कूद, पंखा, बिजली, रोशनाई वार्षिक तथा अर्द्धवार्षिक परीक्षा शुल्क, स्कूल पत्रिका आदि के नाम पर बहुत सा शुल्क वसूल कर लेती है। शिक्षा सत्र के प्रारम्भ में ही इन सब मदों को मिलाकर इतनी रकम हो जाती है कि पिछड़े वर्ग का गरीब छात्र अपनी असमर्थतता के कारण पढ़ाई छोड़ने पर विवश हो जाता है। अतः शासन निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था के बावजूद इस प्रकार के शुल्क वसूल करने वाली संस्थाओं पर कार्यवाही करें ताकि पिछड़े वर्ग के लोगों का शिक्षा के प्रति आकर्षण बढ़े।

(ख) पिछड़ा वर्ग का आर्थिक विकासः– पिछड़े वर्ग के लोगों को व्यवसाय के आधार को निम्न भागों में बाँटा जा सकता हैः– कृषि करने वाले, पशुपालक, दस्तकार व शिल्पकार, सेवा कार्य करने वाले, मछली पालन एवं मजदूरी तथा अन्य।

(1) **कृषि करने वाले के विकास के उपायः–** पिछड़े वर्ग में शामिल जातियों में अधिकांश जनसंख्या खेती करने वाले लोंगों की है। कतिपय जातियों के सीमित लोगों को छोड़कर अधिकांश लोगों के पास स्वयं की खेती नहीं है, लेकिन बहुतायत ऐसे लोगों की है जिनके पास सीमित खेती है या तो बटाईदार या दूसरों की जमीन जोतकर खेती करते हैं, जो अलाभकर जोत की सीमा में आती है। पिछड़े वर्ग के लोग अशिक्षित किसान हैं, जो परम्परागत पुराने औजारों से खेती करते हैं। मानसून की अनिश्चितता बाढ़, सूखा, पाला आदि इनकी कठिनाईयों को और बढ़ावा देते हैं। खेती में सिंचाई की उपर्युक्त व्यवस्था नहीं है और न वे वैज्ञानिक तरीके से खेती करते हैं जो व्यापारिक दृष्टि से लाभकारी हो। अशिखित होने से शासन की प्रगतिशील नीतियों तथा कार्यक्रम से भी भरपूर फायदा नहीं उठा पाते हैं। अतः बाजार भाव की ऐसी स्थिति जो किसानों के हित में रहे, जरूरी है। इसके साथ ही साथ उत्तम बीच, खाद, सिंचाई की सुविधा, नये किस्म के औजार आवश्यकता के समय सुविधा जनक ऋण तथा ग्राम स्तर पर प्रभावकारी विपणन हो। ताकि साधनहीन और साधनहीन न होता जावे तथा साधन सम्पन्न अनेक आमदनी के जरिये पर कब्जा न कर सके।

शाक–सब्जी तथा बागवानी आदि करने वाली काछी, कोयरली माली, मरार, आदि जाति के लोग सीमान्त तथा अलाभ कर जोत वाले किसान हैं। इनकी भूमि मुख्यतः ग्रामों व शहरों के किनारे थी जिसमें वे शाक–सब्जी उपजाकर तथा बेचकर अपनी जीविका चलाते हैं। जनसंख्या की वृद्धि तथा नगरों के विकास के कारण इनकी भूमि विभिन्न योजनाओं में अधिग्रहीत कर ली गई है। अब यह केवल श्रमिक या बटाईदार बन गये हैं और खेती न रह पाने के कारण इनकी हालत खराब हो गयी है। दूसरी और इन्हें अपनी मेहनत का उचित प्रतिफल भी नहीं मिलता है क्योंकि मंडी में बाढ़तियों व दलाल इनका

माल सस्ते में खरीदते हैं। प्रायः देखा जाता है कि उपभोक्ता शॉक–सब्जी जिस मूल्य पर खरीदता है, उसकी आधी कीमत भी इन्हें नहीं मिल पाती है केवल विचौलिये अधिक लाभ कमाते हैं। खेती करने में कुशलता के कारण यह अधिक उत्पादन कर सकते हैं। आजादी के बाद भूमि व्यवस्थापन में ऐसा कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हुआ है, जिसके कारण जो वर्ग स्वयं खेती नहीं करते हैं या जिनके पास जीविका के अन्य साधन हैं उनके हाथ से भूमि ऐसे लोगों की दी जावें जो कुशल किसान है तथा जिनके पास जीविका का अन्य साधन नहीं है। जिनके पास खेती है वे स्वयं खेती नहीं करते हैं तथा जो कुशल किसान हैं उनके हथ में खेती नहीं है। इस प्रकार राष्ट्रीय उत्पादन की दृष्टि से यह स्थिति हानिकारक है।

साथ ही उत्तम खाद, बीज, सिंचाई के साधन नये किस्म के औजार, सुविधाजनक ऋण व बाजार की सुविधा उपलब्ध कराई जाय तथा विचौलियों व दलालों से रक्षा की जाय।

(2) **पशु पालन करने वालों के विकास के उपायः–**गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि पशु पालकर अपनी जीविका कमाने वाली हीर, गड़रिया, गूजर आदि जातियाँ हैं। पहिले खूब चारागाह थे तथा जंगल भी सुरक्षित नहीं थे। अतः पशु पालकर, दूध–दही तथा घी बेचकर वे अपनी जीविका चला लेते थे, लेकिन कुटीर उद्योग धंधों के विकास से कृषि पर अश्रितता बढ़ गयी है। आबादी बढ़ने तथा कृषि पर आश्रितता बढ़ने से चरनोई तथा परती की जमीन तोड़ ली गई, जंगल सुरक्षित हो गये। अतः अब भेड़, बकरी, गाय, भैंस आदि पालकर जीविका चलाना मुश्किल हो गया है। अतः सहकारिता के माध्यम से दुग्ध उत्पादन सहकारी समितियाँ गठित की जावें तथा उन्हें शासन संरक्षण सहयोग व प्रोत्साहन प्रदान करें क्योंकि दूध की मांग शहरों व नगरों में अधिक है और उसकी पूर्ति दूध उत्पादकों की सहकारी समितियाँ बनाकर की जा सकती है जिससे वे सड़क के किनारे से दूध एकत्रित कर नगरों में पहुँचा सकें तथा लाभ कमा सकें। इसी तरह भेड़, बकरी और मुर्गी पालन के लिए प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

(3) **दस्तकार व शिल्पकार के विकास के उपायः–**भारतीय समाज व्यवस्था में पेशे जाति के आधार पर निश्चित थे। लुहार, बढ़ई, सुनार, कुम्हार, तेली, काष्ट, कोष्टी, छीपा, छीपी, दर्जी, कड़ेरे बुनकर लखेरा, कसेरा, तमेरा, ठकेरा, रंगरेज, जुलाहा आदि जातियाँ दस्तकार तथा शिल्पकार के रूप में जानी जाती है तथा वे अपने जातीय धन्धों को अपनाकर के अपना जीवन यापन करती आ रही है। विज्ञान की प्रगति तथा कल कारखानों की स्थापना व मशीनी करण ने इनके धन्धों को चौपट कर दिया है तथा भारी संख्या में देश में बेरोजगारी फैली है।

अतः पिछड़े वर्ग के लोगों की हालत सुधारने तथा इनके ग्रामीण तथा कुटीर उद्योग धन्धों के विकास के लिए सरकार द्वारा आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु की तरह प्रथक से **पिछड़ा वर्ग उत्थान निगम** की स्थापना की जावे, जो पिछड़े वर्ग के उत्थान के काम को अपने हाथ में ले। उन्हें कच्चा माल पूँजी तथा ऋण उपलब्ध कराने में सहयोग प्रदान करे उनके द्वारा उत्पादित माल की क्रय करके विक्रय की व्यवस्था करें तथा मिल व कारखानों की हानिकारक प्रतियोगिता से उनकी रक्षा करें। शासन मृत प्रायः कुटीर उद्योग धन्धों को पुनर्जीवित कर तथा पशु पालन, डेयरी, मुर्गी पालन आदि को बढ़ावा देकर रोजगार के अधिक अवसर प्रदान कर सकती है। इससे बेरोजगारी की विकराल समस्या को हल करने में मदद मिल सकेगी। शासन एकीकृत विकास योजना एग्री इन्डस्ट्रीज तथा लघु उद्योग निगमन की भी पिछड़े वर्ग के हित में अधिक सक्रिय कर सकती है। इस प्रकार प्रदेश में खासकर ग्रामीण जीवन में एक नया वातावरण का निर्माण कर सकती है। इस विषय में नयी तकनीकी की ट्रेनिंग व विकास का लाभ भी उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

4. **सेवा कार्य करने वाले के विकास कार्यः–** सेवा कार्य में लगे पिछड़े वर्ग के लोगों की हलात अत्यन्त दयनीय है। इन जातियों में नाई, धोबी, कहार, ढीमर, भोई, मल्लाह आदि आते हैं। नाई जाति का पुश्तैनी धन्धा बाल बनाना तथा सेवा करना रहा है तथा धोबी जाति का धन्धा लोगों के गंदे कपड़े धोना रहा है। अतः प्राकृति से यह धन्धा गंदगी पूर्ण माना गया है। अतः आज कल इन जातियों के पढ़े लिखे लड़के इस धन्धे को करने से कतराते हैं। अतः शासन द्वारा इन्हें अपनी जीविका चलाने और उद्यम स्थापित करने के लिए प्रोत्साहन और आर्थिक सहयोग मिलना चाहिए।

प्रदेश में भोई कहार, ढीमर, मल्लाह आदि जातियों की हालत अत्यन्त खराब पाई है। उनका पैत्रिक धन्धा मछली मारना, नदीघाटी पर नाव चलाना, दूसरों के घरों में पानी भरना व पालकी ढोना तथा घरों में बरतन साफ करने आदि का काम करना, कमल–गट्टा आदि उपजाना रहा है। नगरों तथा कस्बों में नल लग जाने से, नदी घाट पर पुलों के बन जाने से बड़े जलाशयों व तालाबों को मछली पकड़ने हेतु नीलामी से ठेके पर देने से पैसे वालों द्वारा ठेका लिया जाता है, इससे यह जाति पूरी की पूरी बेरोजगार बन गई है। आज बड़े जलाशयों व घाटों की नीलामी पैसे वाले लोग ठेकों से लेते हैं जो इस जाति के लोगों से नाव चलवाने या मछली पकड़वाने का काम मजदूरी पर करवाते हैं तथा स्वयं मुनाफा कमाते हैं। इसी कारण इस जाति की हालत दयनीय है तथा घास–फूस के कच्चे घरों में व गंदगी पूर्ण मुहल्लों में निवास करते हैं, जिससे उनके स्वास्थ्य पर भी खराब प्रभाव पड़ता है।

5. **मछली उद्योग के लिए विकास कार्यः–** इस प्रदेश में मछली पालन की अच्छी सम्भावनायें हैं तथा मीठे पानी के मछली की माँग देश के कई भागों में काफी अधिक है। अतः मत्स्य पालन विभाग के माध्यम से इस जाति को जीविका का साधन दिखाया जा सकता है, जो कि इनका पैतृक व्यवसाय रहा है तथा मछली पालन को विकसित किया जा सकता है। अतः नदी तालाबों व जलाशयों का प्रदेश शासन नीलामी द्वारा पैसे वाले ठेकेदारों को न देकर सहकारिता के माध्यम से इस जाति की सहकारी समितियों को औसत लगान पर पट्टे दे सकती है, जिससे वे अपनी कला से इस व्यवसाय को और आगे बढ़ा सकते हैं तथा बाहर प्रांतों में भेजकर मुनाफा कमा सकते हैं।

6. **मजदूर तथा अन्य वर्गों के लिए उपायः–** भारतीय समाज व्यवस्था में पेशे जाति के आधार रहे हैं। अतः शारीरिक श्रम का काम पिछड़े वर्ग का रहा है। ग्रामीण कुटर उद्योग धन्धों के विनाश के बाद तथा जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि पर निर्भरता बढ़ी। अतः पिछड़े वर्ग का बहुत बड़ा समुदाय अपना श्रम बेचने यानी मजदूरी पर आश्रित हो गया है। शहरों में मजदूरी की दरें ठीक है तथा कल कारखानों व प्रतिष्ठानों में मजदूरी अच्छी मिलती है, लेकिन ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में मजदूरी बहुत कम दी जाती है। वे बहुधा भूमि पतियों के शोषण के शिकार रहते हैं। इससे उनकी दशा सुधारने का काम किया जा सकता है। ग्रामों में आवागमन के साधन बढ़ाने से भी बच्चे माल की निकासी तथा बिक्री के लिए रास्ते खुलेंगे तथा आमदनी के साधनों की बढ़ोत्तरी होगी। इन्हें मनरेगा के द्वारा रोजगार प्रदान करने उपाय तलाशना होगा।

अन्त में पिछड़े वर्ग के आर्थिक विकास हेतु निम्न सुझाव दिए जा सकते हैं।

1. पिछड़ा वर्ग उत्थान निगम का गठन जिससे वह पिछड़े वर्ग के मृत प्रायः ग्रामीण धन्धों को पनपा सके तथा पिछड़े वर्ग के आर्थिक उत्थान का अभियान प्रारम्भ करें।
2. पिछड़े वर्ग के लोगों को सरकारी सेवाओं में उचित प्रतिनिधित्व दिया जावें अर्थात् 35 प्रतिशत आरक्षण दिया जावे।
3. पिछड़े वर्ग के लोगों को जातीय धन्धे करने हेतु सहकारी समितियाँ गठित कर प्रोत्साहित किया जावे तथा सहकारिता से उनके सामाजिक उन्नति को जोड़ा जावें।

शोध निष्कर्षः–

प्रजातांत्रिक व्यवस्था में लोकसभा, विधानसभा तथा जिला व ब्लाक स्तर हर प्रकार के प्रशासन में सब वर्गो का उचित प्रतिनिधित्व अवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। पिछड़े वर्गो का शासन तथा प्रशसन में भागीदारी के बगैर इनका सामाजिक अन्याय समाप्त नहीं होगा न

इनकी शिक्षा सम्बन्धी स्थिति बेहतर होगी और न तब तक इनका आर्थिक शोषण समाप्त होगा। अतः पिछड़े वर्गो को सामाजिक आर्थिक न्याय मिले उनकी दशा बेहतर बने तथा वे भी मानवीय गरिमा को प्राप्त कर सकते इसके लिये उनको सत्ता तथा प्रशासन में भागीदारी आवश्यक एवं अनिवार्य है।

संविधान में राजनैतिक न्याय की बात उसके संकल्प में ही जोड़ दी गयी है लेकिन पिछड़े वर्ग की आबादी के हिसाब से उस विषय में अब तक कोई प्रभावकारी कार्यवाही नहीं की गई।

सारांश में शासन, प्रशासन तथा राजनैतिक जीवन आदि सभी जगहों पर पिछड़ी जातियों का प्रतिनिधित्व प्रायः शून्य है जिसे दूर कर उन्हें भी राष्ट्रीय धारा में भागीदार बनाकर तथा प्रतिनिधित्व देकर सामाजवादी समाज की रचना में अग्रसर हुआ जा सकता है।

''पिछड़े नेताओं की आकांक्षा अमूमन एक प्रदेश की जाति–विशेष के नेता बने रहने से आगे बढ़ ही नहीं पाई, ऐसे नेतृत्व के चलते देश में पिछड़ी जातियों के उभार की क्रांतिकारी संभावनाएँ छीज गई।''

कोई सवा सौ साल पहले स्वामी विवेकानंद ने कहा था, ''भारत शूद्रों का होगा।'' उनका उद्बोधन औपनिवेशिक और सांस्कृतिक गुलामी के खिलाफ भारत में एक नई शक्ति की तलाश से पैदा हुआ था। एक शताब्दी बाद समाजवादी चिंतक किशन पटनायक ने इसी बात को नए अर्थ में दोहराया था। दलित उभार और मंडलीकरण के दौर में किशन जी ने पूंजीवाद और भूमंडलीकरण के प्रतिरोध की शक्ति के रूप में गैर–द्विज समाज को चिन्हित किया था। सामाजिक न्याय की राजनीति आरक्षण व्यवस्था को बचाए रखने की राजनीति में सिमट गई है। देश का यह सबसे बड़ा समुदाय दिशाहीन और अकेला है। ऐसे में हैरानी की बात नहीं कि इनमें से एक बड़ा तबका, खासतौर पर अति पिछड़ी जातियाँ अब नरेन्द्र मोदी की भाजपना में अपना उद्धार खोज रही हैं। इस मरीचिका से बाहर आने और सामाजिक न्याय की सार्थक राजनीति के लिए एक नई शुरूआत करनी होगी। जमींदार, कास्तकार, खेत मजदूर, पशुपालक और कारीगर के तकलीफ को जोड़कर एक नई राजनीति खड़ी करनी होगी। अति पिछड़े, महादलित, पसमांदा मुसलमान और आदिवासियों को जोड़कर परिवर्तन की राजनीति का एक नया गठबंधन तैयार किया जा सकता है। हाल ही में उभरा देशव्यापी किसान विद्रोह इस दिशा में मील का पत्थर साबित हो सकता है और ''भारत शूद्रों का होगा'' की इस उक्ति को नया अर्थ भी दे सकता है।

सन्दर्भ

1. अग्निहोत्री वी0के0 : सोशियो इकोनॉमिक प्रोफाइल ऑफ रूरल इण्डिया– कन्सेप्ट पब्लिलिशंग कम्पनी, न्यु देल्ही 2002
2. हवर्ट एस0 : पोलिटिकिल शोसिलाइजेशन द फ्री प्रेस कोलिनिकल 1959
3. सरर्वान के0 : ट्रेडिसन एण्ड इकोनॉमी इन इण्डियन विपेज, एलाइटउ पब्लिसर बाम्बे 1966
4. टी0एम0 थामस एण्ड फ्रेक आर0 डब्लू : लोकल डेमोक्रेशी एण्ड डेवलपमेन्ट, लेवटवार्ड बुक्स न्यू देल्ही, 2001
5. शंकर आर0 : डेवलपमेंट ऑफ लीडरशिप, कुरुक्षेत्र व्यैलूम 10 नं0 8
6. शाल्वी पी0वी0 : रूरल लोकल लीडरशिप, रूरल इण्डिया व्यैलूम 31 नं0 9
7. पाण्डेय वी0एम0 एण्ड जैन पी0एन0 : रूरल लीडरशिप डिफरेंशियल इमरजिंग पैटर्न कुरुक्षेत्र व्यैलूम 14 नं0 4
8. मजूमदार डी0एन0 : कास्ट एण्ड कम्युनिकेशन इन एन इण्डियन विलेज, बाम्बे पब्लिकेशन हाउस बाम्बे
9. श्रीवास्तव, एस0के0 : डारेक्ट शोसल चेन्ज एण्ड रूरल लीडरशिप इन इण्डिया इन इमरजिंग पैटर्न ऑफ रूरल लीडरशिप इन साउदर्न एशिया, ऑक्सफोर्ड युनीवर्सिटी पब्लिशिंग कम्पनी
10. एडवार्ड एण्ड हैपर : पोलिटिकिल आर्गेनाइजेशन एण्ड लीडरशिप, ऑक्सफोर्ड पब्लिशिंग कम्पनी

स्वामी विवेकानन्द के अध्यात्मिक चिन्तन का अनुशीलन

(शोधार्थिनी– सुषमा यादव, शोध निर्देशक– एसो0प्रो0 अखिलेश चन्द, शिक्षक–प्रशिक्षण विभाग, श्री गाँधी पी0जी0 कॉलेज मालटारी, आजमगढ़)

भूमिका :

शिक्षा विचारकों ने सामाजिक चिन्तन एकता, समानता एवं भाईचारे के न्याय पर बल केन्द्रित किया था। उनका आर्थिक चिन्तन धन के विकेन्द्रीकरण, पूँजी एवं श्रम के समान विभाजन तथा पूँजीवाद के स्थान पर मानवतावाद के प्रति उन्मुख, राजनैतिक चिन्तन, सत्ता के विकेन्द्रीकरण, सर्वोत्तम शक्तियों को जनता में निहित करने, जनप्रतिनिधियों में जन सेवा का भाव होने तथा राष्ट्रीय एकीकरण को बढ़ावा देने वाला तथा उनका अध्यात्मिक चिन्तन सभी को शिक्षित, संस्कारित एवं संगठित बनाने पर आधारित था। उनके इस चिन्तन का व्यापक प्रभाव भारतीय जन मानस के साथ–साथ तत्कालीन प्रबुद्ध राजनेताओं एवं शिक्षाविदों एवं अर्थशास्त्रियों पर पड़ा। स्वामी विवेकानन्द का जीवन लक्ष्य भारत को अखण्ड, अतुल्य और राजनैतिक दृष्टि से मजबूत, सामाजिक दृष्टि से सम्पन्न एवं समृद्ध तथा आर्थिक दृष्टि से विकसित देशों की श्रेणी में लाने का था। वहीं स्वामी विवेकानन्द एक महान राष्ट्रवादी चिन्तक, शिक्षा मनीषी, मानवतावादी विचारक, कर्मयोगी और भारतीय एकता एवं अखण्डता के पोषक थे। उनके अन्दर भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं जीवनदर्शन का आदिम व्यवस्थित स्वरूप विद्यमान था उन्होंने इसी के आाार पर वर्तमान व्यवस्थाओं को तदनुरूप तथा व्यावहारिकतापरक रूप में व्यवस्थित किये जाने का पक्ष लिया।

का मानना था कि राष्ट्र की प्रगति एवं सर्वतोन्मुखी विकास समाज के समृद्धिशाली विकास एवं सामाजिक एकीकरण एवं भाईचारे से ही सम्भव है। समाज का सर्वांगीण विकास शिक्षा के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। इसलिए समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार को सक्षम, सुसंस्कृत एवं समृद्धिशाली बनाने हेतु पुरुषों के समान महिलाओं को भी शिक्षित किये जाने का पक्ष स्वामी विवेकानन्द द्वारा लिया गया। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति, परिवार, समाज तथा राष्ट्रीय प्रगति का सोपानीकृत ढाँचा विकसित करने तथा शिक्षा द्वारा समाज के पिछड़े, वंचित, दलित, शोषित एवं निर्धन वर्ग के उत्थान व उनके शारीरिक, मानसिक, नैतिक

एवं चारित्रिक गुणों का विकास करने का पक्ष स्वामी विवेकानन्द ने लिया। शिक्षा के स्वरूप को उन्होंने किताबी ज्ञान तक सीमित न मानकर आनुभविक एवं जीवन कल्याण के मानदण्ड पर केन्द्रित माना। का स्पष्ट मानना था कि शिक्षा की संरचना एवं उसका ढाँचागत विकास भारत की संस्कृति एवं अस्मिता के अनुरूप होना चाहिए। इसमें वैयक्तिक गुणों के साथ–साथ राष्ट्रीयता का भाव विकसित करने की क्षमता होनी चाहिए। शिक्षा की तत्कालीन शिक्षा प्रणाली मैकाले की बाबूगीरी की शिक्षा, अंग्रेजी कल्चर का विकास तथा राष्ट्रीय मूल्यों की अवहेलना करने वाली थी इसलिए जी ने इसमें आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने इस परिवर्तन से विकृति की ओर बढ़ रही सामाजिक व्यवस्था को विकास के साथ निर्माणात्मक, संरचना की ओर अग्रसर करने हेतु शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर अपने अभिमत व्यक्त किए। उन्होंने शिक्षा के औपचारिक, अनौपचारिक एवं निरौपचारिक माध्यमों से समाज में उन्नति गतिशीलता एवं परिवर्तन के साथ–साथ पुरुषार्थ, संस्कार एवं मूल्यपरक व्यवस्था स्थापित करने को महत्व प्रदान किया। स्वामी विवेकानन्द ने किसी व्यवस्थित अध्यात्मिक व्यवस्था का स्वरू पतो प्रस्तुत नहीं किया किन्तु शिक्षा के सभी आयामों पर अपना व्यवस्थित चिन्तन अवश्य प्रदान किया। उनके अध्यात्मिक विचार शिक्षा के सम्प्रत्यय से लेकर शिक्षा के सभी पक्षों पर गम्भीरता से व्यक्त किये गये है। स्वामी विवेकानन्द के अध्यात्मिक विचारों को वर्तमान शिक्षा प्रणाली के लिए अत्यन्त सार्थक एवं उपयोगी माना जा सकता है। के अध्यात्मिक चिन्तन को नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति के लिए मार्गदर्शक एवं उपयोगी माना गया है। उनके चिन्तन के कई बिन्दुओं को नयी शिक्षा नीति–2020 में शामिल किया गया है। स्वामी विवेकानन्द की अध्यात्मिक विचारधारा वर्तमान शिक्षा में निम्नलिखित रूपों में उपयोगी है।

स्वामी विवेकानन्द अध्यात्मिक चिन्तन :

स्वामी विवेकानन्द का अध्यात्मिक चिन्तन गाँधीजी की बुनियादी शिक्षा प्रणाली से प्रभावित था। गाँधी जी का मानना था कि शिक्षा व्यक्ति के शरीर, आत्मा और मन का सर्वांगीण और सर्वश्रेष्ठ विकास करती है। इससे व्यक्ति में दक्षता आती है और उसके हुनर का विकास होता है। स्वामी विवेकानन्द भी अपने अध्यात्मिक चिन्तन में मनुष्य के जीवन के सभी पक्षों में सक्रियता लाना चाहते हैं। उनके अनुसार शिक्षा व्यक्ति के

शारीरिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक गुणों के विकास में सहायक होनी चाहिए। शिक्षा में ऐसी शक्ति होनी चाहिए जो समाज में बदलाव ला सके। शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिसमें धर्म, जाति, लिंग व वर्ग विभेद से परे एक समदर्शी, समतामूलक एवं समन्वयकारी समाज के निर्माण का गुण विद्यमान है। स्वामी विवेकानन्द ने तत्कालीन शिक्षा के सम्बन्ध में कहा कि ज्ञान का हर विस्तार हमें अज्ञान के विस्तार की ओर ले जा रहा है। एक परमाणु भौतिक विज्ञानी बहुत सम्भव है नक्षत्र विज्ञान में अज्ञानी ही रहे विशेषज्ञ होना तो दूर। इससे बड़ी समस्या खड़ी हो जाती है। आधुनिक सभ्यता के पुनर्जीवन व नये मानव के निर्माण के लिए आवश्यक है कि आदमी छद्म विरोधाभासों से मुक्ति पाये और नयी सभ्यता में मनुष्य के आन्तरिक और बाह्य व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास हो। अर्थात् मनुष्य का केवल भौतिक विकास न हो जो वर्तमान में हो रहा है और न केवल आध्यात्मिक विकास ही हो जैसा प्राचीन भारतीय सभ्यता में होता था। इसलिए इन दोनों सभ्यताओं में समन्वय स्थापित करने वाली शिक्षा प्रणाली का विकास होना चाहिए।

स्वामी जी के अनुसार शिक्षा में शारीरिक दक्षता के साथ–साथ नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक गुणों के विकास की क्षमता होनी चाहिए। शिक्षा द्वारा समाज में एक नयी चेतना और संस्कृति को प्रतिस्थापित करना का प्रमुख लक्ष्य था। शिक्षा का स्वरूप ऐसा हो जिसमें देश की एकता, अखण्डता के साथ–साथ समानता, उदारता और विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास करने की क्षमता हो तथा प्रत्येक व्यक्ति को उद्यमी, स्वावलम्बी तथा सक्षम बनाने की क्षमता हो। स्वामी विवेकानन्द द्वारा शिक्षा और जागरूकता के द्वारा एक ऐसे समाज की संरचना करना चाहते थे जो समानता के न्याय पर विकसित हो तथा जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अभिव्यक्ति और व्यक्तित्व विकास का पूर्ण अवसर उपलब्ध हो सके। का मानना था कि शिक्षा के द्वारा व्यक्ति को चरित्रवान, क्षमतावान और आत्म निर्भर बनाया जा सकता है। व्यक्ति जन्म से नहीं बल्कि गुणों से श्रेष्ठ बनता है और एक श्रेष्ठ गुणों का विकास सच्ची शिक्षा से ही सम्भव हो सकती है। शिक्षा से जीवन में गतिशीलता, अभिव्यक्ति में सरलता और आचरण में पवित्रता आती है ऐसा का विचार था कि धार्मिकता और धर्मान्धता के अन्तर की समझ शिक्षा द्वारा ही सम्भव माना है।

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने मनुष्य को प्रगति और मनवता का बोध कराने, समाज में समतामूलक समाज की स्थापना करने, राजनैतिक सत्ता को गाँव, क्षेत्र, जिला, प्रदेश और राष्ट्रीय स्तर तक विकेन्द्रित करने तथा देश में मजबूत लोकतन्त्र की स्थापना के लिए शिक्षा की अनिवार्यता पर बल दिया। स्वामी विवेकानन्द अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा, सभी के लिए समान अवसर पर आधारित शिक्षा तथा सभी के लिए उपयोगी और स्वावलम्बी बनाने वाली शिक्षा को लागू किये जाने पर बल दिया। उनके अनुसार शिक्षा वह है जो संस्कार पैदा करे, सहकार पैदा करे, स्वावलम्बन प्रदान करे और समभाव विकसित करे। स्वामी विवेकानन्द का यह मानना था कि एक शिक्षित व्यक्ति एक गैर पढ़े लिखे व्यक्ति की अपेक्षा अधिक सरलता से परिस्थितियों का आकलन व नियन्त्रण कर लेता है तकनीकी पक्षों को सरलता से समझ लेता है तथा कम श्रम में अधिक उत्पादन की दक्षता रखता है। स्वामी विवेकानन्द शिक्षा को आर्थिक दृष्टि से एक निवेश के रूप में मानते है उनके अनुसार शिक्षा प्राप्त करने वाला उत्पाद शिक्षा प्राप्त न करने वाले से शिक्षा पर किये गये व्यय से अधिक लाभांश प्रदान करता है क्योंकि इसकी गुणवत्ता, कार्यशीलता और उत्पादकता काफी अधिक होती है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली लोहिया के इसी दृष्टिकोण को महत्व प्रदान करती है।

वहीं मानववादी चिन्तक एवं राजनेता के साथ–साथ समाज में राष्ट्रीय संचेतना के प्रचारक भी थे। वे शिक्षा को राष्ट्रीय प्रगति और नव निर्माण का साधन मानते थे। उनके अनुसार शिक्षा राष्ट्र की प्रगति की सूचक मानी जाती है यह समाज की आवश्यकताओं और राष्ट्रीय अपेक्षाओं के अनुरूप नागरिकों का निर्माण करती है। शिक्षा प्राप्त कर व्यक्ति भारतीय संविधान में निहित अधिकारों और मौलिक कर्तव्यों का समुचित ज्ञान प्राप्त कर सकता है। शिक्षा से ही व्यक्ति एक सशक्त लोकतन्त्र और जबावदेह सरकार की संरचना में अपना योगदान दे सकता है। शिक्षा व्यक्ति को राष्ट्रीय सांस्कृतिक मूल्यों का संज्ञान, राष्ट्रवाद की भावना एवं राष्ट्रीय प्रगति हेतु मिलकर कार्य करने की भावना का विकास करती है। राजनीति में शिक्षित लोगों की भूमिका को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है।

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द और दोनों विचारकों ने शिक्षा को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा वैयक्तिक विकास का प्रमुख साधन मानते है। शिक्षा को उन्होंने एक ऐसा अभिकरण माना जिससे ज्ञान स्रोत के साथ कार्य दक्षता का विकास होता है। स्वामी

विवेकानन्द और एक समन्वयकारी अध्यात्मिक प्रक्रिया के पक्षधर हैं जो व्यक्ति और समाज का परिमार्जन और परिवर्तन करने में सक्षम हो। उन्होंने शिक्षा को शारीरिक, मानसिक और नैतिक गुणों का विकास करने का प्रमुख कारक माना है तथा इसी आधार पर अपने एकात्म मानवतावाद की आधारभूत संकल्पना को फलीभूत करने की मंशा व्यक्त की है।

स्वामी विवेकानन्द ने जहाँ शिक्षा को समाज का दर्पण माना वहीं ने इसे समाज का पोषण एवं समुन्नत बनाने का सर्वोत्तम साधन बताया। उनके अनुसार ‘‘बच्चों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना प्रत्येक समाज के लिए आवश्यक एवं उपयोगी होता है क्योंकि जन्म के समय बालक केवल एक जैविक प्राणी होता है शिक्षा एवं पारिवारिक संस्कारों के द्वारा वह सामाजिक प्राणी के रूप में विकसित होता है।

स्वामी विवेकानन्द का विचार था कि मनुष्य की मौलिक आवश्यकताएँ जैसे–जैसे कपड़ा और मकान की भाँति उसकी आध्यात्मिक आवश्यकताएँ भी होती है जिसमें उसके जीवन मूल्य संस्कार, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन आदि भी अत्यन्त आवश्यक होती है जिनकी प्राप्ति शिक्षा एवं परिवार एवं समाज के अनौपचारिक माध्यमों से होती है। उनके अनुरूप मनुष्य होने के कारण भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करना व्यक्ति का प्राथमिक दायित्व होता है किन्तु समाज के प्रति कर्तव्यों का पालन, सामाजिक मूल्यों के विकास एवं सामाजिक दायित्व के निर्वाह में सक्षम बनाना भी शिक्षा का ही दायित्व होता है।

शिक्षा के द्वारा मानवीय गुणों एवं दक्षताओं के विकास का पक्ष लेते हैं। उनके अनुसार शिक्षा के द्वारा व्यक्ति के वैयक्तिक गुणों, परिवार के पीढ़ीगत विशेषताओं तथा समाज की रीतियों, कार्य प्रणालियों, मान्यताओं एवं आदर्शो का संरक्षण, संवर्धन एवं हस्तान्तरण होता रहता है। यदि शिक्षा व्यवस्था नहीं हो तो समाज की ये सभी विशेषताएँ भी व्यवस्थित नहीं रह सकती है तथा समाज का अस्तित्व भी खतरे में पड़ सकता है। सामाजिक व्यवस्था एवं उसकी प्रणाली शिक्षा के कारण ही गतिशील होकर आगे बढ़ती है। शिक्षा द्वारा ही व्यक्ति अपने अध्ययन एवं अनुभव से प्राप्त ज्ञान को अपने आगे की पीढ़ी को हस्तान्तरित करता है जिससे ज्ञान की यह अनन्त धारा निरन्तर प्रवाहमान बनी रहती

है। इस सतत् गतिमान प्रक्रिया से समाज की व्यवस्था आगे बढ़ती रहती है। यदि शिक्षा की यह अनवरत प्रक्रिया हो तो सम्पूर्ण समाज व्यवस्था अस्तित्व विहीन एवं निष्क्रिय हो जायेगी। पं0 दीनदयाल जी का दृढ़ विश्वास था कि शिक्षा और संस्कार से ही समाज के मूल्य एवं संस्कार बनते और सुदृढ़ होते हैं।

स्वामी विवेकानन्द के इस चिन्तन को पं0 मदनमोहन मालवीय ने भी शिक्षा को भावी समाज के विकास का सर्वोत्तम माध्यम बताया। उनके अनुसार– सत्य, अहिंसा, सदाचार एवं सद्व्यवहार के लिए हमारे पूर्वजों ने विषम परिस्थितियों में भी निरन्तर इन मानदण्डों को संरक्षित एवं सवंर्धित किया तथा अपनी अखण्ड संस्कृति एवं अध्यात्म को जीवित रखा वह अतुल्य सम्पत्ति आज भी हमारे लिए अद्भुद एवं अनुकरणीय है। सभी को इस धरोहर को अपनी भावी पीढ़ी को प्रदान करने का सतत प्रयास करते रहना चाहिए। यथा– नीतिशतक में भी कहा गया है–

माता शत्रु, पिता वैरी येन बालो न पठिता।
न शोभते सभा मध्ये, हंस मध्ये बलो यथा।।

जी ने स्वयं स्वामी विवेकानन्द के 'सत्यार्थ प्रकाश' के उस चिन्तन को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जिसमें उन्होंने लिखा कि– बच्चे को शिक्षा एवं संस्कार प्रदान करना माता–पिता, आचार्य एवं समाज का परमदायित्व होता है क्योंकि इससे वह सांसारिक समस्याओं का निराकरण करते हुए संसार को एक नया आलोक प्रदान करता है जिससे उसे परमानन्द की प्राप्ति होती है। स्वामी जी का विचार है कि– ''सन्तानों को उत्तम विद्या शिक्षा गुण कर्म और स्वभाव रूप आभूषणों को धारण कराना माता–पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने, चाँदी, मणिक मोती, मूंगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण करने से केवल देहाभिमान प्रदर्शित होता है मनुष्य का आत्मा सुशोभित कभी नहीं हो सकती।'' ''जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता है सुन्दर शील स्वभाव युक्त सत्य भाषण आदि नियम पालन युक्त और जो अभिमान अपवित्रता से रहित अन्य मलीनता के नाशक सत्योपदेश विद्यमान से संसारी जनों के दुःखों के दूर करने से सुशोभित वेदविहित कर्मो से पराये उपकार करने में रहते हैं वे नर और नारी धन्य हैं। इसलिए सभी लड़की और लड़कों को शाला में भेज दें।''

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः स्वामी विवेकानन्द व दोनों विचारकों ने शिक्षा को समाज की प्रथम आवश्यकता माना है क्योंकि शिक्षा किसी समाज के लिए व्यक्ति का एक ऋण की तरह है जिसे चुकाना प्रत्येक व्यक्ति का नैतिक दायित्व है। जब हम अगली पीढ़ी के लिए शिक्षा की व्यवस्था करते हैं तो यह हमारा उनपर कोई उपकार नहीं बल्कि हमें अपने पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान, अनुभव एवं संस्कारों को नवीनतम आवश्यकताओं, अपेक्षा एवं उपलब्धताओं के अनुरूप हस्तान्तरित करने की एक उपयोगी प्रक्रिया है। शिक्षा के द्वारा समाज में भाईचारे, समानता एवं मानवता का गुण विकसित किया जा सकता है तथा लोगों में परस्पर प्रेम, सदाचार एवं राष्ट्रीयता की भावना का किया जाना सम्भव है। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द और जी तत्कालीन समाज में प्रासांगिक थे और वर्तमान में भी हैं। आप दोनों का अध्यात्मिक चिन्तन समग्रतावादी, मानवतावादी एवं राष्ट्रवादी विचारधारा का पोषक एवं समर्थन करता है। आप दोनों के अध्यात्मिक चिन्तन की वर्तमान भारतीय परिदृश्य में विशेष ग्रहणीयता एवं उपादेयता है।

सन्दर्भ

1. पाण्डेय, रामशकल (2019) : विश्व के सर्वश्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा.
2. स्वामी विवेकानन्द (1945) : शिक्षा, श्रीराम कृष्ण आश्रम, नागपुर.
3. (1948) : कुछ स्मृतियाँ एवं विचार, ज्ञान मण्डल प्रकाशन, वाराणसी.
4. डॉ0 सम्पूर्णनन्द (1952) : चरित्र चर्चा जीवनदर्शन, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी.
5. शर्मा, रामनाथ (2010) : स्वामी विवेकानन्द के विचार में राष्ट्र के विकास में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की भूमिका.
6. पाण्डेय, रामशकल (2010) : उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, चतुर्थ संस्करण.
7. सूचना विभाग, उ0प्र0 सरकार लखनऊ.

भारत में मूल्यपरक शिक्षा का मानव जीवन की उपयोगिता पर प्रभाव

(डॉ0 धर्मेन्द्र कुमार वैश्य, असि0 प्रोफेसर, शिक्षक–शिक्षा एवं अनुसंधान विभाग आर0आर0पी0जी0 कालेज, अमेठी)

सारांश

मूल्य शिक्षा हमारे अंदर नैतिक मूल्यों का विकास करती है। ये सीखने के साथ –साथ हमारे व्यक्तित्व में भी विकास करती हैं। अमेरिकी मनोवैज्ञानिक लॉरेंस कोहलबर्ग का मानना था कि बच्चों को एक ऐसे माहौल में रहने की जरूरत है जो दिन–प्रतिदिन के संघर्षों की खुली और सार्वजनिक चर्चा के लिए अनुमति देता है। Importance of Value Education हमारे **पर्सनालिटी डेवलपमेंट** में सहायक है तथा **विद्यार्थी** के गुणों में विकास करता है। यह हमारे जीवन में अनुषासन के महत्व को भी बताता है।

अतः मूल्य आधारित शिक्षा किसी भी समाज एवं राष्ट्र को किसी भी प्रकार की बुराई, हिंसा, भ्रष्टाचार तथा उत्पीड़न के खिलाफ आधार प्रदान करती है। किसी भी सभ्य समाज के लिए शिक्षा प्राण है तथा जीवन मूल्य उसकी आत्मा, मूल्यों का सम्बन्ध जीवन के दृष्टिकोण से है। आज के जीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण मूल्य व होते हैं जो सत्यम्, षिवम् एवं सुरन्दम् के ओत–प्रोत् होते हैं।

मुख्य शब्दः मूल्य, शिक्षा, समाज, जीवन, व्यवहार, षिक्षक, मानवतावादी, सद्भावना तकनीकि आदि।

प्रस्तावनाः

मूल्यपरक शिक्षा की अवधारणा अपेक्षाकृत आधुनिक तथा व्यापक है यह छात्रों में सहयोग, प्रेम तथा करुणा, शांति और अहिंसा, साहस, समानता, बन्धुत्व, श्रम– गरिमा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं विभेदीकरण की शक्ति आदि मौलिक गुणों का विकास करती है। भारत अपनी कला, संस्कृत एवं दर्षन आदि की गौरवषाली परम्पराओं पर हमेषा गर्व करता रहा है। मूल्य षिक्षा हमारे अन्दर नैतिक मूल्यों का विकास करती है। ये सीखने के साथ–साथ हमारे व्यक्तित्व में भी विकास करती है। किसी भी सभ्य समाज के लिए षिक्षा एवं मूल्य दोनों आवष्यक है। मूल्यपरक षिक्षा को समाज की आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में क्रियान्वित किया जाना चाहिए। मूल्यपरक षिक्षा के कार्यक्रमों के सफलता, घर, विद्यालय के आदर्ष वातावरण एवं षिक्षक के आधार पर होनी चाहिए।

मूल्य शिक्षा :

मूल्य शिक्षा व्यक्तियों के व्यक्तित्व विकास पर जोर देती है ताकि उनका भविष्य संवर सके और कठिन परिस्थितियों से आसानी से निपटा जा सके। यह बच्चा को ढालता है, ताकि वे अपने सामाजिक, नैतिक और लोकतांत्रिक कर्तव्यों को कुशलता– पूर्वक संभालते हुए बदलते वातावरण से जूड जाएं।

''मूल्य वह है जो मानव इच्छाओं की तुष्टि कर सके।''

मूल्य वे आदर्श विश्वास या प्रतिमा हैं जिनको एक समाज या समाज के अधिकांश सदस्यों ने ग्रहण कर लिया है, जिससे सकारात्मक ऊर्जा का विकास हो रहा है।

- Importance of Value Education शारीरिक और भावनात्मक पहलुओं को विकसित करता है।
- यह आपको ढंग सिखाता है और भाईचारे की भावना विकसित करता है।
- यह देशभक्ति की भावना पैदा करता है।
- Importance of Value Education धार्मिक सहिष्णुता को भी विकसित करता है।

मूल्य शिक्षा के लाभ–

Importance of value Education के फायदे क्या हैं, यह नीचे बताए गए हैं–

- यह जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त करने और सफल होने के लिए आवश्यक किरदारों को विकसित करने में मदद करता है।
- यह आपकी पर्सनालिटी को आकार देता है, आपको जीवन और उसके संघर्षों के प्रति विनम्र और आशावादी नाता है।
- आपको हर स्थिति में सही और सकारात्मक दृष्टिकोण की ओर आकार देता है और आने वाली चुनौतियों और प्रतिस्पर्धा के लिए आपको मजबूत बनाता है।
- यह छात्रों को उनके जीवन के उद्देश्य को जानने में मदद करता है और उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए सही रास्ता चुनने में मदद करता है।
- यह छात्रों को दूसरों के प्रति अधिक जिम्मेदार और समझदार बनाता है। वे मनुष्य के रूप में अपनी जिम्मेदारी निभाते हुए दूसरों की स्थितियों को समझने और उनके प्रति अधिक संवेदनशील बनने में सक्षम होते हैं।
- यह आने वाली चुनौतियों और कम्पटीशन के लिए आपको मजबूत करता है।
- यह करैक्टर का निर्माण करता है जो छात्रों को सफलता और आध्यात्मिक विकास की दिशा में मूल्यांकन करेगा।

21वीं सदी में मूल्यपरक शिक्षा का महत्व और आवष्यकता :

मूल्य शिक्षा का एक अलग अनुशासन के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, लेकिन शिक्षा प्रणाली के अंदर शामिल होना चाहिए। केवल समस्याओं को हल करना उद्देष्य नहीं होना चाहिए, इसके पीछे के स्पष्ट कारण और मकसद के बारे में भी सोचा जाना चाहिए। नीचे 21 वीं सदी में और आवष्यकता को प्रदर्षित करने वाले प्रमुख बिंदु दिए गए हैं–

- मूल्य शिक्षा का महत्व कठिन परिस्थितियों में सही निर्णय लेने में मदद करता है जिससे निर्णय लेने की क्षमता में सुधार होता है।
- उम्र के साथ जिम्मेदारियों की एक विस्तृत श्रृंखला आती है। यह कई बार अर्थहीनता की भावना को विकसित कर सकता है और मानसिक स्वास्थ्य संबंधी विकारों, मध्य–करियर संकट और किसी के जीवन के साथ बढ़ते असंतोष को जन्म दे सकता है। मूल्य शिक्षा का उद्देश्य कुछ हद तक लोगों के जीवन में शून्य भरना है।
- मूल्य शिक्षा का महत्व जिज्ञासा जगाने और मूल्यों और हितों को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह आगे कौशल विकास में मदद करता है।
- इसके अलावा, जब लोग समाज और उनके जीवन में importance of value education का अध्ययन करते हैं, तो वे अपने लक्ष्यों और जुनून के प्रति अधिक उत्साहित और वंधे हुए होते हैं। इससे जागरूकता का विकास होता है जिसके परिणामस्वरूप विचारशील और पूर्ण निर्णय लेते हैं।
- मूल्य शिक्षा का मुख्य महत्व मूल्य शिक्षा के क्रियान्वयन और इसके importance of value education को अलग करने पर प्रकाश डाला गया है। यह 'अर्थ' की भावना को पीछे छोड़ देता है, जो किसी को करना है और इस प्रकार व्यक्तित्व विकास में सहायक है।

<u>मूल्यपरक शिक्षा के उद्देश्य</u>:
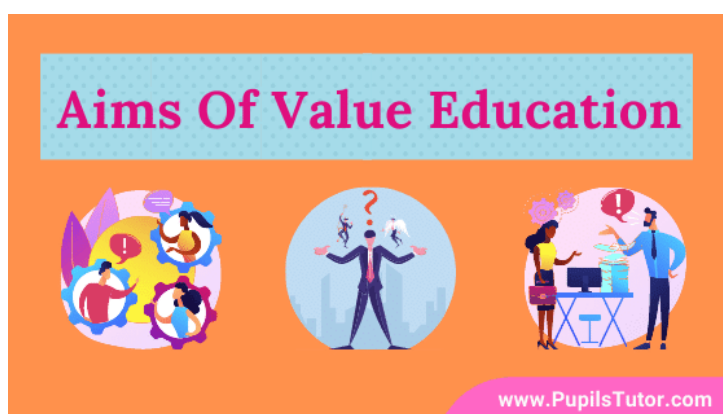
समकालीन दुनिया में, मूल्य शिक्षा का महत्व कई गुना है। हमारे लिए जानना आवश्यक हो जाता है जाता कि मूल्य शिक्षा एक वच्चे की स्कूली यात्रा में शामिल है और उसके बाद भी यह सुनिश्चित करने के लिए कि वे नैतिक मूल्यों के साथ–साथ नैतिकता को भी आत्मसात करें। यहाँ मूल्य शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य दिए गए हैं–

- शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक पहलुओं के संदर्भ में बच्चे के व्यक्तित्व विकास के लिए एक सभी दृष्टिकोण सुनिश्चित करना ।
- देशभक्ति की भावना के साथ–साथ एक अच्छे नागरिक के मूल्यों में वृद्धि ।
- छात्रों को सामाजिक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भाईचारे के महत्व को समझने में मदद करना ।
- अच्छे शिष्टाचार और जिम्मेदारी और सहकारिता का विकास करना ।
- रूढ़िवादी विवरण की ओर जिज्ञासा और जिज्ञासा की भावना को बढ़ावा देना ।
- नैतिक सिद्धांतों के आधार पर ध्वनि निर्णय लेने के तरीके के बारे में छात्रों को सिखाना ।
- सोच और जीने के लोकतांत्रिक तरीके को बढ़ावा देना।
- सहनशीलता और विभिन्न संस्कृतियों और धार्मिक विश्वासों के प्रति सम्मान के महत्व के साथ छात्रों को लागू करना।

मूल्य शिक्षा में शिक्षक की भूमिका:–

माता–पिता के बाद गुरु का को ही सबसे ऊपर माना गया है। गुरु अर्थात शिक्षक उस कुम्हार के समान है जो मिट्टी रूपी विद्यार्थी को एक बरतन का आकार देकर एक योग्य व उपयोगी पात्र वना देता है। गुरू किसी भी छात्र को ऐसी शिक्षा देकर एक बेहतर मनुष्य बना देता है। एक शिक्षक ही विद्यार्थी को समाज के प्रति उसके उत्तरदायित्वों से रुबरु कराता है। एक शिक्षक का सबसे मुख्य काम यह है कि वह अपने विद्यार्थी को वर्तमान और भविष्य को ध्यान में रखकर शिक्षा दे। शिक्षा में परंपरा और नवीनता का मिश्रण होना चाहिये। वे विद्यार्थी को केवल किताबी ज्ञान तक ही सीमित न रखे बल्कि उसे जीवन के व्यवहारिक ज्ञान की भी शिक्षा दे । विद्यार्थी तो एक गीली मिट्टी से समान होता है शिक्षक उसे जैसा ढालेगा वैसा टल जायेगा। यहाँ पर शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है। नैतिक मूल्यों की जो शिक्षा वो विद्यार्थी को देगा उसका प्रभाव विद्यार्थी पर जीवन पर्यत बना रहेगा। यहीं से उसके चरित्र निर्माण की प्रक्रिया आरंभ होगी। अतः नैतिक मूल्यों के उत्थान में शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हमारे जीवन में जीवन मूल्य शिक्षा का बहुत महत्व हा मूल्य शिक्षा के माध्यम से हम व्यक्ति समाज में सकारात्मक मूल्यों के क्षमताओं और अन्य प्रकार के व्यवहार को विकसित करता है जिसमें वह रहता है । मूल्य शिक्षा का अर्थ है, दैनिक जीवन में कौशल, व्यक्तित्व के सभी दौरों को समझना। इसके माध्यम से छात्र जिम्मेदारी, अच्छी या बुरी दिशा में जीवन का महत्व, लोकतांत्रिक तरीके से जीवन यापन, संस्कृति की समझ, महत्वपूर्ण सोच आदि को समझ सकते हैं। मूल्य शिक्षा का मुख्य उद्देश्य अधिक नैतिक और लोकतांत्रिक समाज बनाना है।

मूल्यपरक शिक्षा का मानव जीवन की उपयोगिता पर प्रभाव :–

शिक्षा संपूर्ण जीवन का सार है और शिक्षा की आधारशिला सस्कार और मूल्य होते हैं। संस्कारों से, मूल्यों से व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण एवं परिमार्जन होता है। सुखी एवं सफल जीवन की आधारशिला का निर्माण करने में मूल्यअत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। मूल्य–आधारित शिक्षा का अर्थ छात्रों को नैतिक मूल्यों, धैर्य, ईमानदारी, प्रेम, सद्भावना, दया, करुणा, मानवता, इत्यादि सार्वभौमिक मूल्यों को सिखाना है। मूल्य शिक्षा का संपूर्ण उद्देश्य विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में निहित है। वर्तमान समय में शिक्षा के स्तर में जो गिरावट परिलक्षित हो रही है, उसका बहुत बड़ा कारण है कि हमने शिक्षा का विकास विज्ञान व तकनीकी आधारित शिक्षा पर तथा आर्थिक समृद्धि प्रदान करनेवाली शिक्षा पर किया और उसके सुखद परिणाम आज विश्व के सामने हैं कि संसार की अनेक सॉफ्टवेयर कंपनियों के प्रमुख भारत से शिक्षा ग्रहण कर चुके हैं या भारतीय मूल के हैं। चिंताजनक बात यह है कि हमने शिक्षा की भारतीय अवधारणा 'सा विद्या या विमुक्तये' को नितांत विस्मृत कर दिया है तथा पश्चिम की अवधारणा 'Knowledge is Power' पर पूरा जोर दे दिया, जबकि आवश्यकता है इन दोनों उद्देश्यों में उचित सामंजस्य स्थापित करने की। शिक्षा को मात्र शक्ति या धन प्राप्ति का माध्यम मात्र मानने के कारणधीरे–धीरे यह रोजगारपरक तो हुई, परंतु वास्तविक अर्थों में जीवनोपयोगी न बन पाई। किसी भी समाज या देश की प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि बच्चों में शिक्षा के अतिरिक्त अन्य सभी मानवीय गुण विकसित होने चाहिए, ताकि वे समाज को, देश को अधिक लोकतांत्रिक एवं सामंजस्यपूर्ण बना सकें। किसी भी विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आज के माता–पिता की आकांक्षा मात्र बच्चों को अच्छेग्रेड /अंक तक ही सीमित रहती है, ताकि शिक्षा रूपी निवेश पर अच्छा रिटर्न हासिल हो सके। संस्थान कैसे हों, पाठ्यक्रम क्या हो, सबकुछ पैसे से प्रेरित रहता है। हमें यह समझता होना कि विद्यालय समाज का प्रकाश स्तंभ है। यह पहला पोर्टल है, जहाँ पर बच्चों को इच्छा अनुसार ढाला जा सकता है। मनुष्य अपने परिवेश से जीवंत उदाहरणों से सीखता है। व्यावहारिक, संस्कारयुक्त, गुणवत्तापूर्ण शिक्षाके बिना शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य भटक जाता है। हमें यह समझना है कि शिक्षा मात्र सूत्रों और समीकरणों, किताबी ज्ञान तक सीमित नहीं है, यह व्यावहारिक जीवन जीने की कला होने के साथ–साथ हमारे आत्मिक विकास संबंध रखती है। नैतिकता, विनम्रता और शिष्टाचार, सभी इस शिक्षा के अत्यंत महत्त्वपूर्ण हिस्से हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि माता –पिता के रूप में हमने शिक्षा को मात्र अच्छे अंकों तक सीमित कर दिया है। हम अपने निवेश पर अच्छा रिटर्न प्राप्त करने की दौड़ में यह आकलन करना भूल जाते हैं कि हमारे बच्चों ने नैतिक मूल्यों को सीखा ही नहीं। कई बार मन में सोचता हूँ कि आप किसी बूढ़े व्यक्ति को सड़क पार करने में मदद करेंगे या नहीं, यह बात इस बात पर निर्भर करता है कि आप का नैतिक व्यवहार कैसा है? आपके संस्कार कैसे हैं? आप किसी गरीब से कैसा व्यवहार करते हैं, आप महिलाओं का कितना सम्मान करते हैं? यह

आपकी अंक तालिकाओं पर निर्भर नहीं करता। आज बच्चों के चरित्र में उन शाश्वत मूल्यों को विकसित करने की आवश्यकता है, जिससे वह जीवन की किसी भी चुनौती का मुकाबला कर सके। वैसे भी प्रत्येक पीढ़ी को लोकतांत्रिक सिद्धांतों, मूल्यों, विचारों, अधिकारों और जिम्मेदारियों की अंतर्निहित अवधारणाओं को सीखने और सिखाने की नितांत आवश्यकता है। मूल्य सभी के जीवन में सुधार करने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जोकोई व्यक्ति अपने जीवन में मूल्यों को समझ लेता है, वह अपने जीवन में बनाए गए। विभिन्न विकल्पों की जाँच और नियंत्रण कर सकता है। दुर्भाग्य से औद्योगीकरण, प्रतिस्पर्धा और अस्तित्व की लड़ाई में हन नैतिक मूल्यों के प्रति ढिलाई बरतते रहे हैं। प्रौद्योगिकी, तकनीक, उच्च्य जीवन–शैली का उदय होने जीवन स्तर तो जरूर ऊपर उठ सकता है, भौतिकता से समृद्ध बन सकता है, परंतु स्वार्थ पूर्ति से हम धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक भ्रष्टाचार, शैक्षिक क्षेत्रों में अनेक चुनौतियों का सामना करते हैं। आज के व्यक्तिपरक समाज में पारिवारिक मूल्यों का विघटन होता जा रहा है, जिस कारण युवाओं में अकेलापन, अवसाद, भटकाव इत्यादि बढ़ता जा रहा है।

निष्कर्ष :–

इस तथ्य की ओर ध्यान देना आवश्यक है कि बालकों को मात्र धनार्जन–यंत्र (Money Making Machine) बनाने की तरफ ध्यान न देकर उनमें उदात्त सकारात्मक सामाजिक मूल्य विकसित किए जाने चाहिए, क्योंकि यह प्रायः देखा गया है कि मूल्यों की कमी के कारण किशोर अपराधी बन रहे हैं। मूल्यों के अभाव के कारण पारिवारिक अव्यवस्था ने उन्हें भटका दिया है। वे ड्रग एडिक्ट बन जाते हैं या फिर शराब का सेवन करते हैं, जुआ खेलते हैं और असामाजिक गतिविधियों में लग जाते हैं। एक विकासोन्मुखी, शांतिपूर्ण समाज के लिए समूचा परिदृश्य बदलना होगा। इसमें हमारे विद्यालयों एवं शिक्षकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षक भविष्य की पीढ़ी को आकार देते हैं। एक शिक्षक के रूप में हमारी जिम्मेदारी है कि हम बच्चों के भीतर मूल्यों को रोपित करें। अनैतिक कार्यों का पालन करके अनुचित तरीकों से इच्छाओं की पूर्तिकरना युवा पीढ़ी की आदत में शुमार हो चुका है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में मूल्यपरक शिक्षा को महत्त्व देना अत्यंत आवश्यक है, ताकि आनेवाली पीढ़ियाँ संस्कारित हो सकें। यह हमारा सौभाग्य है कि 34 साल बाद भारत में आई नई राष्ट्रीय शिक्षानीति में भी हम मानवतावादी मूल्यों का समावेश करने हेतु कटिबद्ध हैं, जिससे कि भविष्य का भारत एक सुखी, संपन्न व मानव मात्र के लिए कल्याणकारी जीवन की अवधारणा के लक्ष्यों को पूरा करने हेतु अग्रसर हो तथा संपूर्ण विश्व में शांति, प्रेम व भाईचारे की स्थापना हेतु हम ध्वजवाहक बन सकें। वैसे भी भारतीय शिक्षा परंपरा में मूल्यपरक शिक्षा का अत्यंत महत्त्व है। मानवीय मूल्यशाश्वत तथा सार्वकालिक सत्य हैं। यह मात्र भारत ही नहीं, वरन् विश्व के हर कोने में प्रासंगिक हैं। भारतीय शिक्षा पद्यपि प्राचीनकाल से ही सत्यं शिवं सुन्दरम्' व 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसे शाश्वत एवं सार्वभौमिक मूल्यों पर आधारित रही है। इसमें संपूर्ण भूमंडल को एक

परिवार मानते हुए समष्टि के लिए कल्याणकारी, शुभ आचरण पर जोर दिया जाता रहा है। जीवन–मूल्यों के बारे में अपने केवल गुणवत्तापरक एवं मूल्यपरक शिक्षा द्वारा किसी भी राष्ट्र समाज के सामाजिक आर्थिक जीवन में नए युग का सूत्रपात में किया जा सकता है। तेजी से बदलते वैश्विक परिवेश में पहले की अपेक्षा मूल्य आधारित शिक्षा का महत्त्वकाफी बढ़ गया है। विश्व में शांति, समृद्धि और विकास के लिए शिक्षा में मूल्यों का समावेश आवश्यक है, आशा की जानी चाहिए कि यह नई शुरुआत भारत से शुरू होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. मैनी, डी०. (2005): ''मानव मूल्य–परक शब्दावली का विष्वकोष,," '' खण्ड (पंचम), प्रकाशक कुमार शर्मा द्वारा सरूप एण्ड सन्स, नई दिल्ली।
2. पाण्डेय आर., (2000): ''मूल्य शिक्षा के परिपेक्ष्य'', आर. लाल बुक डिपो मेरठ,।
3. पेरी एवं सक्सेना, एन. आर. स्वरूप, (2005) : ''शिक्षा के सिद्धान्त, आर. लाल. बुक डिपो मेरठ।
4. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, सारांश (2000), नई दिल्ली, एन.सी.ई.आर.टी.।
5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986): ''मानव संसाधन विकास मंन्त्रालय, भारत सरकार (शिक्षा विभाग), नई दिल्ली।
6. सक्सेना, सरोज, (2000): ''शिक्षा के दार्शनिक एव समाज शास्त्रीय आधार'', साहित्य प्रकाशन आगरा लव–257।
7. शर्मा, एस.एस, शर्मा, अन्जना, (2011): ''शिक्षा के दार्शनिक एव समाजशास्त्रीय आधार, ''एच, पी, भार्गव बुक हाऊस 4 / 230 कचेहरी घाट आगरा।
8. सिंह. आर. पी., (1997): ''ए स्टडी आफ वैल्यूज आफ अरबन एंड रूरल एडोलसेंट स्टूडेंट'', इडियन एजूकेशन अब्स्ट्रेक्स,, अंक–2, जनवरी 1997।
9. मूल्यों की षिक्षा, षिक्षक हस्त–पुस्तिका, राज्य षिक्षा संस्थान, मध्य प्रदेष भोपाल।

मानव मूल्य में निहित भारतीय धर्म, दर्शन एवं संस्कृति की व्याख्या

(श्री केशव चन्द्र श्रीवास्तव, रांची विश्वविद्यालय, रांची, झारखण्ड)

सर्वप्रथम मूल्य का अर्थ समझें। अर्थशास्त्र के अनुसार मूल्य क्रय शक्ति का प्रतीक है किंतु मानव जीवन के संदर्भ में यह कसौटी या मानदंड है, जो मानव जीवन को जीने योग्य बनाता है, उसे मर्यादित करता है और उसकी सीमा तय करता है। यह मूल्य ही है जो जीवन को सार्थक बनाता है, मानव को मानव बनाता है, उसके अंदर के दानव को समाप्त करता है। मनुष्य इसलिए श्रेष्ठतम है कि हर काल में हर परिस्थिति में उसके समक्ष जीवन के कुछ आधारभूत मूल्य रहतें है, जो शाश्चत निरपेक्ष तथा नैतिकता से पूर्ण होते हैं। वस्तुतः इन मूल्यों के आधार ही, सभी को सभ्यता पूर्ण जीवन की ओर अग्रसर कर जीने के लिए बनया गया है। दरसल मानव का जीवन ही मूल्यों की यात्रा है। मानव केवल इसलिए मानव है क्योंकि वह अपने जीवन से भी बड़े मूल्यों का श्रष्टा, शोधक तथा अनुसरण करने वाला होता है। वर्तमान समाज व विश्व की जो समस्याएँ हैं वह मूल्यों के क्षरण को ही दर्शाता हैं।

मूल्य युगीन परिवेश के साथ विकसित तथा गतिशील होते रहते हैं परन्तु कुछ मूल्य शाश्वत व युगयुगीन भी होते हैं, जिनके क्षरण से अस्तित्व का संकट उत्पन्न होने लगता है। ऐसे ही कई शाश्वत मूल्य भारतीय धर्म, दर्शन एवं संस्कृति में देखने को मिलते है। दरसल भारतीय धर्म एवं दर्शन एक महान संस्कृति का अधिष्ठाता है, जिसने समय और काल के प्रवाह में भी स्वयं को निरंतरता के साथ प्रासंगिक बनाएँ रखा है जबकि अन्य कई सभ्यता व संस्कृति काल कवलित हो चुकी हैं। वस्तुतः जिन मानव मूल्यों की स्थापना के द्वारा इसने विश्व को प्रकाशित किया है वही इसके प्रसांगिकता का कारण है मसलन, प्रमोत्कर्ष, न्यायप्रियता, प्रकृतिप्रेम, से विनम्रता, शिष्टता, एकता, अखंडता आदि जैसे मानव मूल्यों की स्थापना कर विश्वबंधुत्व एवं लोक कल्याण जैसे सार्वभौमिकता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है और अपे पराभव के दिनों में भी अपने उदात्त विचारों एवं विश्वासों से क्रूर एवं बर्बर जातियों को भी सभ्य बना दिया है।

भारतीय संस्कृति को इतिहास अत्यंत प्राचीन एवं गौरवशाली रहा है। इसने सभ्यता के अति प्राचीन काल से ही विश्व में अतीव आदरपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। ऋग्वेद में स्पष्टतः कहा गया है कि 'सा संस्कृतिः प्रथिमा विश्ववारा' अर्थात आदि संस्कृति विश्ववार अथवा विश्व के कल्याण के लिए थी।

आज समाज एवं विश्व जिन समस्याओं एवं संकटो से घिरा है यथा ग्लोबल वार्मिंग, आतंकवाद, साम्प्रदायिकता, बढ़ते प्रदूषण एवं उत्पन्न दुःसाध्य रोग भ्रष्टाचार, घूसखोरी, संवेदनहीनता, चरित्रहीनता आदि सभी समस्याएँ मात्र मानव मूल्य के क्षरण एवं बढ़ती भौतिकवादी प्रकृति की ही देन है। मानवतावादी दृष्टि प्रायः बंद सी हो गयी है। स्वार्थपरता एवं भौतिक सुखों का मानव की आत्मा को कैद कर लिया है, जिसका मुक्ति असंभव सी हो गई है। शिक्षा व्यवस्था में नैतिकता और मानव मूल्यों के प्राप्ति के साधनों का सर्वप्रथम आभाव हो गया है। अपने मूल्यों से दूर होता मानव आज प्रकृति एवं स्वयं के विनाश की ओर बढ़ रहा है।

भारतीय धर्म, दर्शन एवं संस्कृति ऐसी तमाम समस्याओं की नैदानिक रही है। वह हमारे अंदर मानव मूल्य की स्थापना करती हुई प्रकृति के साथ तादात्मय स्थापित करना सिखलाती है तथा स्वस्थ्य चिंतन को प्रेरित करती है। भारतीय दर्शन में नाना युक्तियों के बहाने सत् और असत् के स्वरूप का विवेचन किया गया है और धर्मशास्त्र में सत् वस्तु के आचरण की विधियाँ बतायी गयी

है और असत वस्तु से विरत् होने के उपाय बताये गये है। इस प्रकार ये जीवन के विभिन्न विचारों और आचारों के निर्णय और पालन के निर्दिष्ट शक्ति है, जो कि प्रत्येक मनुष्य में विशाल मानवतावादी दृष्टि उत्लन्न करके समग्र मानव जाति को सामुहिक रूप से नाना प्रकार की कुशिक्षा, कुसंस्कार और आभावों के बंधन से मुक्त करके, उसे जीवन की उच्च चरितार्थता की ओर ले जाती है।

प्रकृति को ही 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' माना गया है और साथ ही अद्वितीय तादात्म्य स्थाजित किया गया है जो कि सतत विकास की परिकल्पना का साधन भी है।

हमारी संस्कृति में आध्यात्म और भौतिकता में सुन्दर समन्वय स्थापित करते हुए आध्यात्म को प्रदान किया गया है और पुरूषार्थों (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) एवं आश्रम व्यवस्था का प्रतिपादन इसी विधि के अनुसार किया गया है, जो कि सतत् एवं समावेशी विकास हेतु भी परम आवश्यक है। अनंत भेदों के बीच वैचारिक एकता और समानता की बात कही गई है।

ऋग्वैदिक ऋषियों ने इस संबंध में अपना मंतव्य व्यक्त करते हुए कहा है–

''समानो मंत्रः समानी समानं मनं सह चित्तमेषाम्।

स्मानी व आकतिः समाना ह्रदयानिवः।

समानमस्तु वो मनः यथा वः सुसहासति।।''

अर्थात समान मंत्र, समान समिति, समान मन, समान सबकी प्रेरणा, समान सबके ह्रदय, समान मानस, समान सबकी स्थिति......................।

इस प्रकार मानवता के महान पुजारी गौतम बुद्ध समन्वयवादी थे। बौद्ध धर्म ने लोंगो के जी नैतिक स्तर ऊँचा उठाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जन जीवन मे सदाचार एवं सच्चरित्रता का भी विकास किया। इसने विश्व को अहिंसा, शान्ति, बंधुत्व, सह–अस्तित्व आदि को आदर्श बताया जिस कारण विश्व के देशों पर भारत का नैतिक आधिपत्य कायम हुआ। बुद्ध ने मानव जाति की समानता व आदर्श को प्रस्तुत किया था।

गीता में तो कर्म, भक्ति और ज्ञान का अद्भुत समन्वय दिखाई पड़ा है, जो अन्यत्र सर्वथा। इसका स्वर पूरी तरह से आशावादी है, जिसमें निराशावाद के लिए कोई स्थान नही है। यह भूमिका तनाव, भय एंव कायरता से मुक्ति दिलाती है एवं उनमें सदगुणों का विकास करती हैं। निष्ठापूर्व कर्तव्य करने वाले के लिए गीता का यह आदेश सदा प्रेरणा का स्त्रोत रहेगा।

'अच्छा कर्म करने वाला कभी दुर्गति को नहीं प्राप्त होती है।' (न ही कल्याणकृत्कश्चित् दु गच्दिता) तथा निष्काम कर्म का थोड़ा भी अनुष्ठान महान भय से रक्षा करता है।

<u>भारतीय धर्म दर्शन एवं संस्कृति में निहित मानव मूल्य</u>

'स्वल्पमल्पस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्'

गीता ने ही तिलक तथा गाँधी जैसे मनीषियों को प्रेरणा प्रदान किया। गाँधी तो इसे विश्व माता कहते थे, जिसका द्वार सभी के खुला है। गीता का सच्चा उपासक निराशा का नाम नहीं जानता तथा कर्त्तव्य के पथ पर सदैव अग्रसर रहता है तथा इसे सिद्धांत सार्वभौम मान्यता रखते है। भारतीय संस्कृति धार्मिक मूल्यों में सहिष्णुता का उपदेश देती है, ऋग्वेद में है कि – सत् अर्थात् ब्रहम एक है, किंतु ज्ञानी लोग उसका विविध प्रकार से वर्णन करते हैं– एक सद् विप्रा बहुधा ददन्ति। गीता में कृष्ण कहते हैं– हे अर्जुन, सभी मनुष्य मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं– (मम वर्त्सना हि वर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः)। जैन दर्शन का स्याद्वाद एवं सप्तभंगीय का सिद्धान्त धार्मिक सहिष्णुता का ही प्रतिपादक है। यही कारण है कि प्राचीन भारतीयों ने उन विदेशी धर्मावलम्बियों को भी अपने यहा शरण प्रदान की जो अपने देशों में होने वाले धार्मिक संहार एवं अत्याचार से पीड़ित होकर यहॉ पहुंचे।

यह सही है कि सभी पक्ष धर्म से अनुप्रमाणित थे। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि धर्म का संबध मात्र पारलौकिक सुखों से ही था। वैशेषिक दर्शन में धर्म उसे कहा गया है जिनसे लौकिक तथा पारलौकिक दोनो सुखों की प्राप्ति होती है। (यतोडभ्युदय निःश्रेयस् सिद्धिः स धर्म)। मानवे मनुष्य तथा समाज के सार्वगीण विकास को ध्यान रखकर की किया गया है।

सार्वभौमिकता भारतीय तत्व के मूल में है। इसमें अपनी उन्नति के साथ–साथ विश्व कल्याण की कामना की गई है। विश्व बन्धुत्व तथा वसुदैव कुटुम्बकम् जैसे उदातत् सिद्धान्तों का प्रथम उपयोग करते हुए सार्वभौमिकता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। इसमें मानव के साथ–साथ प्राणीमात्र के कल्याण की भी चिन्ता है। ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि वह विश्व को अधंकार से प्रकाश, असत् से सत् तथा नश्वरता से अमरता की ओर अग्रसर करे।

तमसो मा ज्योतिर्गमय,
असतो मा सद्गमय,
मृत्यों मा अमृतमय।

इसी प्रकार लोककल्याण की भावना व्यक्त करते हुए कहा गया है– सभी सुखी हों, विघ्नरहित हो, कल्याण का दर्शन करें तथा किसी को कोई दुःख प्राप्त न हो–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुखभाग भवेत्।।

सार्वभौमिकता की यह भावना भारतीय संस्कृति एवं दर्शन में स्थान–स्थान पर मुखरित हुई है। यह भारतीय संस्कृति की अपनी थाती है जो विश्व की अन्य संस्कृतियों में दुष्प्राप्य है।

इतने शास्वत एवं उदात्त विचारों, मूल्यों एवं संस्कृति का संस्थापक एवं पोषक भारत विश्व गुरू कहलाने का अधिकारी है जिसने प्राचीन काल से ही विश्व की प्रकृति से तादात्म्य बैठाने को प्रेरित किया है। आज जितने भी प्रकार की समस्याओं एवं संकटो से हम, हमारा समाज, देश और विश्व घिरा हुआ है, उन सभी का कारण मानव मूल्य का पतन मात्र है। आवश्यकता है तो सिर्फ अतीत में झॉक कर उन मानव मूल्यों की पुर्नःस्थापना की।

संदर्भ ग्रंथः–

1. सिंह, डॉ0 शिव भानू, धर्म–दर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद.
2. शर्मा, श्रीमती राजकुमारी, मूल्यों का शिक्षण, राधा प्रकाशन मन्दिर, आगरा.
3. जैन, भोला पायल, मूल्य, पर्यावरण तथा मानवाधिकारों की शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा, 2012–13.

भारतीय परिप्रेक्ष्य में नारी सशक्तिकरण का एक अध्ययन

(डॉ0 दुर्गेश धर दूबे असिस्टेट प्रोफेसर व आलोक कुमार एम0 एड0 छात्र
श्री पी0 एल0 मेमोरियल पी0 जी0 कॉलेज बाराबंकी)

सारांश,

महिला सशक्तिकरण के बारे में जानने से पहले हमें सशक्तिकरण की परिभाषा को समझना आवश्यक है सशक्तिकरण से तात्पर्य है कि किसी व्यक्ति की उस योग्यता से है जिसमें वह अपने जीवन से सम्बन्धित सभी निर्णय खुद से ले सके।

महिला सशक्तिकरण के इस लेख में भी हम उसी क्षमता की बात कर रहें हैं जहाँ महिलाएं परिवार और समाज के सभी बंधनों से मुक्त होकर अपने सभी निर्णयों की निर्माता खुद हो। महिला सशक्तिकरण की जरूरत इसलिए पड़ी क्योंकि प्राचीन समय से भारत में लैंगिक असमानता थी और पुरूष प्रधान समाज था। महिलओं को उनके अपने परिवार और समाज द्वारा कई कारणों से दबाया गया तथा उनके साथ कई प्रकार की हिंसा हुई और उनके साथ बहुत भेदभाव हुआ। ऐसा केवल भारत मे ही नहीं बल्कि दूसरे देशों में भी दिखाई पड़ता है। महिलाओं के लिए प्राचीन काल से ही समाज में चले आ रहें गलत और पुराने चलन को नये रीति–रिवाजों और परम्परा में ढाल दिया गया था। आज जरूरत है कि देश की आधी आबादी यानि महिलाओं का हर क्षेत्र में सशक्तिकरण किया जाये जो देश के विकास का आधार बनेंगी।

प्रस्तावना

आज के आधुनिक समय में महिला सशक्तिकरण एक विशेष चर्चा का विषय है। हमारे ग्रन्थों में नारी के महत्व को मानतें हुए यहाँ तक बताया गया है कि ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तक्ष देवता'' अर्थात जहाँ नारी की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते है। लेकिन विडम्बना तो देखिए नारी में इतनी शक्ति होने के बावजूद भी उसके सशक्तिकरण की अत्यंत आवश्यकता महसूस हो रहीं है। महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण का अर्थ उनके आर्थिक फैसलों आय सम्पत्ति और दूसरे वस्तुओं की उपलब्धता से है, इन सभी सुविधाओं को पाकर ही वह अपने सामाजिक स्तर को ऊँचा कर सकती है। राष्ट्र के विकास में महिलाओं का महत्व और अधिकार के बारे में समाज में जागरूकता लाने के लिये मातृ दिवस, अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस व अन्य महिलाओं से सम्बन्धित कार्यक्रम आदि जैसे बहुत सारे कार्यक्रमों का आयोजन सरकार द्वारा चलाए जा रहे है। भारत में महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए सबसे पहले समाज में उनके अधिकारों व मूल्यों को मारने वाली उन सभी रूढ़िवादी सोच को मारने की जरूरत है जो समाज में फैली हुई है जैसे– सती प्रथा, दहेज प्रथा, अशिक्षा, यौन हिंसा, असमानता भ्रूण हत्या, वैश्यावृत्ति, आदि।

अपने देश में उच्च स्तर की लैंगिक असमानता है। जहाँ महिलाएं अपने परिवार के साथ ही बाहरी समाज के भी बुरे बर्ताव से पीड़ित है। भारत जैसे देश में अशिक्षित महिलाएं बहुत हैं महिला सशक्तिकरण के लिए महिलाओं को अच्छी शिक्षा दी जाये और उन्हें इस काबिल बनाया जायें कि वह हर क्षेत्र में स्वतन्त्रता पूर्वक सही निर्णय ले सकें और देश के विकास में अपना योगदान दे सकें। जिससे देश का पूर्ण रूप से विकास हो सके।

महिला सशक्तिकरण का अर्थ – महिला सशक्तिकरण का अर्थ महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार लाना है। ताकि उन्हें रोजगार, शिक्षा, और समाज व परिवार में स्थान मिल सके।

यह वह तरीका है जिसके द्वारा महिलाएँ भी पुरूषों की तरह अपनी सभी आकांक्षाओ को पूरा कर सकें।

भारत में महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता – भारत में महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता के बहुत से कारण सामने आते है। प्राचीन काल के अपेक्षा मध्य काल में भारतीय महिलाओं के सम्मान स्तर में काफी हद तक कमी आयी। जितना सम्मान उन्हें प्राचीन काल में दिया जाता था मध्यकाल में वह सम्मान धीरे–धीरे घटने लगा था।

I. आधुनिक युग में कई भारतीय महिलाएँ कई सारे महत्वपूर्ण राजनैतिक तथा प्रशासनिक पदों पर कार्य कर रही है लेकिन दूसरी तरफ ग्रामीण महिलाएँ आज भी अपने घरों में रहने के लिए बाध्य है और उन्हें सामान्य स्वास्थ्य सुविधा व शिक्षा जैसी सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं है।
II. शिक्षा के क्षेत्र में महिलाऍ पुरूषों की अपेक्षा काफी पीछे है।
III. भारत के शहरी क्षेत्रों की महिलाऍ ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं के अपेक्षा अधिक रोजगारशील है, प्राप्त ऑकड़ो के अनुसार भारत के शहरो में सॉफ्टवेयर इंडस्ट्री में लगभग 30 प्रतिशत महिलाए कार्य करती है वही ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 90 प्रतिशत महिलाऍ मुख्यतः कृषि और इससे जुड़े क्षेत्रों में दैनिक मजदूरी करती हैं।
IV. भारत देश काफी तेजी से उन्नत कर रहा है परन्तु इसे हम तभी बरकरार रख सकते है जब हम लैंगिक असमानता को दूर कर पाए और महिलाओं के लिए भी पुरूषों के तरह समानता शिक्षा तरक्की और भुगतान सुनिश्चित कर सकें।
V. भारत मे महिला सशक्तिकरण की जरूरत इसलिए पड़ी क्योंकि प्राचीन समय में लैंगिक असमानता थी और पुरूष प्रधान समाज था महिलाओ को उनके अपने परिवार और समाज के द्वारा कई कारणों से दबाया गया तथा उनके साथ कई प्रकार की घरेलू हिसाएँ हुई यह केवल अकेला भारत में ही बल्कि अन्य देशों में भी हुआ।
VI. भारतीय समाज में महिलाओं को सम्मान देने के लिए माँ, बहन पुत्री पत्नी के रूप में महिलाओं को पूजते की परंपरा है लेकिन आज केवल यह एक ढोंग मात्र रह गया है।
VII. पिछले कुछ वर्षों में महिलाओं के खिलाफ होने वाले लैंगिक असमानता और बुरे प्रभाओं को हटाने के लिये सरकार द्वारा कई सारे संवैधानिक और कानूनी अधिकार बनाए और लागू किए गए है।
VIII. आधुनिक समाज में महिलाऍ अपने अधिकार को लेकर अत्याधिक जागरूक है जिसका परिणाम यह हुआ है कि कई सारे स्वयं सेवा समूह और एन०जी०ओ० आदि इस देश में कार्य कर रहें है।
IX. महिलाएं ज्यादा खुले दिमाग की होती है और सभी आयामों में अपने अधिकारों को पाने के लिए सामाजिक बंधनों को तोड़ रहीं है। हालाँकि अपराध इसके साथ–साथ चल रहा है।

भारत में महिला सशक्तिकरण के मार्ग में आने वाली बाधाएँ

भारतीय समाज में कई ऐसे रीति–रिवाज मान्यताएँ और परम्पराएँ शामिल है। इनमें से कुछ मान्यताऍ बहुत पुरानी है जो भारत मे महिला सशक्तिकरण के लिए बाधाएँ उत्पन्न कर रही है। उन्ही बाधाओं में से कुछ निम्नवंत् है–

I. पुरानी और रूढ़िवादी विचारधाराओं के कारण भारत के कई सारे क्षेत्रों में महिलाओं के घर छोड़ने पर पाबन्दी होती है। इस तरह के क्षेत्रों में महिलाओं को शिक्षा या फिर रोजगार के लिए घर से बाहर जाने के लिए आजादी नहीं होती है ।

II. पुरानी और रूढ़ीवादी विचारधाराओं के वातावरण में रहने के करण महिलाएँ खुद को पुरूष से कम समझने लगती है और अपने वर्तमान सामाजिक और आर्थिक दशा को बदलने मे नाकाम साबित होता हैं।

III. कार्य क्षेत्र में होने वाला शोषण भी महिला सशक्तिकरण के लिए एक बड़ी बाधा है। प्राइवेट क्षेत्र जैसे सेवा उद्योग सॉफ्टवेयर उद्योग शैक्षिक संस्थाएं और अस्पताल इस समस्या से सबसे ज्यादा प्रभावित होते है।

IV. समाज में पुरूष की प्रधानता होने के कारण महिलाओं के लिए समस्याएँ उत्पन्न होती है। पिछले कुछ समय में कार्य क्षेत्रो में महिलाओ के साथ होने वाले उत्पीड़नो में काफी तेजी से वृद्धि हुई है।

V. भारत में अभी भी कई कार्य क्षेत्रो में महिलाओं के साथ भेदभाव होता है कई सारे क्षेत्रों में तो महिलाओं को शिक्षा और रोजगार के लिए बाहर जाने की भी इजाजत नहीं होती है। इसके साथ ही उन्हें आजादी पूर्वक कार्य करने या परिवार से जुड़े फैसले लेने की भी आजादी नहीं है और उन्हें सदैव हर कार्य में पुरूषों की अपेक्षा कम ही समझा जाता है।

VI. भारत में असंगठित क्षेत्रों में यह समस्या और भी ज्यादा देखने को मिलती है खासतौर पर दिहाड़ी मजदूरी वाली जगहों पर। दिहाड़ी मजदूरी वाली जगहों पर महिलाओं को पुरूषों की अपेक्षा कम भुगतान किया जाता है।

VII. महिलाओं में अशिक्षा और बीच में पढ़ाई छोड़ने जैसी समस्याएँ भी महिला सशक्तिकरण में काफी बड़ी बाधाएँ है। शहरी क्षेत्रों में महिलाएॅं शिक्षा के मामले में पुरूषों के बराबर है परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में यह स्थिति उल्टी नजर आती है यहाँ महिलाएँ पुरूषों की अपेक्षा काफी पीछे है।

VIII. भारतीय महिलाओं के विरूद्ध कई सारे घरेलू हिंसाओं के साथ दहेज, हॉनर किलिंग और तस्करी जैसे गम्भीर अपराध देखने को मिलते है।

IX. कन्या भ्रूणहत्या या फिर लिंग के आधार पर गर्भपात भारत में महिला सशक्तिकरण के लिए सबसे बड़ी बाधाओं में एक है। कन्या भ्रूण हत्या का अर्थ है। लिंग के आधार पर होने वाली भ्रूण हत्या से है जिसके अन्तर्गत कन्या भ्रूण का पता चलने पर बिना माँ के सहमति के ही गर्भपात करा दिया जाता है।

भारत में महिला सशक्तिकरण के लिए सरकार की भूमिका– महिला एवं बाल विकास कल्याण मंत्रालय और भारत सरकार द्वारा भारतीय महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए निम्नलिखित योजनाएँ इस आशा के साथ चलायी जा रही है कि एक दिन भारतीय समाज में महिलाओं को पुरूषों की ही तरह प्रत्येक अवसर का लाभ प्राप्त होगा–

1. **बेटी बाचाओं बेटी पढ़ाओं योजना–** यह योजना कन्या भ्रूण हत्या और कन्या शिक्षा को ध्यान में रखकर बनायी गयी है। इसके अन्तर्गत लड़कियों के बेहतरी के लिए योजना बनाकर और उन्हें आर्थिक सहायता देकर उनके परिवार में फैली भ्रांति जैसे लड़की एक बोझ है ऐसी सोच को बदलने के लिए प्रयास किया जा रहा है।
2. **महिला हेल्पलाइन योजना–** इस योजना के अन्तर्गत महिलायों को 20 घंण्टे इमरजेन्सी सहायता सेवा प्रदान की जाती है महिलाएँ अपने विरूद्ध होने वाली किसी भी तरह की हिंसा या अपराध की शिकायत इस योजना के तहत निर्धारित नम्बर पर कर सकती है।
3. **उज्जवला योजना–** यह योजना महिलाओं को तस्करी और यौन शोषण से बचाने के लिए शुरू की गई है। इसके साथ ही इसके अन्तर्गत उनके पुनर्वास और कल्याण के लिए भी कार्य किया जाता है।

4. **महिला शक्ति केन्द्र–** यह योजना समुदायिक भागीदारी के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने पर केन्द्रित है। इसके अन्तर्गत छात्रों और पेशेवर व्यक्तियों जैसे सामुदायिक स्वंयसेवक ग्रामीण महिलाओं को उनके अधिकारों और कल्याणकारी योजनाओं के बारे में जानकारी प्रदान करते है।

संसद द्वारा महिला सशक्तिकरण के लिए पास किए गए कुछ अधिनियम

ये अधिनियम निम्नलिखित है–

I. अनैतिक व्यापार अधिनियम 1956
II. दहेज रोक अधिनियम 1961
III. एक बराबर पारिश्रमिक एक्ट 1976
IV. लिंग परीक्षण तकनीक एक्ट 1994
V. बाल विवाह रोकथाम एक्ट 2006
VI. कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन शेषण एक्ट 2013

महिलाओं की राष्ट्र निर्माण में भूमिका– बदलते समय के साथ आधुनिक युग की नारी पढ़ने–लिखने के लिए पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है वह अपने अधिकारों के प्रति सजग व जागरूक है तथा वह स्वयं अपना निर्णय ले सकती है महिलाएं हमारे देश की आबादी का लगभग आधा हिस्सा है इसी वजह से राष्ट्र के विकास के महान कार्यों में महिलाओं की भूमिका और योगदान को पूरी तरह सही परिप्रेक्ष्य में रखकर ही राष्ट्र निर्माण के लक्ष्य को हासिल किया जा सकता है।

महिला सशक्तिकरण के लाभ– महिला सशक्तिकरण के बिना देश व समाज में नारी को वह स्थान नहीं मिल सकता जिसकी वह हमेशा से हकदार रही है। महिला सशक्तिकरण के बिना वह सदियों पुरानी परम्पराओं और दुष्टताओं से लोहा नहीं ने सकती। महिला सशक्तिकरण के कारण महिलाओं की जिंदगी में बहुत से बदलाव हुए।

I. महिलाओं ने हर कार्य में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेना शुरू किया है।
II. महिलाएं अपनी जिंदगी से जुड़े फैसले खुद कर रही है।
VII. महिलाएं अपने हक के लिए लड़ने लगी है और धीरे–धीरे आत्म निर्भर बनती जा रही है।
III. पुरूष भी अब महिलाओं को सम्मान देने लगे है।

निष्कर्ष– महिला सशक्तिकरण महिलाओं को वह मजबूती प्रदान करता है जो उन्हें उनके हक के लिए लड़ने में मदद करता है। हमें सभी महिलाओं का सम्मान करना चाहिए और उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। इक्कीसवीं सदी की नारी जीवन में सुखद सम्भावनाओं की सदी है। महिलाएं अब हर क्षेत्र में आगे बढ़ने लगी है। आज की नारी अब जाग्रत और सक्रिय हो चुकी है। वर्तमान में नारी ने रूढ़िवादी परम्पराओं को तोड़ना शुरू कर दिया है। यह एक सुखद संकेत है। अब लोगों की सोच बदल रही है फिर भी इस दिशा में और भी प्रयास करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. पाठक पी०डी० त्यागी गुरसरनदास समसामियक भारतीय शिक्षाः चिन्ता एवं मुद्दे अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा–2

Websites-

1. https://www.successcds.net/hindi/essays/essay-on-women-empowerment-in-hindi.html
2. https://www.hindikiduniya.com/essay/women-empowerment-essay-in-hindi/

महिला सशक्तिकरण पर एक समीक्षात्मक अध्ययन

(श्री मनोज तिवारी, असिस्टेंट प्रोफेसर व सचिन रावत एम एड प्रथम वर्ष श्री.पी.एल. मेमोरियल पी.जी. कॉलेज)

सारांशः—

नारी सशक्तिकरण आज के समय का सबसे प्रसिद्ध विषयों में एक है। आज दुनिया के हर कोने में लोग नारी सशक्तिकरण की बातें कर रहे है। विकसित एवं विकासशील देशों में महिलाओं के अधिकारों के लिए हर वर्ग में आवाज उठाई जा रही है। ऐसे में हमे यह अच्छे से समझना होगा। की यह महिला सशक्तिकरण क्या है? नारी सशक्तिकरण को दूसरे शब्दों में महिला सशक्तिकरण भी कहते है। महिला सशक्तिकरण या नारी सशक्तिकरण एक ऐसा विचार है, जिसके अन्तर्गत समाज में महिलाओं के अधिकारों की रक्षा, अच्छा जीवन शैली, शुद्ध, पर्याप्त व पौषटिक भोजन, स्वास्थ्य सेवाये रोजगार, उच्च शिक्षा, वोट का अधिकार, सरकारी नौकरियों में भागीदारी, स्वतंत्रता से बोलने का अधिकार, देश की सुरक्षा एवं अर्थिक व्यवस्था में योगदान, मन पसंद पहनावा, पुरूषों के बाराबर दर्जा आदि स्तरों पर नारी को सशक्त एवं उत्तम बना देना।

ये सशक्तिकरण के मुख्य बिन्दु हैः— दूसरे शब्दों में कहें तो नारी सशक्तिकरण का अर्थ है। नारी को आर्थिक, चिकित्सा, शिक्षा, रोजगार, खेलकूद, मानसिक, शारीरिक, ज्ञान, सामाजिक, तकनीकि प्रकार के क्रियाकलापों में स्वतंत्रता पूर्वक योगदान होना व देश समाज में महिला पुरूष बराबरी होना।

प्रस्तावनाः—

महिला सशक्तिकरण से जुड़े सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, और कानूनी मुद्दों पर संवेदनशीलता और सरोकार व्यक्त किया जाता है। सशक्तिकरण की प्रक्रिया में सामाज को पारंपरिक पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण के प्रति जागरूक किया जाता है, जिसमें महिलाओं कि स्थित को सदैव कमतर माना जाता है, वैश्विक स्तर पर **नारीवादी आंदोलनों** और यू.एन.डी.पी. आदि अन्तराष्ट्रीय संस्थाओं ने महिलाओं के सामाजिक **समता, स्वतंत्रता, और न्याय के राजनीतिक अधिकारों** को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, महिला सशक्तिकरण, भौतिक या आध्यात्मिक, शारीरिक या मानसिक सभी स्तर पर महिलाओं में आत्मविश्वास पैदाकर उन्हे सशक्ति बनाने की प्रक्रिया है। **कबीर दास** ने कहा है ''**गये रोये हँसी खेलि के, हरत, सबौ के प्राण कहे कबीर या घात को समझै संत सुजान।''** इसका अर्थ यह है कि गाकर, रोकर, हंसकर या खेलकर नारी सबके प्राण हर लेती है। कबीर कहते है कि इसका अघात या चोट केवल संत या ज्ञानी ही समझते है।

''जब होगा स्त्री का हर घर सम्मान
तभी बनेगा हमारा भारत महान।''
''बेटियों को दो इतनी पहचान,
बड़ी होकर बने देश की शान।''

महिला सशक्तिकरणः—

महिला सशक्तिकरण को बेहद आसान शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है, कि इससे महिलांए शक्तिशाली बनती है। जिससे वह अपने जीवन से जुड़े सभी फैसले स्वंय ले सकती है। समाज में उनके वास्तविक अधिकार को प्राप्त करने के लिये उन्हे सक्षम बनाना महिला सशक्तिकरण है। इसमें ऐसी ताकत है कि वह समाज और देश में बहुत कुछ बदल सके। महिला

सशक्तिकरण की शुरूआत **संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 8 मार्च 1975 को अन्तराष्ट्रीय महिला दिवस** के रूप में मनाया गया। महिला सशक्तिकरण की पहल 1985 में महिला अन्राष्ट्रीय सम्मेलन **नैरोबी** में की गई। 1989 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के लक्ष्यों के अनुसार महिलाओं की शिक्षा में सुधार व उन्हे सशक्त करने हेतु की गई थी।

महिला सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिकाः—

''शिक्षा'' महिलाओं के जीवन में बदलाव लाने का सबसे बड़ा साधन है जैसा की भारत के पहले **प्रधानमंत्री श्री पंडित जवाहर लाल नेहरू जी** ने एक बार उद्धृत किया था। **''यदि आप एक पुरूष को शिक्षित करते है तो आप एक व्यक्ति को शिक्षित करते है, लेकिन यदि आप एक महिला को शिक्षित करते है तो आप पूरे परिवार को शिक्षित करते है।''** महिला सशक्तिकरण का अर्थ है **सशक्त भारत माता।** एक शिक्षित महिला आपने आस पास की अन्य महिलाओं को आत्मविशवास, सम्मान, वित्तीय सहायता प्रदान करने की क्षमता हासिल करने में मदद करती है। शिक्षा शिशु मृत्यु दर को कम करने में भी मदद करेगी क्योंकि एक शिक्षित महिला स्वास्थ्य देखभाल, कानूनों और अपने अधिकारों से अवगत है। एक महिला को शिक्षित करने से उसे लाभ होगा और समाज के विकास में भी। उचित शिक्षा के साथ महिलाएं सामाजिक, आर्थिक रूप से अधिक हासिल कर सकती है और अपने कैरियर का निर्माण कर सकती है।

भारत के ग्रामीण इलाकों मे आज भी महिलाओं को उनके शिक्षा के अधिकारों से वंचित किया जा रहा है। शिक्षा बाल विवाह को भी कम करेगी जो अभी—अभी भारत के कुछ हिस्सों में प्रचलित है और अधिक जनसंख्या को नियंत्रित करने मे भी मद्द करता है। सरकार ने महिलओं की शिक्षा के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिये वर्षो से कई योजनांए शुरू की है जैसे की **सर्व शिक्षा अभियान, ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड, बेटी पढ़ाओं बेटी बचाओ और बहुत कुछ।** शिक्षा महिलाओं को अच्छे और बुरे की पहचान करने, उनके दृष्टिकोण, सोचने के तरीके और चीजों को सम्भालने के तरीके को बदलने में मद्द करती है। अन्य देशों की तुलना में भारतीय महिलाओं की साक्षरता दर सबसे कम है। **शिक्षा सभी का मौलिक अधिकार है और किसी को भी शिक्षा के अधिकार से वंचित नही किया जाना चाहिए।** शिक्षा जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने में मदद करती है, घरेलू हिंसा या यौन उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठाने का आत्मविश्वास। बदलाव का हिस्सा बनें और शिक्षा की मद्द से एक महिला को सशक्त बनायें।

भारत में महिला सशक्तिकरणः—

भारत सरकार नें 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष (स्वशक्ति) घोषित किया। सन् 2001 में महिलाओं के सशक्तिकरण की नीति पारित की गई। भारत अपने इतिहास और संस्कृति की वजह से पूरे विश्व में एक विशेष स्थान रखता है। हमारा यह देश सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, सैन्य शक्ति आदि में विश्व में बेहतरीन देशों में शामिल है। वैसे तो आजादी के बाद देश की इन स्थितियों में सुधार की पहल हुई लेकिन हालिया समय में इस क्षेत्र में पहल तेज हुई है। इसके लिए समाज के मानव संसाधन को लगातार बेहतर, मजबूत व सशक्ति किया जा रहा है। समाज की आधी आबादी स्त्रियों की है, इस बाबत उनके लिये विशेष प्रयास किये जा रहे है। **डॉ0 भीम राव अम्बेडकर** ने कहा था कि **''यदि समाज की प्रगति के बारे में सही—सही जानना है, तो उस समाज की स्त्रियों के बारे में जानों।''** कोई समाज कितना मजबूत हो सकता है इसका अंदाजा इस बात से इसलिए लगाया जा सकता है, क्योंकि स्त्रियाँ किसी भी समाज की आधी आबादी है। बिना इन्हे साथ लिये कोई भी समाज अपनी सम्पूर्णता में बेहतर नही कर सकता

है। समाज की आदिम संरचना से सत्ता की लालसा में शोषण को जन्म दिया है। स्थियों को दोयम दर्जे के रूप में देखने की कावायत किसी कड़ी का महत्वपूर्ण पहलू है।

सशक्त होने का वास्तविक आश्यः—

पूरे विश्व में 8 मार्च को अन्तराष्ट्रीय महिला दिवस मानाया जाता है। **हरिशंकर परसाई जी** के व्यंग्य की पंक्ति है कि **"दिवस** कमजोरों **के मानये जाते है, मजबूत लोगों के नही।"** सशक्ति होने का आश्य केवल घर से बाहर निकलकर नौकरी करना या पुरूषों के कंधे से कंधा मिलाकर चलना भर नही है। सशक्त होने का आशय यहाँ पर उसके निर्णय ले सकने की क्षमता का आधार है। कि वह अपने निर्णय स्वयं ले रही है या इसके लिए वह किसी और पर निर्भर है। यदि आर्थिक रूप से स्वतंत्र नही तो वह कभी भी सशक्त नही हो सकेगी।

भारत में महिलाओं को आज भी क्षेत्रों में वैधानिक रूप से समान अधिकार प्राप्त है लेकिन समाज में उन्हे आज भी इसके लिये संघर्ष करना पड़ता है। सामाजिक रूप से आज भी हमारे समाज का मूल पितृसत्ता के रूप में मौजूद है। धर्म भी इसमें कई बार अपनी भूमिका अदा करता है। सबरी माला या अन्य धर्म के स्थलों पर महिलाओं का प्रवेश न करना मौलिक अधिकारों का उलंघन है।

महिला सशक्तिकरण के लिये योजनाएंः—

भारत सरकार ने बहुत से ऐसी अभियान चलायें है जिसमें महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया गया है। यह योजनांए कमजोर और पीढ़ित महिलाओं की आवाज उठाने में मदद करती है। उदाहरण के लियेः—

1. बेटी बचाव बेटी पढ़ाओ स्कीम
2. महिला हेल्पलाईन योजना
3. सुकन्या समृद्धि योजना
4. स्वाधार गृह
5. कामकाजी महिला छात्रावास
6. महिला ई—हाट
7. महिलाओं को नौकरी में 33 प्रतिशत आरक्षण

महिला सशक्तिकरण पर महादेवी वर्मा का कथनः—

एक पुरूष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा पुरूष समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण स्त्रियों उसके आकारण दण्ड को अधिक भारी बनायें बिना नही रहती है। इस तरह पग—पग पर पुरूष शेष सहायता की याचना न करने वाली स्त्री की स्थिति कुछ विचित्र सी है। वह जितनी ही पहुँच के बाहर होती है। पुरूष उतना ही झुलझुलाता है और प्रायः यह झुलझुलाहट मिथ्या अभियोगों के रूप में परिर्वतित हो जाती है।

महिला सशक्तिकरण से लाभः—

1. वे सम्मान और स्वतंत्रता के साथ अपने जीवन का नेतृत्व करने में सक्षम होती है।
2. यह उन्हें अपनी खुद की एक अलग पहचान देता है।
3. यह उनके आत्मसम्मान और आत्मविश्वास को जोड़ता है।
4. वे समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त करने में सक्षम हो पाती है।

5. वे समाज की भलाई के लिए सार्थक योगदान देने में सक्षम हो पाती है।
6. देश के संसाधन उनके लिए उचित और समान रूप से सुलभ होते है।
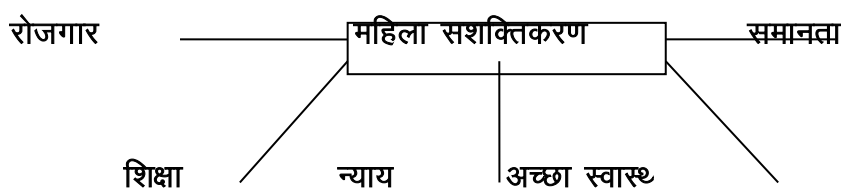
महिला सशक्तिकरण की आवश्यकताः—

महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता इसलिए जरूरी है क्योंकि संसार के विभिन्न समाज में स्त्रियों की आर्थिक,सामाजिक,शैक्षणिक,पारिवारिक,स्वास्थ्य सम्बन्धी,व्यवसाय,आदि। गतिविधियों में पर्याप्त योगदान से एक लंबे समय तक वंचित व शोषित रखा गया। स्त्रियों को केवल घर का कार्य करने तक ही सीमित कर प्रत्येक क्षेत्र में पिछड़ती चली गई। बाल विवाह प्रारम्भ हो गया। बलिकाओं को स्कूल व कॉलेज जाने से रोका गया। नारियों को उन सभी प्रकार शिक्षा प्राणाली से वंचित किया गया। जिससे वे पुरूषों के बाराबर स्थान प्राप्त कर सकती थी।

महिला सशक्तिकरण के उपायः—

महिला सशक्तिकरण के उपाय इस प्रकार है—

1. अच्छी व उच्च शिक्षा का प्रावधान।
2. पर्याप्त व उच्च कोटि की समस्या सेवाएं व उनमें भागीदारी।
3. समाज में नारी के सम्मान व स्वाभीमान की भावना का दृष्टिकोण।
4. दहेज प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या व बालिका विवाह पर पूर्ण प्रतिबंध व सजा।
5. न्यायपालिका सरकार व नौकरशारी में निम्न व उच्च पदों पर हिस्सेदारी एवं बढ़ावा।
6. माता—पिता की संपत्ति में लड़कियों को भी हिस्सेदारी।
7. इंटरनेशनल स्तर पर पॉलिटिकल, सोशियल,सुरक्षा, पत्रकारिता आदि विषयों में हिस्सेदारी।
8. पुलिस विभाग,जल,थल,वायु सेना आदि देश की सेनाओं में नौकरी करना।
9. ग्राम,जिला,नगर,राज्य व देश स्तर पर विभिन्न प्रकार के चुनावी प्रातियोगिता में भाग लेना व नेतृत्व करना।
10. हमेशा महिलाओं की समस्याओं को समाज,सरकार व न्यायपलिका के सामने उचित समाधान के लिए रखना।
11. सिविल सर्विस के पदों पर चयनित होकर लोगों की सेवा करना।
12. शारीरिक व मानसिक विकास एवं वृद्धि के लिए उचित पौष्टिक आहार प्राप्त करना।

निष्कर्षः—

90 के दशक के बाद भारत की स्थिति में काफी सुधार देखने को मिला है,महिलाएं आज घरों से बाहर पढ़ने के लिए जाती है और हर क्षेत्र में अपना नाम रोशन करती है। जैसे आज महिलाए मडिकल,इंजीनिरियरिंग,शिक्षा सुरक्षा आदि के क्षेत्र में जा कर हर वह काम कर रही है जो

एक पुरूष कर सकता है। सिर्फ नारी को आगे लाने की करने और सरकार द्वारा ऐसी योजना बना देने से महिला सशक्तिकरण की भावना का उचित विकास नही हो सकता। अतः हमें लोंगों को रूढ़िवादी सोच को बदलने में कामयाब रहें और महिला सशक्तिकरण की भावना का विकास करने में संभव और सफल रहे तो हमारा देश चौमुखी विकास करेगा और जल्द ही देश से भुखमरी, गरीबी, जैसी समस्याएं दूर हो जायेगी और हमारा देश भारत भी विकसित देशो की श्रेणियों में गिना जायेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:–

- पाठक पीडी त्यागी गुरूसरनदास सम सामयिक शिक्षा चिंता एवं मुद्दे अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा–2
- http://web.archive.org
- http://www.leverageedu.com
- http://web.archive.org
- http://www.awarenessbox.in
- http://www.jagran.com
- http://i.m.wikipedia.org
- http://my.knowledge.in

हिन्दू एंव मुस्लिम महिलाओ की अभिवृत्ति का उनके शैक्षणिक स्तर और सामाजिक परिवर्तन का एक तुलनात्मक अध्ययन सीतामढ़ी जिला के सन्र्दभ में

(अमित आनंद, शिक्षा संकाय, एल. एन. एम. यूनिवर्सिटी दरभंगा, बिहार)

सारांश

सामाजिक परिवर्तन के बढ़ते कदम, शिक्षा के प्रसार, राजनीतिक आधुनिकरण के फलस्वरूप अनेक प्रकार के परिवर्तन भारतीय समाज मे देखने को मिलते है। नारी जगत भी इन परिवर्तनो से प्रभावित होता रहा है। चुनाव, समाजवाद, राजनीति, आधुनिकीकरण, शिक्षा, औधोगीकरण, नगरीकरण एक साथ मिलकर भारत को परिवर्तन की राह पर ले जा रहे है। भारतीय समाज का परिवर्तित परिपेक्ष्य और आधुनिकीकरण के बढ़ते कदम ने नारी जीवन को अनेक प्रकार की भूमिकाओ और उससे संबंधित समाजिक सम्बन्धो को परिवर्तित किया है।

हिन्दू और मुस्लिम महिलायों दोनों अब अपने परिवार तक सीमित नही है वरन आर्थिक लाभ और व्यक्तिगत लक्ष्यो के लिए घर के बाहर सक्रिय भूमिकायें निभा रही हैं। शिक्षित महिलायें अनेक रोजगारों से जुड़कर परम्परागत दृष्टिकोण में परिवर्तन ले आयी है और एक प्रभावशाली भूमिका अपने, तथा अपने परिवार व समाज के लिए निभा रही है।

ऐतिहासिक परिपेक्ष्य मे देखा जाय तो भारतीय महिलाओं की स्थिति विभिन्न युगों में उतार – चढ़ाव भरी रही । वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति काफी अच्छी और ऊँची थी । महिलायो अपने पति की मित्र , साथ–साथ कार्य करने वाली और अपने भावी जीवन के लिये निर्णय लेने मे समर्थ थी। पिता और पति के सम्पति पर उनका अधिकार था। स्वंयवर प्रथा महिलाओ की सामाजिक स्थिति की सुदृढ़ नींव थी । बौद्धिक क्षेत्र में महिलाये पुरूष के समकक्ष थी । मुनि अगस्त्य की पत्नी लोपमुद्रा वैदिक ईश्वरीय स्तुति की रचनाकार थी , मैत्रेयी अपने पति सें दर्शनशास्त्र की समस्याओ पर विचार करती थी। मुंडन मिश्र की पत्नी मांडवी ने तो आदि शांकराचार्य को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया था। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई , और पद्मिनि ने वीरांगना के रूप मे ख्याति पायी , अहिल्याबाई का प्रशासक के रूप मे, बेगम हजरत महल , रजिया सुल्ताना, नूरजहाँ की शासन – व्यवस्था सें पूरा समाज परिचित हैं। राम की सहचरी सीता , कृष्ण के सखा राधा , मीराबाई की अध्यात्मिक गायन एंव कृष्ण के साथ एकाकार हो जाने की घटना महिलायो की आदिशक्ति के रूप को प्रकट करती है।

अठारवीं, उन्नीसवीं, व बीसवीं शताब्दी के मध्य तक अंग्रेज भारत के शासक बने रहे । इस अवधि में अनेक अच्छे – बुरे परिवर्तन का दौर चला । शिक्षा , रोजगार , सामाजिक अधिकारो को लेकर महिलाओं और पुरूष के बीच असमानता में कमी आयी ।

किसी भी समाज में शिक्षा एक महत्वपूर्ण कारक है जिसकी सहायता से समाज की दिशा और दशा दोनों बदल जाते है। प्राचीन भारत में परम्परागत शिक्षा धार्मिक संस्थाओं के माध्यम से प्रदान की जाती थी , लेकिन अँग्रेजों के शासनकाल में पाश्चात्य शिक्षा भारत में आयी जिसका अनोखा प्रभाव हिन्दू और मुस्लिम दोनों महिलाओं पर पड़ा । उनकी अभिवृति में परिवर्तन के फलस्वरूप नारी समाज ने एक नई करवट ली। स्वतंत्र भारत में सता के विकेन्द्रीकरण , राजनीति के क्षेत्रों में नारी जाति को दिए गए भरपूर आरक्षण एंव शिक्षा की सुविधा ने बाजी पलट दिया।

भारत में पचास वर्ष पूर्व ही दुनियाँ की सर्वाधिक शक्तिशाली प्रधानमंत्री के रूप मे श्रीमती इंदिरा गाँधी का निर्वाचित होना, राष्ट्रपति के पद को श्रीमती प्रतिभा पाटिल द्वारा सुशोभित किया जाना एक मील का पत्थर था। वर्तमान भारत में भी राष्ट्रपति पद पर एक आदिवासी महिला श्रीमती द्रौपदी मुर्म आसीन है। प्रशासन के क्षेत्र मे , आई0 ए0 एस0 , आई0 पी0 एस ,

मंत्री ,सांसद ,विधायक, कुलपति , मुख्यमंत्री , राज्यपाल , पायलट , सेना के विभिन्न पद, जज – मानों कोई पद महिला के पहुँच से बाहर नही है।

इन सारी बातो के पीछे जो बड़ा कारक तत्व रहा है, वह शिक्षक की भुमिका ही रही है। नई शिक्षा नीति के आलोक में नारी समाज एक अकल्पनीय सुदृढ़ सामाजिक और शैक्षणिक संरचना करेगी । आज की

शिक्षित महिलायें नई विचारधाराओ एंव नए मूल्यों की ओर अग्रसर है। ऐसी सारी बातों का तार्किक विश्लेषण और अर्थपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत शोध पत्र में जानने का प्रयास किया जायगा।

Keywords: अभिवृत्ति, स्वंयवर प्रथा, विकेन्द्रीकरण, मील का पत्थर, अर्थपूर्ण।

प्रस्तावना

आधुनिक काल में शिक्षा का प्रसार तीव्र गति से हो रहा है, और इसके फलस्वरूप सामाजिक परिवर्तन को भी गति वर्तमान कालखंड में तेज है। किसी भी समाज में जब समाजिक मूल्यों विचारघाराओं, संस्थानो, सामाजिक भूमिकाओं, अन्तः क्रिया के प्रतिमानों आदि में परिवर्तन होता है तो हम इस सामाजिक परिवर्तन की संज्ञा देते है। परिवर्तन प्रकृति और जीवन का शाश्वत नियम है । समाजिक परिवर्तन भी एक सार्वभौम सत्य है। भारतीय हिन्दू और मुस्लिम महिलाओं के जीवन में भी यह परिवर्तन अपने परिवेशगत दशाओं के अनुसार होता है। समाज में परिवर्तन के अनेक कारक होते है और उन सभी कारको का विश्लेषण अलग अलग स्तरो पर किया जा सकता है। प्रमुख कारको में समाजिक , आर्थिक , शैक्षणिक ,सांस्कृतिक एंव राजनैतिक मुल आधार होते है । वर्तमान समय में शिक्षा के विभिन्न स्तरो ने सामाजिक परिवर्तन में न सिर्फ भूमिका का निर्वाह किया है वरन सामाजिक परिवर्तन को तीव्रता को भी गति प्रदान किया है। विशेषकर महिलाओं के मनोवज्ञानिक और सामाजिक विचार धाराओ मे परिर्वतन इसके प्रभावी रूप में दिखायी देता है। नई शिक्षा नीति के आलोक मे आज के शिक्षको की अग्रणी भूमिका है कि वो इस शोघ पत्र के विषय वस्तु को प्रभावी ढंग से व्याख्या प्रस्तुत करे । भारत में विभिन्न घर्म समुदाय एंव जाति के लोग निवास करते आए है। वे भिन्न भिन्न भषाओ मे अपनी अभिवृत्ति को व्यक्त करते रहे है । उनकी अलग अलग विचारधाराये जीवन– मूल्य तथा संस्कृतियॉ है फिर भी विविधताओ मे एकरूपता तथा अनेकता में एकता है। भारतवर्ष मे सदियों से निवास करने वाले हिन्दू और मुस्लिम दो प्रमुख समुदाय है। तुलनात्मक दृस्टिकोण से मुस्लिम समाज की अपेक्षा हिन्दू समाज में समाजिक परिवर्तन को गति अधिक तीव्र रही है। इनके समाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रो में बहुत अध्कि परिवर्तन होते रहे है। इसकी तुलना में मुस्लिम समुदाय का रूपान्तरण उस तीव्रता से नही हुआ जिसकी अपे़क्षा थी । इसका मुख्य कारण शिक्षा के प्रति उनकी उदासीनता रही है। मुस्लिम समुदाय हाल तक मकतब और मदरसा से प्राप्त घर्मिक शिक्षा पर अधिक बल देता रहा है, जिनका आधुनिकता से कम सरोकार रहा है। भारतीय संविधान ने समाज के दोनो लोगो को समान नागरिक सुबिघाये प्रदान की है, फिर भी मुस्लिम समाज पिछड़ गया लगता है।

आदिकाल से भारत एक पुरूष प्रधान देश है। परिवार का उतरदायित्व महिला सहभागिता के समक्ष एक बडी चुनौती रही है। मुस्लिम समाज की पितृसत्तात्मकता ने नारी का कार्यक्षेत्र घर की चहारदिवारी मे निर्घारित किया हुआ है। मुस्लिम महिलाओं के परिवार का आकार प्रायः बड़ा पाया जाता है। वह संयुक्त परिवार को वरीयता देती है और उनके पारिवारीक उतरदायित्व भी हिन्दू समाज की महिलाओ की अपेक्षा अधिक है। ऐसे में योग्यता एवं क्षमता होने के बावजूद परिवारिक दायित्वो के र्निवहन में अधिकांश समय व्यतीत होने के कारण मुस्लिम महिलायों सामाजिक और राजनीतिक दायित्वो की दिशा में सोच पाने मे पीछे छूटती गयी। किसी भी परिवार में

महिलाओ केन्दीय भूमिका होती है । संतति का पालन पोषण तथा उन्हें उचित संस्कार प्रदान करने का दायित्व महिलाओ का होता है। इसलिए कहा जाता है कि एक महिला का पूर्ण शिक्षित होना पुरे एक परिवार को शिक्षित बनाना है । वर्तमान समय में तीव्र सामाजिक परिवर्तन के दौर में महिलाये सर्वाधिक प्रभावित नजर आती है । यह परिर्वतन विशेषकर उनकी अभिवृत्ति,विचारधारा और उनके दृष्टिकोण में परिलक्षित होता दिखायी देता है। अतः हम कह सकते है कि महिलाओ की अभिवृत्ति का प्रभाव पुरे समाज पर स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित है। नारी जगत में आए परिवर्तनो ने समाजशास्त्रियो तथा शिक्षाशास्त्रियो का घ्यान आकृष्ट किया है और शिक्षको ने इन तथ्यों के आलोक मे अनुसंघान कार्य शुरू कर दिए है।

स्त्रियो की शिक्षा ,अभिवृत्ति, उससे संबंधित विभिन्न समाजिक, आर्थिक एंव शैक्षणिक समस्याओ पर बहुत सारे शोघ कार्य किए गए और हो रहे है, लेकिन दो भिन्न घर्मालम्बी हिन्दू और मुस्लिम महिलाओ के दृष्टिकोण , समाज में हो रहे विभिन परिवर्तनो के प्रति किस सीमा तक भिन्न है या उनमे कितनी समानता है, वे इन परिवर्तनो के प्रति कितनी जागरूक है और उनकी इस अभिवृत्ति पर नई शिक्षा नीति का क्या प्रभाव पड़ा है या शिक्षा और शिक्षक की इसमे क्या भूमिका है आदि पर शोध अध्ययन बहुत कम हुए हैं । अतः इन्ही प्रश्नो का उत्तर पाने के लिए इस शोध समस्या का चयन किया गया है ।

शोध समस्या – "हिन्दू एवं मुस्लिम महिलाआ की अभिवृति का उनके शैक्षणिक स्तर और सामाजिक परिवर्तन का एक तुलनात्मक अध्ययन सीतामढ़ी जिला के सन्दर्भ मे।

शोध का उदेश्य – प्रस्तावित शोध कार्य का उदेश्य वर्तमान समय में सामाजिक परिवर्तन के कारण शिक्षा मे आयी क्रांति और प्रगति के प्रभाव का अध्ययन हिन्दू और मुस्लिम महिलाओ पर किया जाना है। निम्नांकित कुछ प्रमुख आयाम है जिन पर प्रस्तावित शोध पत्र में प्रकाश डाला जायगा–

1. सामाजिक परिवर्तन के प्रति हिन्दू महिलाओ एवं मुस्लिम महिलाओ की अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

2. सामाजिक परिवर्तन के प्रति हिन्दु तथा मुस्लिम महिलाओ की अभिवृत्ति मे अन्तर का अध्ययन करना।

शोध विधि – प्रस्तावित शोध अध्ययन की प्रकृति वर्णनात्मक है अतः इस शोघ मे वर्णनात्मक शोघ विधि का प्रयोग किया जायगा । इसके अन्तर्गत दो या दो से अधिक चरो के मध्य क्या सम्बन्ध है, इसका उत्तर ढूढने का प्रयास किया जाना है।

शोध उपकरण – प्रस्तावित अध्ययन मे हिन्दू तथा मुस्लिम महिलाओ का समाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति का उनके शैक्षणिक स्तर के संदर्भ मे एक तुलनात्मक अध्ययन किया जाना है, लेकिन इस विषय पर कोई उपकरण उपलब्ध नही होने के कारण एक सामाजिक परिवर्तन अभिवृत्ति मापनी का भी निर्माण करना पड़ेगा जो लिकर्ट पद्धति पर आधारित होगा ।

शोध प्रबन्ध की परिकल्पना – शोध कार्य के उपरोक्त उदेश्यो एवं शोध विश्लेषण के संदर्भ में प्रस्तावित शोघ प्रबन्ध की परिकल्पनाये निम्नांकित रूप मे रखी जा सकती है–

1. हिन्दू महिलाओ की सामाजिक परिवर्तन के प्रति अधिवृत्ति तथा उनके शैक्षणिक स्तर में सार्थक संबंध है ।

2. मुस्लिम महिलाओ की समाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृति तथा उनके शैक्षणिक स्तर मे सार्थक सम्बन्ध है।

3. हिन्दू तथा मुस्लिम महिलआओ की समाजिक परिवर्तन के प्रति अभिवृत्ति तथा उनके शैक्षणिक स्तर में सार्थक संबंघ नही है।

इन कारणों एवं परिणाम को घ्यान मे रखकर इसके उपचार हेतु सम्यक अनुसंधान और परीक्षण मूल परिकल्पना है।

शोध समस्या का परिसीमन – उपरोक्त संदर्भ तथा व्यवहारिकता के आधार पर इस इस शोघ अध्ययन को निम्नलिखित रूप से परिसीमित किया जायगा–

1. प्रस्तुत शोध कार्य के लिए केवल सीतामढ़ी जिला में निवास करने वाली हिन्दू तथा मुस्लिम महिलाओ को ही चुना जायगा।

2. इस अध्ययन में विभिन शैक्षणिक स्तरो पर यथा अशिक्षित, निम्न स्तर तक शिक्षित (8 वी कक्षा), मघ्यम स्तर तक शिक्षाप्राप्त महिला (12वी कक्षा) तथा उच्च स्तर की शिक्षा प्राप्त (स्नातक व उपर) हिन्दू तथा मुस्लिम महिलाओ को सामाजिक परिवर्तन के प्रति क्या अभिवृत्ति है, का अध्ययन किया जाना है।

आँकड़ो का संकलन– समंको के संकलन हेतु सीतामढ़ी जिले में निवास करने वाली 100 उच्च शिक्षित तथा मघ्यम स्तर तक शिक्षित हिन्दू तथा 100 मुस्लिम महिलाओ से व्यक्तिगत सम्पर्क किया गया तथा उन्हे इसे शोघ के क्या उद्धेश्य है इसकी जानकारी दी गयी। तत्पश्चात उन्हे अभिवृति मापनी दी गयी तथा इसमे दिये गये कथनो के आगे बने अत्यधिक सहमत, अनिश्चित , असहमत, अत्यधिक असहमत कोष्ठको मे से किसी एक के सामने सही का निशान लगाने को कहा गया। इस अध्ययन में अल्पशिक्षित तथा अशिक्षित महिलायें भी साम्मिलित की गयी है अतः इन महिलाओ के लिए साक्षात्कार विधि का प्रयोग कर आंकड़ो का संकलन किया गया है।

निष्कर्षः – आँकड़ो के अध्ययन से जो परिणाम प्राप्त हुए उनसे स्पष्ट है कि हिन्दू तथा मुस्लिम महिलाओ की सामाजिक परिवर्तन के प्रति सामान्य स्तर की अभिवृति है।

उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाओ ने अल्प अभिवृति व्यक्त की तथा कम शिक्षा प्राप्त महिलाओ ने अधिक अभिवृति व्यक्त की है। शिक्षा ही वह प्रभाव है जो सामाजिक परिवर्तन के प्रति महिलाओ के दृष्टिकोण को समान रूप से व्यापक बना रहा है। अतः आज आवश्यकता इस बात कि है शिक्षा का अधिक से अधिक विकास किया जाए। नयी शिक्षा नीति मे भी इसी तथ्य को स्वीकार किया गया है कि शिक्षा ही वह प्रभावशाली माध्यम है जो व्याक्ति के बौद्धिक विकास के साथ–साथ इसके दृष्टिकोणो , मान्यताओ, रूचियो, आदि को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है तथा उसके बुद्धि व विचार को व्यापक बनाती है ।

आजमगढ़ जनपद में अध्ययनरत बी0एड्0 कक्षा के अनुसूचित जाति एवं सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों में पर्यावरणीय जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन

(दिनेश कुमार शोधार्थी, श्री गाँधी पी0जी0 कॉलेज मालटारी, आजमगढ़ व प्रो0 जगदीश कुमार शाोध निर्देशक शिक्षा संकाय (बी0एड्0), श्री गाँधी पी0जी0 कॉलेज मालटारी, आजमगढ़)

शोध सार :

समाज में शिक्षकों की पथ प्रदर्शक की भूमिका होती है। इसी कारण उसे समाज और उससे सम्बन्धित सभी वातावरण की जानकारी नितान्त आवश्यक है। वर्तमान समय में समाज में वातावरणीय प्रदूषण का एक प्रमुख समस्या बनी हुयी है और इसका प्रबल कारक अज्ञानता अशिक्षा और गरीबी है। इसके लिए यह आवश्यक है कि देशवासियों को पर्यावरण के महत्व एवं ज्ञान से अवगत कराया जाये। प्रदूषण से बचने की उपायों की जानकारी प्रदान की जाये। इस हेतु जनजीवन में पर्यावरण के प्रति जागरूकता एवं ज्ञान को विकसित करना होगा, तभी उनमें पर्यावरण के प्रति सकारात्मक विचार उत्पन्न होंगे और प्रदूषण की समस्या पर काबू पाया जा सकेगा। यह कार्य देश का बी0एड्0 विद्यार्थियों वर्ग ही कर सकता है। परन्तु वह स्वयं पर्यावरण के प्रति जागरूक होगा तभी वह अपने छात्रों में भी यह जागरूकता अंकुरित एवं पल्लवित कर सकता है। बी0एड्0 कक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थी के लिए यह विशेष अपेक्षा होती है क्योंकि इस स्तर के विद्यार्थियों में पर्यावरणीय संचेतना की विशेष अपेक्षा होती है जो पर्यावरण के प्रति विशेष ज्ञान एवं जागरूकता रखने वाला बी0एड्0 विद्यार्थियों ही कर सकता है। पर्यावरण प्रकृति का अनुपम वरदान है। मानव जीवन की विकासात्मक प्रक्रिया में पर्यावरण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान होता है। पर्यावरण ने मनुष्य को विकास की असीम सम्भावनाएं प्रदान की है। किन्तु उसने पर्यावरण का विदोहन करके उसे असन्तुलित एवं प्रदूषित कर दिया है। इस पर्यावरणीय प्रदूषण के अनेक कारण है।

भूमिका :

सृष्टि के आरम्भ से ही मनुष्य और प्रकृति का अन्योन्नाश्रित सम्बन्ध रहा है क्योंकि प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों की जीवन प्रणाली पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर रहती थी। किन्तु आज के युग में मानव यह भूल गया है। प्रकृति से मानव द्वारा छेड़छाड़ की जाती है तब पर्यावरण असंतुलन या पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होती है। बी0एड्0 विद्यार्थियों को पर्यावरण संबंधी ज्ञान होना चाहिए जिससे कि वह अपने विद्यालय में छात्रों को पर्यावरण जागरूकता का पाठ पढ़ा सके क्योंकि समाज सतत् विकासशील एवं परिवर्तनशील संरचना है। इसी के परिणामस्वरूप सामाजिक प्राणी मानव बर्बर एवं असभ्य जीवन से सभ्य एवं विकसित स्वरूप में पहुँच चुका है और विज्ञान तथा तकनीकि के बल पर पर्यावरण सन्तुलन को नष्ट करने लगा है। आज विकास के नाम पर मनुष्य प्रकृति का विनाश कर पर्यावरण को प्रदूषित कर रहा है नदियों को गंदगी एवं कारखानों के कचरे से विषैला बना रहा है, पेड़–पौधों को अपनी स्वार्थ और बढ़ती हुई आबादी के लिए काट कर वायु प्रदूषण बढ़ा रहा

है और वर्षा का मार्ग अवरूद्ध कर रहा है। आकाश की सुरक्षात्मक ओजोन परत को क्षति पहुँचा रहा है। इस प्रकार मनुष्य स्वयं ही अपने भविष्य के लिए खतरा खड़ा कर रहा है।

शोध के उद्देश्य :

1. शासकीय बी0एड्0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान का पता करना।
2. शासकीय बी0एड्0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान का पता करना।
3. अशासकीय बी0एड्0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान का पता करना।
4. अशासकीय बी0एड्0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान का पता करना।

परिकल्पनायें :

शोध की परिकल्पनाएं निम्नलिखित हैं–

1. शासकीय बी0एड्0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान में सार्थक अन्तर नहीं है।
2. शासकीय बी0एड्0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान में सार्थक अन्तर नहीं है।
3. अशासकीय बी0एड्0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान में सार्थक अन्तर नहीं है।
4. अशासकीय बी0एड्0 महाविद्यालयों में अध्ययनरत अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान में सार्थक अन्तर नहीं है।

प्रयुक्त उपकरण :

डॉ0 सीमा धवन का Environment Knowledge Test प्रयोग किया गया।

न्यादर्श :

आजमगढ़ जनपद के 5 शासकीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों एवं 5 अशासकीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों को चुना है। शासकीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों के 25 बी0एड्0 छात्रों और 25 छात्राओं एवं अशासकीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों के 25 बी0एड्0 छात्रों और 25 छात्राओं अर्थात् दोनों प्रशिक्षण महाविद्यालयों के कुल 100 बी0एड्0 छात्र एवं छात्रों को न्यादर्श में शामिल करके आंकड़ों का संकलन किया गया है।

प्रयुक्त सांख्यिकीय :

संकलित प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

शोध के निष्कर्ष :

शोध उद्देश्य सं0–1 : शासकीय एवं अशासकीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों के सामान्य वर्ग के बी0एड्0 विद्यार्थियों के पर्यावरण संबंधी ज्ञान का अध्ययन करना।

परिकल्पना एक : शासकीय एवं अशासकीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों के सामान्य वर्ग के बी0एड्0 विद्यार्थियों के पर्यावरण संबंधी ज्ञान में कोई अन्तर नहीं है।

चर	N	M	SD	D	σD	क्रान्तिक अनुपात	स्वतंत्रयांश	सार्थकता स्तर
शासकीय प्रशिक्षण महाविद्यायों के सामान्य वर्ग के बी0एड्0 विद्यार्थी	25	49.00	17.20	2.94	4.09	0.72	48	0.01 पर असार्थक
अशासकीय प्रशिक्षण महाविद्यायों के सामान्य वर्ग के बी0एड्0 विद्यार्थी	25	51.94	11.13					

48 df पर 0.05 स्तर पर टी सारणी मान 2.01 तथा 0.01 स्तर पर 2.68 है। गणना की गई टी अनुपात 0.72 है जो सार्थक नहीं है। अतः यह शून्य परिकल्पना सत्य सिद्ध होती है अर्थात् शासकीय एवं अशासकीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों के सामान्य वर्ग के बी0एड्0 विद्यार्थियों के पर्यावरण संबंधी ज्ञान में कोई अन्तर नहीं है। अर्थात् दोनों प्रकार के प्रशिक्षण महाविद्यालयों के सामान्य वर्ग के बी0एड्0 विद्यार्थियों का पर्यावरणीय ज्ञान समान है।

शोध उद्देश्य सं0–2 : शासकीय एवं अशासकीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों के अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के पर्यावरण संबंधी ज्ञान का अध्ययन करना।

परिकल्पना दो : शासकीय एवं अशासकीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों के अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के पर्यावरण संबंधी ज्ञान में कोई अन्तर नहीं है।

चर	N	M	SD	D	σD	क्रान्तिक अनुपात	स्वतंत्रयांश	सार्थकता स्तर
शासकीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों के अनुसूचित जाति के विद्यार्थी	25	48.73	15.90	4.54	4.16	1.09	48	0.01 पर असार्थक
शासकीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों के	25	53.27	13.40					

अनुसूचित जाति के विद्यार्थी								

48 df पर 0.05 स्तर पर टी सारणीमान 2.01 तथा 0.01 स्तर पर 2.68 है। गणना की गई टी अनुपात 1.09 है जो सार्थक नहीं है। अतः यह शून्य परिकल्पना सत्य सिद्ध होती है अर्थात् शासकीय एवं अशासकीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों के अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के पर्यावरण संबंधी ज्ञान में कोई अन्तर नहीं है। अर्थात् दोनों प्रकार के प्रशिक्षण महाविद्यालयों के अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों का पर्यावरणीय ज्ञान का स्तर समान है।

शोध उद्देश्य सं0–3 : शासकीय एवं अशासकीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों के सामान्य वर्ग एवं अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों में पर्यावरण जागरूकता संबंधी ज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पना तीन : शासकीय एवं अशासकीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों के सामान्य वर्ग एवं अनुसूचित जाति के विद्यार्थियों के पर्यावरण जागरूकता में सार्थक अन्तर नहीं है।

चर	N	M	SD	D	σD	क्रान्तिक अनुपात	स्वतंत्रयांश	सार्थकता स्तर
सामान्य वर्ग के बी0एड्0 विद्यार्थी	50	51.27	13.40	0.93	2.39	0.39	48	0.01 पर असार्थक
अनुसूचित जाति के बी0एड्0 विद्यार्थी	50	52.20	10.32					

48 df पर 0.05 स्तर पर टी सारणीमान 1.99 तथा 0.01 स्तर पर 2.63 है। गणना की गई टी अनुपात 0.27 है जो सार्थक नहीं है। अतः यह शून्य परिकल्पना सत्य सिद्ध होती है अर्थात् शासकीय एवं अशासकीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों के सामान्य वर्ग एवं अनुसूचित जाति के बी0एड्0 विद्यार्थियों में पर्यावरण संबंधी ज्ञान में कोई अन्तर नहीं है।

सुझाव :

1. बी0एड्0 विद्यार्थियों के लिए पर्यावरण शिक्षा संबंधी सेमीनार, सामूहिक वार्ता, कार्यशाला व सम्मेलनों का आयोजन किया जाना चाहिए।
2. बी0एड्0 विद्यार्थियों को क्षेत्रीय पर्यावरण की समस्याओं को समझाने व उनका निवारण करने के लिए प्रयोजनाओं को निर्मित करने तथा शोध करने के लिए प्रोत्साहन किया जाना चाहिए।

3. बी0एड्0 विद्यार्थियों को सुधारने का कार्य की जिम्मेदारी दी जानी चाहिए, जिससे वह विद्यालय एवं समुदाय दोनों जगहों में अच्छा कार्य करके विद्यार्थियों के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत कर सके।

4. पर्यावरण शिक्षा की चेतना व अवबोध के विकास के लिए सेवारत बी0एड्0 विद्यार्थियों को दूरस्थ शिक्षा प्रणाली द्वारा प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

5. संचार माध्यमों द्वारा बी0एड्0 विद्यार्थियों को प्रशिक्षित किया जा सकता है। पर्यावरणीय समस्याओं और उनके प्रभावों सम्बन्धी जागरूकता व बोध के लिए अनौपचारिक शिक्षा को उपयोग में लाया जा सकता है। समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन, पत्रिकाओं द्वारा पर्यावरण चेतना विकसित की जा सकती है।

संदर्भ :–

1. शर्मा, श्रीकान्त :''पर्यावरण एवं हमारा स्वास्थ्य'' पर्यावरण ऊर्जा टाइम्स, इनवायरनमेंट एनर्जी फाउण्डेशन, रायपुर, जनवरी 2000.
2. देवसन ए0 ''एनवायरनमेंटल अवेयेरनेस विथ इन्फैंट्स इन्टीमेटेड एप्रोच, इन्वायरमेंट एजूकेशन'' वाल्यूम 2,3 1985, अतुल प्रकाशन, मथुरा।
3. पाण्डेय, डॉ0 के0पी0 : पर्यावरण शिक्षा एवं भारतीय संदर्भ पर्यावरण शिक्षा शिक्षण, राधा प्रकाशन, आगरा।
4. श्रीवास्तव, डॉ. पंकज : 'पर्यावरण शिक्षा (म0प्र0) हिन्दी ग्रन्थ अकादमी'', बानगंगा, भोपाल 1988.
5. शर्मा, आई0के0 ''हाऊ इन्वारनमेंटल अवेयरनेस बी0 जनरेटेड इन स्कूल चिल्ड्रन, कॉलेज यूथ एण्ड जनरल पब्लिक'' आई.सी.ई.ई. एव्सट्रेक्ट, नई दिल्ली 1981

उच्चतर माध्यमिक स्तर के दिव्यांग विद्यार्थियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति तथा समायोजन पर प्रभाव

(गोपाल सिंह, शोधार्थी व **प्रो0 कैलाश नाथ गुप्ता, शोधनिर्देशक,** एस.जी.पी.जी. कालेज, मालटारी आजमगढ़)

प्रस्तावना :

आज विज्ञान और अर्थ का युग है। व्यक्ति के प्रत्येक कार्यो और अवस्थाओं को वैज्ञानिक और आर्थिक प्रगति प्रभावित कर रही है। सामान्य बोलचाल में इसे आधुनिक युग कहा जाता है। आधुनिक युग में संसाधनों के विकास में मनुष्य की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती है। किसी भी राष्ट्र के समग्र विकास में प्रगतिशील, संरचनाशील व प्रबुद्ध व्यक्ति जितना सहयोग दे सकता है उतनी मात्रा में अन्य साधन प्रभावी नहीं माने जाते हैं। व्यक्ति की क्षमता एवं उसमें निहित विकास की सम्भावनाएँ कैसे बढ़ाई जा सकती है इसके लिए उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति, अकांक्षा स्तर, अभिवृत्ति, घर–परिवार व आस–पास का वातावरण व रूचि प्रमुख योगदान देते हैं। उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति वाला व्यक्ति अच्छी समायोजन प्राप्त कर सकता है परन्तु निश्चित सीमा तक ही। आज शिक्षा के क्षेत्र में बहुचर्चित विषय है कि व्यक्ति का व्यवहार कैसा बनाया जाय कि वह भौतिक युग में अधिक सफलता हासिल करे जैसे मानवता के लिए न्याय स्वतन्त्रता और शांति के लिए संस्कृति उसी तरह समायोजन के लिए सामाजिक आर्थिक स्थिति आकांक्षा स्तर आवश्यक होती है। जो दिव्यांग विद्यार्थी उच्च आकांक्षा एवं सामाजिक आर्थिक स्तर वाला होता है उसकी समायोजन उतनी ही अच्छी होती है। भारतीय परिस्थिति में टूटते हुए परिवारों की वजह से दिव्यांग विद्यार्थियों की मानसिक परेशानियाँ बढ़ती जा रही है जिसमें समायोजन दिव्यांग विद्यार्थी आसानी से नहीं कर पाता है। इस तरह के समायोजन को बनाये रखने में सामाजिक आर्थिक स्थिति, आकांक्षा स्तर एवं विद्यालयी वातावरण अच्छी भूमिका अदा करते है। माध्यमिक स्तर के दिव्यांग विद्यार्थियों की समायोजन लिंग व क्षेत्र के आधार पर अलग–अलग होती है क्योंकि उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति एवं आकांक्षा स्तर भी अलग–अलग होते हैं। आज जहाँ विशेष रूप से छात्र एवं छात्राएँ एक ऐसी परिस्थिति से गुजर रहे हैं जहाँ से भविष्य के लिए कोई निश्चित निर्देशक रेखा स्पष्ट नहीं है। ऐसी स्थिति में संघर्ष, निराशा, मानसिक द्वन्द्व तथा अन्य सामाजिक आर्थिक परेशानियाँ बढ़ती जा रही है। किसी भी परिस्थिति का सामना करने के लिए मनुष्य की एक व्यक्तिगत क्षमता होती है। एक ही परिस्थिति में एक व्यक्ति विक्षिप्त हो सकता है जबकि दूसरा व्यक्ति सफलतापूर्वक उस स्थिति का सामना कर सकता है। जिसके कारण हर व्यक्ति के व्यवहार में अन्तर पाया जाता है। छात्र–छात्राओं में विशेष रूप से यह व्यवहारिक अन्तर देखने को पाया जाता है कि वे अध्ययन व शैक्षणिक समायोजन में बहुत ही आगे होते हैं लेकिन उनका समाज के साथ समायोजन ठीक ढंग से नहीं हो पाता है क्योंकि वे छात्र छात्राएँ जो शैक्षणिक समायोजन में अच्छे होते हैं वे उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति वाले होते हैं। इस प्रकार दिव्यांग विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्थिति उनकी समायोजनयों से संबंधित होते हैं।

प्रायः ऐसा देखा गया है कि कुछ दिव्यांग विद्यार्थी अच्छा अध्ययन करते हैं अध्ययन के लिए पर्याप्त समय देते हैं उनके अध्ययन करने में रूचि भी होती है परन्तु उनकी समायोजन प्राप्तांकों में असंतोषजनक गिरावट होती है कुछ छात्र ऐसे भी देखे गये हैं कि वे अध्ययन कम करते हैं उनकी अध्ययन करने में रूचि भी कम होती है फिर भी वे छात्र समायोजन प्राप्तांकों में श्रेष्ठता हासिल करते हैं। जिसके लिए उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति प्रमुख रूप से उत्तरदायी कारक होता है।

पहले शिक्षा केवल दर्शन पर ही आधारित थी लेकिन आज शिक्षा मनोवैज्ञानिक व सामाजिक आधार पर भी आधारित है। मनोवैज्ञानिक कारक व सामाजिक कारक दोनों समायोजन को पूरी तरह प्रभावित करती है क्योंकि वे दिव्यांग विद्यार्थी जो उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर वाले होते हैं इनकी समायोजन भी लगभग उतना ही अधिक होती है छात्र एवं छात्राओं में संवेदनशील, अप्रसन्नता, अज्ञानुकूलता, चिंता, सहनशीलता, प्रसन्नता व प्रभावपूर्णता तथा चिंतारहित कारक पूरी तरह से समायोजन को प्रभावित करते हैं। लिंग का प्रभाव शैक्षणिक समायोजन की मात्रा को प्रभावित करता है तथा क्षेत्रीय कारक जैसे ग्रामीण व शहरी भी शैक्षणिक समायोजन को प्रभावित करते हैं। भारतीय परिवेश में कुछ कार्य लिंग के आधार पर बंटे होते थे जिसके लिए केवल विशिष्ट वर्ग ही प्रशिक्षित किया जाता था। जैसे– युद्ध कौशल, सुरक्षा पाकशास्त्र गृह–विज्ञान से संबंधित कार्य परन्तु आधुनिक युग में ऐसा कुछ भी नहीं है कोई भी कार्य छात्र या छात्रा दोनों में से किसी को भी करने की स्वतंत्रता है जिसके लिए सामाजिक आर्थिक स्थिति पूरी तरह से उत्तरदायी कारक माना जाता हैं।

उद्देश्य :

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर दिव्यांग छात्रों के समायोजन पर उनके सामाजिक, आर्थिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर दिव्यांग छात्राओं के समायोजन पर उनके सामाजिक, आर्थिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पना :

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर दिव्यांग छात्रों के समायोजन पर उनके सामाजिक, आर्थिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव में सार्थक अन्तर नहीं है।
2. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर दिव्यांग छात्राओं के समायोजन पर उनके सामाजिक, आर्थिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव में सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि :

प्रस्तुत शोध अध्ययन वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि द्वारा सम्पादित किया गया है।

जनसंख्या :

प्रस्तुत अध्ययन की जनसंख्या आजमगढ़ जनपद के दो तहसीलों लालगंज एवं सदर में अध्ययनरत कक्षा 11 व 12 की छात्र व छात्रायें थी।

न्यादर्श : प्रस्तुत अध्ययन में कुल 500 दिव्यांग विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक न्यादर्श प्रतिचयन प्रविधि की लाटरी प्रणाली के द्वारा किया गया है।

शोध उपकरण : प्रस्तुत अध्ययन में माध्यमिक स्तर के दिव्यांग विद्यार्थियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति ज्ञात करने हेतु राजीव लोचन भारद्वाज द्वारा निर्मित सामाजिक–आर्थिक स्थिति मापनी का प्रयोग किया गया है।

1. Social Economics Status Scale (Rajeev Bhardwaj)
2. समायोजन अनुसूची (महेश भार्गव)

सांख्यिकीय तकनीक :

आंकड़ों के विश्लेषण हेतु काई वर्ग (x^2) परीक्षण की गणना की गई है।

विश्लेषण तथा व्याख्या :

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य ''उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत दिव्यांग विद्यार्थियों के समायोजन पर उनके सामाजिक आर्थिक स्तर के पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।'' के सापेक्ष निर्मित शून्य परिकल्पना ''उच्च तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति वाले दिव्यांग विद्यार्थियों के समायोजन के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है'' परीक्षण हेतु निम्नलिखित रूप में विश्लेषण किया गया है–

तालिका संख्या – 1

उच्च तथा निम्न सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति वाले दिव्यांग विद्यार्थियों की क्षेत्र व लिंग के संदर्भ में समायोजन की x^2 विश्लेषण तालिका

समूह	क्षेत्र आधारित		लिंग आधारित	
	ग्रा0 दिव्यांग विद्यार्थी	श0 दिव्यांग विद्यार्थी	छात्र	छात्राएँ
उच्च समूह	18	82	68	32
निम्न समूह	45	55	49	51
X^2	0.082		0.0003	
df(1) at .05 level of significant 3.841				

उपरोक्त विश्लेषण तालिका से स्पष्ट है कि उच्च तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति वाले ग्रामीण दिव्यांग विद्यार्थी समायोजन में औसत से ऊपर क्रमशः कुल 62 तथा 41 थे। जबकि शहरी दिव्यांग विद्यार्थियों की संख्या 89 और 74 थी। जिनसे अभिकलित काई वर्ग का मान 0.082 प्राप्त हुआ ठीक इसी प्रकार उच्च सामाजिक आर्थिक समूह के छात्र 68 और छात्राएँ 71 थी जबकि निम्न समूह के छात्र 49 और छात्राएं 51 जिनमें काई वर्ग का मान 0.0003 प्राप्त हुआ काई वर्ग के मान 0.05 सार्थकता स्तर df(1) के 3.841 से कम थे जिनके आधार पर शून्य परिकल्पना स्थापित हो जाती है और यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक आर्थिक स्तर क्षेत्र तथा लिंग का कोई प्रभाव औसत समायोजन से ऊपर के दिव्यांग विद्यार्थियों पर नहीं पड़ता है। ऐसा ही अध्ययन श्रीवास्तव (2007) तथा सिंह (2007) ने किया था जो प्रस्तुत अध्ययन का समर्थन करते हैं। इस परिणाम से यह स्पष्ट होता है कि समायोजन बुद्धि से प्रभावित होने वाला कारक है।

निष्कर्ष :

उच्च तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति के दिव्यांग विद्यार्थियों की समायोजन एक समान पाया गया। अर्थात माध्यमिक स्तर के छात्र–छात्राओं के सामाजिक–आर्थिक स्तर का उनके समायोजन पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया। माध्यमिक स्तर के छात्र–छात्राओं के सामाजिक–आर्थिक स्तर का उनके समायोजन पर लैंगिक आधार पर अन्तर नहीं पाया गया।

सन्दर्भ

1. पंडित के0एम0 : ''द एडजस्टमेंट प्राब्लम्स ऑफ द गिफ्टेड चिलड्रेन एण्ड देयर रिपेक्शन टू फ्रस्ट्रेशन पी–एच0डी0 साइको एम0एस0यू0 1973.
2. पाण्डेय राम कैलाश : ''अनुसूचित जाति तथा सामान्य जाति के छात्रों की अधिगम शैलियों एवं समायोजनयों का तुलनात्मक अध्ययन एम0एड0 लघु शोधप्रबन्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद 1988.
3. अग्रवाल, आर.एन. और अस्थाना : ''मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन'' विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा 1987.
4. आलपोर्ट, जी0डब्लू0 : पर्सनालिटी ए साइकोलोजिकल इन्टरप्रेटेशन हाल्ट एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क 1937.
5. आनन्द, सी0एल0 (1973) : ''मैसूर राज्य में बालकों की मानसिक योग्यता तथा समायोजनयों पर सामाजिक–आर्थिक वातावरण के प्रभाव का एक अध्ययन'' पी–एच0डी0 मैसूर विश्वविद्यालय, 1973 पेज 341.
6. तिवारी, उमेश चन्द्र (2005) : सामान्य बी0टी0सी0 एवं विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों के कार्य सन्तुष्टि पर उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर एवं व्यक्तित्व के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन'' पी–एच0डी0 वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, 2005.

भोजपुरी समाजः आधुनिकता व चेतना निर्माण

(प्रभु नारायण सिंह, प्लस टू शिक्षक, राजकीयकृत उच्च विद्यालय महुली सासाराम रोहतास)

आधुनिकता के विकास के सामाजिक स्तर पर संचरण एगो बहुआयामी प्रक्रिया ह। एकरा खातिर सामाजिक आ आर्थिक स्तरीकरण आ सशक्तीकरण बहुत जरूरी हऽ । सामाजिक स्तरीकरण जहाँ व्यक्ति आ समजा के बीच पनपे वाला सम्बन्ध के सकारात्मक, संतुलित आ विशेषीकृत बनावेला, ओइजे आर्थिक सशक्तीकरण संसाधन के उपलब्धता सुनिश्चित कइ के निर्माण प्रक्रिया के तीव्र, बहुआयामी, गतिशील तथा गैरसमस्यापरक बनावेला । कवनो व्यक्ति आ समाज, दूनो के संतुलित उपलब्धता के आधारे पर विकसित आ आधुनिक हो सकेलाद्य

भोजपुरी समाज में आजादी के बाद सामाजिक स्तरीकरण के प्रक्रिया में लगातार गतिशीलता रहल बा। जाति विभाजित समाज में पिछड़ी आ दलित जातियन के स्तरों में उल्लेखनीय सुधार भइल बा। लेकिन सामाजिक स्तरीकरण के तुलना में आर्थिक स्तरीकरण, उत्थान आ सशक्तीकरण के प्रक्रिया से लगभग सम्पूर्ण भोजपुरी समाज अछूता बा। आर्थिक स्तर पर व्यवस्था परक कमजोरी के कारण आजो ई एगो प्राक् – आधुनिक अर्थव्यवस्था में बा। खेती लगातार घाटा के सउदा भइल जात बा छोट आ मझोला किसान संसाधन तथा आर्थिक दक्षता के अभाव में उचित मात्रा में उत्पादन नइखन कइ पावत। जवन उत्पादन होतो बा, ओकरा के उचित मूल्य प्राप्ति खातिर ‘‘वेट ऐण्ड वाच‘‘ के पद्धति ना अपना पावे के कारन ऊ ओके औने–पौने दाम पर बेचे के मजबूर बाड़े।

शिक्षा व्यवस्था के स्थिति विसंगतिपूर्ण होखला के कारण रोजगार सृजन में लगातार बाधा आ रहल बा । बहुसंख्यक जनता के पास एतना आर्थिक क्षमता नइखे कि उ अपना लइकन के प्राइवेट पब्लिक स्कूल में भेज सके, सरकारी स्कूल में पढ़ाई के स्तर दयनीय बा। शिक्षा पद्धति क समस्यामूलक होखला के कारण बहुसंख्यक छात्र वर्ग में ऊ विवेक आ बौद्धिकता के निर्माण नइखे हो सकत कि ऊ विकसित आ आधुनिक समाज के निर्माण में आपन योगदान दे सके।

आधुनिकता के निर्माणकारी परियोजना के प्रमुख तत्व औद्योगिकीकरण से, ई सम्पूर्ण क्षेत्र लगभग अछूता बा । एह क्षेत्र में बड़े–बड़े कल कारखाना अउर तत्सम्बन्धित औद्योगिक संस्कृति के घोर अभाव बा। औद्योगिकरण अपना संगे गतिशीलता पेशेवरपन आ कार्य–संस्कृति के विकास करेला । एकरा अभाव में भोजपुरी क्षेत्र में वैकल्पिक रोजगार सृजन के संभावना ना के बराबर बा, कार्य–संस्कृति के समुचित विकास न भइला के फलस्वरूप जड़ता

आ बेकारी लगातार बढ़ रहल बा। छोट मोट उद्योग धन्धा एकदम चौपट हो गइल बाड़े। ग्रामीण समाज के उ वर्ग जवन खेती के अलावा दस्तकारी, सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, बर्तन निर्माण आदि

छोट–छोट काम करके आपन जीवन–यापन करत रहे ऊ आर्थिक विपन्नता के कगार पर खड़ा बा आ दोसर रोजगार सृजन खातिर संघर्ष कर रहल बा।

आधुनिक समाज में धन के संचरण जेतना तेजी से होला, (बाजार में धन आवाहाजाही के स्रोत जेतना अधिक होला) विकास के प्रक्रिया ओतना तेजी से बढ़ेला। लेकिन इहाँ अइसन बात नइखे। बहुसंख्यक जनता के पास त समुचित मात्रा में धने नइखे आ जेकरा पास बा, ऊ ओके लेके बाहर निकल जात बा। अगर बाजार में लगावतो बा त ओकर फायदा ”ट्रिकिल डाउन“ (नीचे तक रिसाव) तक ना होके ‘‘अपर लेयर‘‘ (उपरी स्तर) तक रह जात बा। भोजपुरी समाज में मुक्त आर्थिक प्रतिस्पर्धा के अभाव तथा संरक्षित पूंजी के फलस्वरूप श्रम के उचित मूल्य नइखे, ना आर्थिक व्यवस्था में कवनो आधुनिक हलचल बा।

आधुनिक के महत्वपूर्ण मानक बाजार के भोजपुरी समाज पर प्रभाव लगभग एकस्तरीय आ असंतुलित बा। पूंजीवादी विकास प्रक्रिया के अंतर्विरोध बाजार के रास्ते एह समाज के उपर सकारात्मक कम, नकारात्मक प्रभाव ज्यादा पैदा कर रहल बा । बाजार के प्रभाव से सांस्कृतिक संक्रमण के स्थिति त जरूर पैदा भइल बा, परन्तु सांस्कृतिक परिवर्तन के प्रक्रिया विकृति मूलक हो गइल बा । आर्थिक ढांचा कमोवेश प्राक्–आधुनिक बा। गांवन में खेती के ढर्रा अभी भी पारंपरिक बनल बा। कस्बों में छोटे–छोटे व्यवसायी संतुलन एवं समृद्धि खातिर संघर्ष करत बाड़े। शहर में उहे व्यवसायी फायदा में बाड़े जेकरा पासे एतना आर्थिक विकल्प बा कि ऊ बाजार के मांग के हिसाब से अपना व्यवसाय के ढाल सकसु । मुनाफा के फलस्वरूप उत्पन्न धन के एगो बहुत बड़ मात्रा जमाखोरी आ कालाबाजारी में जा रहल बा जवना कारण रिलक्टेन्ट आ इमर्जेन्ट व्यापारी वर्ग के बाजार में प्रवेश बहुत मुश्किल बा।

कुल मिलाके आर्थिक स्तरीकरण के प्रक्रिया स्थिरीकरण के शिकार हो गइल बा। ऊपरी स्तर पर देखला प इ लाग सकेला कि एगो बहुत बड़ वर्ग नौकरी या नवीन व्यवसाय के क्षेत्र में आइल बा आ पहिले के अपेक्षा काफी समृद्धों भइल बा। बाकि वास्तव में ई समृद्धि के कवनो समकालीन अर्थ या समसामयिक महत्व नइखे । एह नव–विकसित मध्य वर्ग के आर्थिक स्तर आज के मांग के हिसाब से नइखे बढ़ल, काहे कि जवना तेजी से ऊ एह समृद्धि के प्राप्त कइले बा ओकरा से कहीं ज्यादा तेजी से समृद्धि के मानक आ बाजार के ‘‘पैराडाइम“ (प्रतिमान) बदल गइल बाड़े। वास्तव में, ओकरा स्थिति या बाजार के मांग के बीच के फांक अभी भी बनल बा स्वरूप भले बदल गइल होखे। कुल मिलाके जवना

वर्ग के आधार पर ई सिद्ध कइल जाता कि गरीबी मिट रहल बिया आ समृद्धि आ रहल बा, ओकरा विकास के प्रक्रिया अभी भी काफी धीमा, आ स्तर थोपल आ अपर्याप्त बा।

भोजपुरी क्षेत्र में वैचारिक जड़ता भा राजनैतिक अवमूल्यन के कारण आर्थिक स्तरीकरण में व्याप्त मानकन, के एगो आधुनिक आ गतिशील अर्थव्यवस्था के अनुकूल बनावे के कवनो खास कोशिशो नइखे दिखाई देत एह असंतुलन के फलस्वरूप आधुनिक सभ्यता के निर्माण आ एगो आधुनिक समाज के रूप में भोजपुरी समाज के मूल्यांकन कइला प दुविधापूर्ण आ दिशाहीन समाज के रूप में ई सामने आवत बा। एगो अइसन समाज जवना के मूल्य चेतना दुविधाग्रस्त बा, विकास के प्रक्रिया जड़ताग्रस्त बा आ लगातार असुरक्षा के बोध बढ़ल जात बा। आधुनिकता के विकासमूलक महाख्यान लगातार असफलता के तरफ बढ़ रहल बा आ चेतना निर्माण के प्रक्रिया संकट में बा स्तरीकरण में लगातार बढ़ रहल असंतुलन के फलस्वरूप अइसन मूल्यहीन परिवेश के निर्माण हो रहल बा जहाँ सामाजिक संस्कृति के दंश भरे वाला भोजपुरी समाज में लगातार एकाकीपन आ क्षणवादी परिवेश बनल जात बा। ”जेनरेशन गैप“ आ परंपरा तथा आधुनिकता के द्वंद के बीच सुरक्षित आ भविष्यवादी ढर्रा निकाले के खातिर बहुत व्यापक पैमाना पर प्रयास के जरूरत बा। अगर ई उपाय ना होई त भोजपुरी समाज के भविष्य अंधकारमय बा । जरूरत बा। अगर सामाजिक आ आर्थिक स्तरीकरण के प्रक्रिया के संतुलित आ जनोन्मुख बनावे के, तबे आधुनिकता के विकासवादी प्रोजेक्ट सफल हो पाई। एह काम में सरकारी व्यवस्था ले ढेर भोजपुरी क्षेत्र के रहे वालन में बोध ज्ञान आ जागरूकता के जरूरत बा।

प्रतापगढ़ की अवधी चेतना

(डॉ. दुर्गाप्रसाद ओझा)

प्रतापगढ़ जनपद अपनी राजनीतिक, साहित्यिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना के लिए सदैव सुप्रसिद्ध रहा है। भारतीय राजनीतिक आन्दोलन और भारतीय पत्रकारिता के पृष्ठों को जब भी उलटकर देखा जायेगा, दैनिक 'हिन्दोस्थान' की परिकल्पना एवं प्रकाशन के लिए, कालाकांकर नरेश राजा रामपाल सिंह का नाम सबसे पहले दिखेगा। प्रतापगढ़ के पूर्वांचल में पट्टी तहसील में स्थित 'दाऊदपुर' नामक स्थाान से बाबा रामचन्द्रदास ने 'किसान आन्दोलन' की शुरूआत की थी और पट्टी के ही निकट 'झिंगुरे' गाँव में पहली–पहली बार जनसभा को सम्बोधित करके विश्वविख्यात राजनेता पं0 जवाहरलाल नेहरू ने अपने राजनीतिक जीवन की। इसी गाँव का एक किसान उस दिन जवाहरलाल जी को अपने कन्धे पर बैठाकर 'कहला' गाँव तक ले गया था, जहाँ उन्होंने दूसरी जनसभा सम्बोधित की थी। 'झिंगुरे' और 'कहला' दोनों जगहों पर आज 'शहीद स्मारक' बने हुए हैं। 'किसान आन्दोलन' से सम्बन्धित जनसभा के लिए एकत्र समूह पर 'बीरापुर' स्टेट के राय कृष्णपाल सिंह और रानीगंज थाने के दारागो के आदेश पर चलायी गयी गोलियों से तीन–चार किसान सभास्थल पर ही शहीद हो गये थे। उसी याद को ताजा करता है 'कहला' और 'शहीद स्मारक'।

एक समय उत्तर प्रदेश की राजनीति में पं0 मुनीश्वरदत्त उपाध्याय का नाम बहुचर्चित था। कभी भी ऐसा नहीं रहा जब देश अथवा प्रदेश के शासन में प्रतापगढ़ के चार–छह सक्रिय जनजनायकों का वर्चस्व न रहा हो। कालाकांकर के राजा दिनेश सिंह केन्द्रीय मंत्रिमंडल में कैबिनेट मंत्री रह चुके हैं और उत्तर प्रदेश के मंत्रिमंडल में राजा अजितप्रताप सिंह, श्रीयुत प्रमोद कुमार तिवारी विशिष्ट मंत्रि पद को प्रतिष्ठित कर चुके हैं। उत्तर प्रदेश विधानसभा के पूर्व अध्यक्ष श्री नियाजहसन और प्रदेश योजना आयोग के पूर्व उपाध्यक्ष श्री रामनरेश शुक्ल प्रतापगढ़ की माटी की ही उपज है। प्रतिभा सम्पन्न पं0 रामअंजोर मिश्र, डॉ. राजेश्वरसहाय त्रिपाठी भी इसी माटी के दिये हुए हैं।

प्रतापगढ़ में जन्म आचार्य भिखारीदास का नाम अपने साहित्यिक अवदान के कारण हिन्दी साहित्य के 'रीतिकाल' में अमर है। कालाकांकर की माटी की सुगन्ध से आप्यायित रचनाओं–नौकाविहार, ग्रन्थि, ग्राम्या, युगवाणी आदि के कारण पन्त जी आधुनिक हिन्दी साहित्य के देदीप्यमान नक्षत्र बने हुए हैं। धर्म एवं साहित्य दोनों के मूर्तैरूप स्वामी 'करपात्री' जी एवं शिवहर्ष ओझा 'ब्रह्मचारी जी' को कौन भूल सकता है? यहीं के गुलाब खण्डेलवाल, ओमप्रकाश खण्डेलवाल, पं0 आद्याप्रसाद 'उन्मत', जुमई खाँ 'आजाद', अनीस देहाती, डॉ. कामताप्रसाद त्रिपाठी, मत्स्येन्द्र शुक्ल, निर्झर आदि इत्यादि अनेक प्रतिभापुत्रों ने अपनी लेखनी से साहित्य को समृद्ध बनाया है।

प्रतापगढ़ जनपद के दाऊदपुर, अजगरा, हण्डौर, श्रृंगवेरपुर, घुसमेश्वरनाथ, शनिदेव धाम, बेल्हा, संडवा चन्द्रिका आदि स्थान अपने ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्व के लिए विख्यात है। किसान आंदोलन के लिए दाऊदपूर का नाम सदैव याद किया जायेगा। रानीगंज अजगरा में वह तालाब है जहाँ यक्ष ने धर्मराज युधिष्ठिर से प्रश्न किये थे। पुरातात्विक जानकारी हेतु रानीगंज में कई बार उत्खनन कार्य हो चुका है। हण्डौर वह प्रसिद्ध स्थल है, जहाँ महाभारतकालीन 'हिडिम्बा' रहती थी। लाखागृह से पाण्डवों के जीवित बच निकलने के बाद छिपकर विचरते हुए 'महाबली भीम' को यही कहीं हिडिम्बा मिली होगी। अजगरा और हण्डौर के बीच की करीब 9–10 किमी. की दूरी का नैकट्य और दोनों स्थानों का पाण्डवों से सम्बन्ध यह द्योतित करता है कि अवश्य ही यहाँ की धरती पर पाण्डवों के श्रृंगवेरपुर वह स्थान है जहाँ से मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम को वनगमन के समय केवट गुह ने गंगापार कराया था। आज श्रीराम के साथ निषादराज गृह भी ऐतिहासिक पुरूष बन गया है। घुसमेश्वरनाथ प्रसिद्ध शिव स्थान है और इसी कारण उ0प्र0 का मनोरम पर्यटन स्थल है। इस नपद के लोगों में इस बात के प्रति अगाध विश्वास है कि 'घुइसरनाथ' के भोले बाबा शंकर, बेल्हा की देवी–'बेल्हामाई' और सण्डवा चन्द्रिका की 'चन्द्रिकन' देवी मनवांछित फल देने वाली हैं। स्पष्टतः ये सभी स्थल इतिहास की धरोहर है।

किन्तु हमारा विवेच्य विषय 'प्रतापगढ़ जनपद ी साहित्यिक चेतना' है इसलिए हम इस प्रलेख में मात्र साहित्यिक अवदान पर विचार करेंगे। प्रतापगढ़ में अनेकानेक साहित्य सेवी पैदा हुए, पले–बढ़े और अपनी रचनात्मक मनीषा से साहित्य को सम्पन्न बनाया। उन्हीं पर एक दृष्टिपात प्रासंगिक है।

आचार्य भिखारीदास : हिन्दी साहित्य के 'उत्तरमध्ययुग' (रीतिकाल) के प्रमुख आचार्यों एवं कवियों में आचार्य कवि भिखारीदास का महत्वपूर्ण स्थान है। ये प्रतापगढ़ जिला मुख्यालय के पास करीब 2 किमी. पश्चिम, लखनऊ मार्ग पर स्थित है, टयोंगा गाँव के श्रीवास्तव कायस्थ थे। इनके पिता का नाम कृपालदास था। अपनी कृति 'काव्यनिर्णय' में उन्होंने अपना सम्पूर्ण वंश परिचय दिया है। इसी कृति में भिखारीदास जी ने अपनी कृति 'काव्यनिर्णय' में अपना सम्पूर्ण वंश परिचय दिया है। इसी कृति में भिखारीदास जी ने प्रतापगढ़ के सामवंशी राजा पृथ्वीपति सिंह के भाई बाबू हिन्दूपति सिंह को अपना आश्रयदाता लिखा है। इनके जन्मकाल एवं मृत्युकाल दोनों का ठीक–ठीक निश्चय नहीं हो पाया है। कुछ लोगों का अभिमत है कि इनकी मृत्यु भभुआ जिला आरा (बिहार) में हुई थी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ में भिखारीदास के निम्नलिखित ग्रंथों का उल्लेख किया है–1. रस–सारांश, 2. छंदोर्णय–पिंगल, 3. श्रृंगार निर्णय, 4. काव्यनिर्णय, 5. नामप्रकाश (कोश), 6. विष्णु पुराण भाषा, 7. छंदप्रकाश, 8. शतरंजशतिका और 9. अमरप्रकाश (संस्कृत अमरकोश भाषा, पद्य में)।

मिश्र बन्धुओं ने 'मिश्रबन्धु विनोद' में भिखारीदास ने एक स्थल पर भिखारीदास के सात ग्रन्थों का उल्लेख किया है। इसके आधार पर इन सात ग्रन्थों–1. काव्यनिर्णय, 2. श्रृंगारनिर्णय, 3. छन्दोर्णव पिंगल, 4. विष्णुपुराण, 5. रससारांश, 6. अमरकोश (शब्द नाम प्रकाश) तथा शतरंजशतिका के प्रामाणिक होने में कोई सन्देह नहीं रहना चाहिए।

उपर्युक्त ग्रन्थों में से 'रससारांश' में रस का प्रसंग है, जिसके अंतर्गत नायक–नायिका भेद का विस्तारपूर्वक वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें नायिकाओं के हावभावादि, सात्विक अलंकारों, अन्य रसों तथा भावाभास आदि का भी निरूपाण है। 'श्रृंगारनिर्णय' में मुख्यरूप से श्रृंगाररस विषयक सामग्री प्रस्तुत की गयी है। 'काव्य निर्णय' इनका प्रमुख ग्रन्थ है। यह रीतिशास्त्र का सर्वांगपूर्ण ग्रन्थ है क्योंकि इसमें ध्वनि, रस, अलंकार, गुणदोष तुक आदि सभी का विवेचन किया गया है। 'छन्दोर्णव पिंगल' छनदशास्त्र का ग्रन्थ है और हिन्दी के छन्दशास्त्रीय ग्रन्थों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। अन्य ग्रन्थों में एक (अमरकोश) शब्दकोश है, दूसरा (विष्णुपुराण) अनुवाद तथा तीसरा (शतरंजशतिका) शतरंज पर लिखा गया है। 'नामप्रकाश' संस्कृत के अमरकोश के ढंग का हिन्दी कोश ग्रन्थ है। यह चार सौ पृष्ठों का एक भारी भरकम ग्रन्थ है जिसमें विभिन्न छन्दों में शब्दों के पर्यायवाची शब्द दिये गये हैं। उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि काव्यांगों के निरूपण में भिखारीदास का स्थान प्रमुख है क्योंकि इन्होंने रीतिकालीन अन्य कवियों की तुलना में रस, छनद, अलंकार, रीति, गुणदोष, शब्दशक्ति आदि विषयों का विस्तृत वर्णन किया हे।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का अभिमत है कि 'आचार्यत्व के क्षेत्र में औरों को देखते दास जी ने अधिक काम किया है, पर सच्चे आचार्य का पूरा रूप इन्हें भी नहीं प्राप्त हो सका है। .....दास जी भी औरों के समान वस्तुतः कवि रूप में ही हमारे सामने आते हैं। किन्तु सच यह है कि आचार्य भिखारीदास की प्रतिभा में आचार्यत्व एवं कवित्व दोनों का मणिकांचन सहयोग है। काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के प्रतिपादन में आचार्य भिखारीदास ने सारगर्भित बातें लिखी हैं। दो–एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

एक लहैं तपपुंजनि के फल ज्यों तुलसी अरू सूर गोसाई।

एक लहैं बहु सम्पति केशव भूषन ज्यों बरबीर बड़ाई।

एकनि को जस ही सों प्रयोजन है रसखानि रहीम की नाँई।

दास कवित्तनि की चरचा बुधिवन्तनि को सुख दै सब ठाँई।

काव्य प्रयोजन के अंतर्गत संस्कृत के आचार्यों ने काव्य के भिन्न–भिन्न प्रयोजन स्वीकार किये हैं। इनमें से कुछ प्रेरणा रूप आन्तरिक हैं और कुछ प्रयोजन रूप बाह्य। आचार्य भिखारीदास

ने दोनों का सामंजस्य प्रस्तुत करते हुए उक्त छनद में बड़ी अच्छी बात कही है। इसी तरह काव्यहेतुओं के सम्बन्ध में आचार्य भिखारीदास का निम्नलिखित पद कितना सटीक है :

सक्ति कवित्त बनाइबे की जिहि जन्मनछत्र में दीन्हि विधातैं।

काव्य की रीति सिख्यौ सुकवीन सों देखी सुनी बहलोक की बातें।।

दास जी जामें इकत्र ये तीन्यौ बनै कविता मनरोचक तातैं।

एक बिना न चलै रथ जैसे, धुरन्धर सूत की चक्र निपारौ।।

जहाँ तक दास जी की कविताओं के शिल्प पक्ष की बात है– 'दास जी ने साहित्यिक और परिमार्जित भाषा का व्यवहार किया है। ....भाषा में शब्दाडम्बर नहीं है। न ये शब्द चमत्कार पर टूटे हैं, न दूर की सूझ के लिए व्याकुल हुए हैं। इनकी रचना कलापक्ष में संयत और भावपक्ष में रंजनकारिणी है। .....जिस बात को ये जिस ढंग से चाहे वह ढंग बहुत विलक्षण न हो कहना चाहते थे, उसको उस ढंग से कहने की पूरी सामर्थ्य इनमें थी।'

इस कथन की सत्यता का परीक्षण भिखारीदास की कविताओं को सामने रखकर किया जा सकता है। एकाध उदाहरण देखें :

नैनन को तरसैए कहाँ लौं, कहाँ लौं हियौ विरहागि मैं तेए?

एक घरी न कहूँ कलपैए, कहाँ लग प्रानन को कलपैए?

आवै यही अब जी में विचार, सखी चलि सौतिहुँ के घर जैए।

मान घटे ते कहा घटिहै, जु पै प्रानपियारे को देखन पैए।

नायिका नायक के वियोग में अत्यन्त व्यथित है। नायक के दर्शन हेतु उसके नेत्र तरस रहे हैं। हृदय में वरहाग्नि प्रज्वलित है। एक क्षण के लिए भी उसे शान्ति नहीं मिलती। ऐसी स्थिति में वह अपनी अंतरंगिणी सखी से कहती है कि कहाँ तक नानाविध दुःख सहे जायँ, कहाँ तक प्राणों को तरसाया जाय। अब तो मेरा मन कहता है कि मैं सौत के ही घर चली जाऊँ। मान घटे तो घटे और फिर मान घटने से क्या घट जायेगा, कम से कम प्राणप्रिय का दर्शन तो मिल जायेगा। यहाँ कवि ने बड़ी सरल और सीधी भाषा में नायिका के मनोभावों को व्यक्त किया है जो सुनने वाले के अंतर्मन को भी भावविगलित कर देता है।

इसी तरह निम्नोद्धृत पंक्तियों में भी नायिका की आँखों की विवशता, दयनीयता, निर्लज्जता एवं विलक्षणता का सीधी सरल भाषा में मर्मस्पर्शी चित्रण भावनीय है :

अँखियाँ हमारी दईमारी सुधि–बुधि हारी, मोहूँ ते जु न्यारी, दास रहैं सब काल में।

कौन गहे ज्ञानै, काहि सौंपत सयाने, कौन लोक ओक जानै, ये नहीं है निज हाल में।

प्रेम पगि रहीं, महामोह में उमगि रहीं, ठीक ठगि रही, लगि रहीं वनमाल में।

लाज को अँचै के, कुलधरम पचै के वृथा, बंधन सँचै के, भईं मगन गोपाल में।

कलाकार के अंदर जो अनासक्ति की भावना उसे श्रेष्ठ बनाती है, वह दास जी में पूरी तरह से थी– 'आगे के सुकवि रीझिहैं तो कविताई, न त राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानी है।' से यह सुस्पष्ट है। वास्तविकता तो यह है कि भिखारीदास जी रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में हैं और प्रमुख आचार्यों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

कालाकांकर का महत्व : भारतीय इतिहास में पत्रकारिता, राष्ट्रीय चेतना एवं साहित्यिक वैभव की दृष्टि से प्रतापगढ़ के ग्रामीण अंचल कालाकांकर का नाम युग युगान्तर तक अमर रहेगा। राष्ट्रवादी चेतना एवं देशप्रेम की भावना से सम्पन्न दैनिक 'हिन्दोस्थान' का प्रकाशन यहीं से हुआ था। इसी 'हिन्दोस्थान' द्वारा आधुनिक पत्रकारिता की नई–नई स्वस्थ परम्पराएं स्थापित हुई और अनेकानेक प्रतिभाएं दीक्षित होकर नामीगिरामी सिद्ध हुई। कालाकांकर अपनी बस्ती के लिए तो शायद ही कभी प्रसिद्ध रहा होगा, लेकिन यहाँ के राजवंश के देशप्रेम तथा कलाप्रवृत्ति के लिए यह सदा से जाना जाता रहा है। आज कालाकांकर कवियों कलाकारों भावकों के लिए इसलिए भी दर्शनीय है क्योंकि वर्षों तक इस मनोरम भूमि से प्रकृति के सुकुमार कवि कलाकार श्री सुमित्रानन्दन पन्त का रागात्मक एवं आत्मीय सम्बन्ध रहा है।

दैनिक 'हिन्दोस्थान' : यह कालाकांकर–प्रतापगढ़ जनपद के सुदूर पश्चिमान्त में गंगातट पर स्थित नगर से निकलने वाला हिन्दी का प्रथम दैनिक पत्र था। हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास में दैनिक हिन्दोस्थान की महत्त अप्रतिम है। सन् 1885 में भारतवर्ष में दो महान् घटनाएं हुई–1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' की स्थापना और 2. कालाकांकर से 'हिन्दोस्थान' का प्रकाशन। दोनों के मूल में निहित उद्देश्यों एक ही था– दैनिक 'हिन्दोस्थाान' का प्रारंभ 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' के उद्देश्यों को प्रकाशित प्रसारित करने के लिए ही किया गया था। इस सत्य का प्रमाण यह है कि 'हिन्दोस्थान' पत्र भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना करने वाले राष्टभक्तों में प्रमुख तत्कालीन कालाकांकर नरेश राजा रामपाल सिंह तथा मनीषी चिंतक महामना पं0 मदनमोहन मालवीय की ही परिकल्पना का सुपरिणाम था।

प्रारम्भ में 'हिन्दोस्थान' का सम्पादन मालवीय जी ने लगभग तीन वर्षो तक किया। उन दिनों वे प्रयाग छोड़कर कालाकांकर में ही रहते थे। 'रविवासरीय संस्करण' का संपादन राजा साहब स्वयं

करते थे। तीन वर्षों के उपरांत मालवीय जी जब कालाकांकर छोड़कर प्रयाग जाने लगे तब 'हिन्दोस्थान' का संपादन भार उन्होंने बालमुकुन्द गुप्त को सौंपा था। इसके संपादक मंडल में, समय–समय पर उस समय के चोटी के विद्वान् एवं पत्रकार सम्मिलित हुए। पं0 प्रतापनारायण मिश्र, शशिभूषण चटर्जी, अमृतलाल चक्रवर्ती, लालबहादुर बी.ए., गोपालराम गहमरी, पं0 गुलाबचन्द्र चौबे, पं0 शीतलाप्रसाद उपाध्याय, ठाकुर रामप्रसाद सिंह, बाबू शिवनारायण सिंह आदि प्रतिभाओं ने इस पत्र से अपने को जोड़कर अपना एवं पत्र का मान संवर्द्धन किया। हिन्दोस्थान के संपादक मंडल के सदस्य 'नवरत्न' के रूप में प्रसिद्ध थे। यह नवरत्न संपादकीय मंडल हिन्दी जगत् में ऐतिहासिक था। बाद में इस मंडल के अधिकतर सदस्यों ने स्वतंत्र रूप से यशस्वी समाचारपत्रों का संपादन कर हिंदी पत्रकारिता को अग्रसर किया।

राजा रामपाल सिंह ने इस पत्र को सबसे पहले लंदन (ब्रिटेन) में निकालना प्रारम्भ किया था। वहाँ यह पत्र त्रैमासिक था। भारत में आकर उन्होंने इसे पहले साप्ताहिक और बाद में दैनिक पत्र का स्वरूप दिया। पत्र 'हिन्दोस्थान' हिन्दी पत्रकारिता और 'भारतीय स्वतंत्रता संग्राम' दोनों के लिए अपूर्व वरदान सिद्ध हुआ। इस पत्र का उपादेयता एवं इसके महत्व का अनुमान निम्नलिखित बातों से लगाया जा सकता हैः

1. अपनी प्रारम्भिक स्थिति में यह पत्र कांग्रेस का प्रबल समर्थक था (उन दिनों यह बड़ी बात थी)। पं प्रतापनारायण मिश्र ने 1891 में कांग्रेस की प्रशस्ति में एक कविता लिखी थी, शीर्षक था 'जय जयति भगवति कांग्रेस'। कांग्रेस की प्रशंसा में लिखी गयी यह पहली कविता थी।
2. इस पत्र में मालवीय जी को वह गरिमा और दीक्षा प्राप्त हुई, जिससे वे राजनीति, पत्रकारिता, समाजसेवा और साहित्य सृजन के क्षेत्र में अद्वितीय प्रमाणित हुए। वे निर्विवाद महनीयता, उत्कृष्ट लोकसेवा, निष्कलंक चरित्र तथा असंदिग्ध देशभक्ति से सम्पन्न बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी बन सके। (इसका यह मतलब नहीं कि हिन्दोस्थान में आने से पहले मालवीय जी को पत्रकारिता का कोई ज्ञान नहीं था।)
3. 'हिन्दोस्थान' के ही कारण कालाकांकर बहुत दिनों तक विद्याकेन्द्र बना रहा।
4. पं0 प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, अमृतलाल चक्रवर्ती, पं0 रूद्रदत्त सम्पादकाचार्य, गोपालराम गहमरी जैसे अनेक पत्रकार 'हिन्दोस्थान' से अलग होकर हिन्दी पत्रकारिता जगत् में स्वनामधन्य सिद्ध हुए। उन्होंने हिन्दी पत्रकारिता को एक स्वस्थ सुदृढ़ परम्परा प्रदान की। आगे चलकर अमतृतलाल चक्रवर्ती ने 'बंगवासी', वेंकटेश्वर समाचार तथा भारतमित्र में सम्पादन कार्य किया। बालमुकुन्द गुप्त ने सरस्वती के प्रकाशन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।
5. 1 नवम्बर, 1885 से अपनी यात्रा प्रारम्भ करने वाला 'हिन्दोस्थान' सन् 1908 तक अनवरत अपने लक्ष्य पथ पर अग्रसर होता रहा। 23 वर्षो की इस सुदीर्घ जीवन यात्रा में वह हिन्दी

की अस्मिता का प्रबल पक्षधर था। उसने हिन्दी के प्रचार प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। राजा साहब का आत्मकथ्य इसका ज्वलन्त प्रमाण है :

हिन्दी भाषा में जदपि, प्रचलित पत्र अनेक।

ये है हिन्दोस्थान ही, तामे दैनिक एक।।

डॉ0 लक्ष्मीशंकर व्यास के शब्दों में 'राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार को अग्रसर करने तथा राष्ट्रीय विचारधा की भावना उत्पन्न करने में इस पत्र का योगदान स्मरणीय रहेगा।'

6. 'हिन्दोस्थान' अपनी गरिमा के अनुरूप समग्र भारत और भारतीय लोगों की हित चिन्तना का सदैव ध्यान रखता था। कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायेगी :

1. इस पत्र के माध्यम से राजासाहब ने ब्रिटिश संसद में भारतीयों को प्रतिनिधित्व देने की जोरदार मांग की थी। 31 मई, 1887 के अंक के अनुसार, सम्पूर्ण भारत प्रतिनिधित्व की मांग करता है तथा आशा करता है कि ब्रिटिश सरकार अवश्य ही इस मांग को मानकर भारतीयों को आभारी बनायेगी।
2. 'हिन्दोस्थान' ने वायसराय के लखनऊ आगमन पर हुए व्यय की आलोचना करते हुए लिखा था : 'ताल्लकेदार सभा, हुसैनाबाद एंडोमेंट और म्युनिसिपल बोर्ड आदि ने लगभग एक लाख 95 हजार रूपये व्यय किये। इस व्यय से सभी ताल्लुकेदार ऋणी हो गये।
3. मालवीय जी की सम्पादकीय नीति का प्रधान लक्ष्य था 'भारत की स्वतंत्रता'। एक तरह से उन 'हिन्दोस्थान' के माध्यम से कालाकांकर राष्ट्रीय जागरण का प्रमुख केन्द्र बन गया था।

'सम्राट' और राजा रमेश सिंह : कालाकांकर राज्य से प्रकाशित होने वाला यह दूसरा पत्र था। इस साप्ताहिक पत्र का प्रारम्भ कालाकांकर राज खानदान के राजा रमेश सिंह द्वारा 30 मार्च, 1908 को रामनवमी पर्व पर किया गया था। यह पत्र भी 'हिन्दोस्थान' के ही समान साहित्यिक गतिविधियों को प्रश्रय देने वाला था किन्तु 'हिन्दोस्थान' को जहाँ अनेकानेक साहित्य महारथियों की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ वहाँ सम्राट को मात्र पं0 बालकृष्ण भट्ट का सानिध्य सुख उपलब्ध हुआ। सन् 1910 में राजा रमेश सिंह की मृत्य हो जाने पर यह पत्र बन्द हो गया।

राजा रमेश सिंह सम्पादक और पत्रकार के साथ–साथ उत्कृष्ट कोटि के साहित्यकार भी थे। उनके द्वारा रचि अनेक कृतियों में नौ कृतियां आज भी उपलब्ध हैं। ये हैं– रमेश शतक, फाग नहीं समर, पुत्रशोक, ऋतुविलासिका (संस्कृत), पंचानन पंचकम् (संस्कृत), विष्णु विनयम् (संस्कृत), पूर्तिप्रभा, रमेश रहस्य तथा ऋतुसंरूपक। उदाहरण के तौर पर उनकी एक रचना प्रस्तुत है :

पात कुसासन चारू बिछाय, सरीर पराग विभूति रमाइ के,

पैन्हि अली अली माल मली, वर कुन्दकली तिरपुंड लगाइ के,

त्यों धरि कन्ध कमण्डल पास में, कोकिल श्रुंगी 'रमेश बजाइ के,?

है भगवन्त को ध्यान लगाये, बसन्त सुसन्त इकन्त में आइ के।

यहाँ वसन्त रूपी सुसन्त के ध्याल लगाने का बड़ा मनोरम वर्णन है।

शिवहर्ष ओझा 'ब्रह्मचारी जी' : उपमन्यु ऋषिवंशीय श्री ब्रह्मचारी जी का जन्म सन् 1885 में बेलखरनाथ धाम के करीब अहियापुर गांव में हुआ था। अपने जन्म के सम्बन्ध में 'ब्रम्हचारी जी' ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'श्रीकृष्णायनमानस' में लिखा है कि :

नेत्र वेद नव शशि विक्रम के। भयउ जन्म रवि हरि संक्रम के।।

भादौं कृष्ण तिथी हरिवासर। भृगु दिन सार्द्धधिं याम दिवाकर।।

'अकानाम वामतो गतिः' सूत्र के अनुसार उपर्युक्त चौपाई विक्रम सम्वत् 1942 (तदनुसार सन् 1885) की भादों मास कृष्णपक्ष की एकादशी, दिन शुक्रवार, प्रातःकाल में जन्म का समय प्रमाणित करती है।

ब्रह्मचारी जी की कीर्ति का स्तम्भ उनके द्वारा सृजित अवधी कृति 'कृष्णायनमानस' है। यह महाकाव्यात्मक कृति 37 तरंगों में विभाजित है। 'श्रीरामचरितमानस' के शैली शिल्प पर रचित यह कृति श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण जीवन पर आधारित है। अप्रकाशन की स्थिति में यह अब तक सामाजिक पाठक के लिए अनुपलब्ध है। सम्प्रति यह कृति मुद्रणाधीन है और बहुत जल्दी ही 'प्रकाशन केन्द्र' लखनऊ से प्रकाशित हो रही है। इस कृति में उपस्थित निम्नलिखित पंक्तियों से इस कृति के भाववैभव और भाषा शिल्प का अन्दाजा लगाया जा सकता है :

अद्भुत रूप देखि पितु माता। परम मनोहर सुन्दर गाता।।

निज आयुध भुज चारि विराजै। क्रीट मुकुट सिर सुभग सुछाजै।।

पीताम्बर सुकंठ वनमाला। सवननि कुंडल परम बिसाला।।

आभूषण सब विविध प्रकारा। रूप देखि बहुत लाजत मारा।।

तेहि छबि बरनि कहौं केहि भांती। ता सम और कि कतहुँ दिखाती।।

जासु रोम प्रति अण्ड अनेका। भनत नेति निगमागम जेका।।

ताकी छबि किमि पटतरि कहहूँ। भांति अनेक हास्यपद गहहूँ।।

एक एक रोमहुँ पर जाके। बहुसत कोटिकु नहि सम ताके।।

डॉ. शिवमूर्ति शर्मा : जन्म प्रतापगढ़ जनपद की कुण्डा तहसीलान्तर्गत ग्राम 'भटपुरवा लोहियन' में सन् 1941 में। प्रारम्भिक शिक्षा गांव की पाठशालाओं में। उच्च शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से। हेमवतीनन्दन बहुगुणा स्ना.महा. लालगंज प्रतापगढ़ के प्राचार्य से सेवानिवृत्त। इनकी प्रमुख प्रकाशित रचनाएं हैं : 1. उजड़े लोग (उपन्यास), 2. छोटे नेता बड़े नेता, 3. उधार का बेटा (दोनों काव्यकृतियाँ), 4. अपनी अपनी डफली अपना अपना राग (उपन्यास), 5. निराला, 6. संस्कृत साहित्य का इतिहास, 7. हिन्दी साहित्य का प्रवृत्यात्मक इतिहास, 8. कबीर और जायसी, 9. पद्मावत, और 10. साकेत समीक्षा। इनमें क्रमसंख्या 4 तक की कृतियां रचनात्मक साहित्य और शेष सभी समीक्षाग्रन्थ हैं। इसके अतिरिक्त विविध पत्र–पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित होती रही हैं। अब भी लेखन के प्रगति पथ पर अग्रसर हैं।

देवीप्रसाद मिश्र : जन्म लालगंज के समीप ग्राम हर्षपुर में इनका पहला ही काव्यसंग्रह प्रार्थना के शिल्प में नहीं बहुप्रशंसित हुआ है। मिश्र जी को इस कृति की श्रेष्ठ सर्जना हेतु वर्ष 1989 में भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इनकी रचनाओं का प्रसारण आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से होता रहता है। समकालीन सर्जक रचनाकारों में श्री देवीप्रसाद मिश्र सशक्त हस्ताक्षर हैं।

मत्स्येन्द्रनाथ शुक्ल : जन्म प्रतापगढ़ जनपद के ग्राम्यांचल में। आरम्भिक शिक्षा गृह जनपद प्रतापगढ़ में। उच्च शिक्षा इलाहाबाद और सागर विश्वविद्यालय से। शिक्षा विभाग में सेवरत रहे। शुक्लजी शिक्षा के विविध उत्तरदायी पदों को सुशोभित करने वाले साहित्यिक व्यक्तित्व हैं। मत्स्येन्द्र जी ने रचनात्मक लेखन की शुरूआत विद्यार्थी जीवन से ही की। गांव से निकट सम्बन्ध एवं आत्मीयता होने के कारण इन्हें जिन्दगी एवं दुःखदर्द का सही अनुभव प्राप्त है। इसीलिए इनकी रचनाओं में गंवई टच, सहजता और जुझारू तेवर विद्यमान हे।

इनकी प्रमुख प्रकाशित कृतियों में से कुछ हैं : 'कंधे पर लाश', हवाएं दे रही हैं सन्देश, शब्दों को समझना जरूरी है, झोपड़े, ये लोग आदि। कविता एवं कहानी के साथ–साथ अन्य विधाओं में से भी शुक्ल जी का सार्थक हस्तक्षेप है।

डॉ. विश्वनाथप्रसाद के अनुसार 'मत्स्येन्द्र शुक्ल जी किसानों और मजदूरों के कथाकार हैं। इन्होंने जिन कहानियों में जीवन चेतना और संवेदना को ग्रामीण अनुभव पर आधारित किया है, वे बहुत अच्छी बन पड़ी हैं। घुमक्कड़, परिस्थितियां, कूड़ा, हड़ताल, पत्थरों का देश तथा झील के तट पर प्रतिबद्ध कहानियां हैं। इनमें प्रगतिशील साहित्य के तत्व विद्यमान हैं। श्री शुक्ल प्रतिष्ठित कथाकार, कवि एवं विचारक हैं।

डॉ. बृजेन्द्रनारायण द्विवेदी 'शैलेश' : जन्म वाराणसी जनपद के ग्राम्यांचल में। प्रारम्भिक शिक्षा कलकत्ता में। उच्च शिखा सांस्कृतिक नगरी काशी में। सम्प्रति प्रतापगढ़ जनपदान्तर्गत बहुगुण महाविद्यालय, लालगंज में समाजशास्त्र का प्राध्यापन।

कवि 'शैलेश' का आत्मकथ्य है : 'वैसे तो नयी कविता सन् 1972 में प्रारम्भ हुई। पर काव्य यात्रा बाद में गीत, गजल, तेवरी, कथा लेखन तक सीमित हो गयी। प्रयास अब भी है कि एक नया आयाम गीतों, नवगीतों व गजलों का हो सके। स्पष्ट है कि शैलेश जी की काव्ययात्रा की शुरूआत सन् 1972 में हुई। तब से आज तक के लम्बे अन्तराल में इन्होंने बहुत सी नयी कविताओं, गीतों एवं गजलों को अपनी आत्मीयता का संस्पर्श दिया है। इन्होंने अपने काव्यलेखन में भाषा माध्यम के रूप में खड़ी बोली एवं अवधी दोनों को सार्थक सिद्ध किया है। इनके द्वारा सृजित काव्य कृतियां निम्नलिखित हैं :

1. प्रवाह : नयी कविताओं का संकलन, 2. दीवार : अतुकांत नयी कविताओं का संकलन, 3. मेघ फिर आना : गीत संकलन, 4कृपरछाइयाँ : गजलों का संकलन, 6. सुबह शाम : गजलों का संकलन। इनके अतिरिक्त 'बांध टूटेगा न ये मालूम था', सम्बोधन, युवारश्मि, आइने कलम के, धुएं की लकीर तथा प्रतिध्वनि नामक सामूहिक संकलनों में भी 'शैलेश' जी के गीत, गजल एवं नयी कविताएं प्रकाशित हैं। इनकी रचना का एक उदाहरण भावनीय है–

हम का करी जौ तोहके हमसे मलाल बाटै

एहि एक जान खातिर, बहुतै बवाल बाटै।

गरजै बहुत जे बादर,? बरसै न बूंद भर ऊ

केतना जवाब देबा, सौ–सौ सवाल बाटै।

'निर्झर' प्रतापगढ़ी : नाम राजेश कुमार पाण्डेय उपनाम निर्झर प्रतापगढ़ी। जन्म 10 मई, सन् 1960 को ग्राम अजगरा में। अजगरा ऐतिहासिक महत्व का स्थान है। यहाँ पुरातत्व जानकारी हेतु कई बार उत्खनन कार्य हो चुका है। शिक्षा एम.ए. (हिन्दी), बी.एड., साहित्याचार्य, साहित्यरत्न। सम्प्रति राजकीय सेवारत।

निर्झर मूलतः लोकप्रिय सम्मेलनी कवि हैं। इनकी कविताएं कवि सम्मेलनों में अधिक सराही जाती हैं। लोकप्रियता का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि ये 29 अप्रैल, 1984 को डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' द्वारा 35 वर्ष से कम आयु के 'श्रेष्ठ मंचीय कवि' के रूपा में सम्मानित एवं पुरस्कृत किये गये। वर्ष 1984 में ही पूर्व मुख्यमंत्री पं0 श्रीपति मिश्र द्वारा भी पुरस्कृत किये गये। जनवरी 1984 में लालबहादुर शास्त्री महाविद्यलय, गोण्डा में आयोजित कवि सम्मेलन प्रतियोगिता में

डॉ. ए.पी. मेहरोत्रा तत्कालीन कुलपति, अवध विश्वविद्यालय फैजाबाद द्वारा प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया। अन्यान्य संस्थाओं द्वारा भी अनेक बार पुरस्कृत एवं सम्मानित किये गये हैं। वर्ष 1981 से आकाशवाणी इलाहाबाद के कवि के रूप में सम्बद्ध हैं। वहाँ से अक्सर इनेक काव्य पाठ का प्रसारण होता है। इनके लोकगीतों एवं हास्य व्यंग्य रचनाओं के कैसेट भी निर्मित हुए हैं। कविता यात्रा सन् 1984 से प्रारम्भ हुई।

'निर्झर' द्वारा लिखित प्रमुख रचनाएं हैं: 1. निर्झर वाणी : यह हाईस्कूल में पढ़ते समय की रचना है। रचनाकाल : 1974—1975 ई0। इसमें सवा पांच सौ दोहे संकलित हैं। 2. कलियुग कथा : दोहा, चौपाई तथा मनहर कवित्त छन्द में लिखी इस कृति में समाज मतें व्याप्त नानाविध विसंगतियों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। 3. निर्झर पदावली : यह फुटकर पदों का संग्रह है। 4. क्रान्ति के दूत : सन् 1977 में प्रकाशित इस काव्यकृति में वीर शहीदों की स्मृति में लिखे लोकगीत संकलित हैं। 5कृगउवाँ की ओर : यह समाज के यथार्थ चित्रण से परिपूर्ण अवधी लोकगीतों का संग्रह है। 6. देख तमाशा : यह 'निर्झर' की हास्य व्यंग्य रचनाओं का संग्रह है। इनके अतिरिक्त भी निर्झर द्वारा सृजित अनेकानेक फुटकर रचनाएं उपलब्ध हैं। निर्झर ने अपनी कविताओं के लिए खड़ी बोली एवं अवधी दोनों भाषाओं का प्रयोग किया है।

निर्झर की काव्य सृष्टि में से एक उदाहरण भावनीय है। कविता यद्यपि बड़ी है किन्तु सौन्दर्य एवं प्रभाव उसे पूरा—पूरा प्रस्तुत करने में ही संभव है। इसमें दो बेरोजगारों की वार्ता के माध्यम से बेरोजगारी एवं हर जगह व्याप्त भ्रष्टाचार पर व्यंग्य प्रस्तुत किया गया है :

आवा गोबिन्दे भैंस चराई।

बिना कमाही भये उठल्लू, अपनिव मेहरि लगै पराई। आवा...

हमहूँ जो अफसर होइ जाइत, बइठ मजे मा नोट कमाइत।

लरिका परिका मौज उड़उतें, बीबी के नक्सा होतै हाई। आवा...

प्राइमरी मा मुंसी होइत, जानौ गंगा मा जौ बोइत।

सेंत—मेंत मा मिलतै पइसा, घरहीं बइठित घूम घुमाई।। आवा...

कोर्ट कचेहरी मा होइ जाइत, मनचाही खुब लूट मचाइत।

बड़े—बड़े सब घेरे रहतेन, चला बाबू जी चाय पियाई।। आवा...

अफसर भा जब गोबर गनेस, तौ जेकर लाठी ओकर भैंस।

सीधे कै मुँह चाटै कुत्ता, केकरे–केकरे तेल लगाई। आवा...

नेता अफसर सब पिछुवइहैं, सीधे पै केउ ध्यान न देइहैं।

मन बोलत बा अगले हफ्ता, फूलन जैसा गैंग बनाई।। आवा...

कमवइया जौ घर मा आवैं, देवता जइसे पूजा पावैं।

बर्धा एस हम पेरी तब पै, कुकुर एस दुरियावा जाई।। आवा...

क्रीम पाउडर कहां से ल्याई, केकर पइसा चली चोराई।

रोजै दुलहिन एही बिना, गोबड़ौरा एस मुँह लेइ फुलाई।। आवा...

क्लर्की कै हम दीन परिच्छा, इन्टरव्यू कै रही प्रतिच्छा।

पता चला की काम करत बा, उहां बड़े बाबू कै भाई। आवा...

सुना परोसी हंसि के बोला, लिया चला अब आलू निकोला।

कहत रहे कुछ काम न होये, जब तक जेब न गरमाई।। आवा...

सबकै लरिका मजा उड़ावैं, नौ से बारा पिक्चर धावैं।

एक्कै लरिका हमरौ लेकिन, करजौ काढ़े फीस न पाई।। आवा...

बड़े नन्हइयैं शादी 'निर्झर' जीवन के बरबादी।

बीस बरिस मा दुइ–दुइ लरिका, राम दिहेन फिर नम्बर लाई।। आवाकृ

(देख तमासा से)

इसी तरह 'बुढवा अहिर भुलक्कड़ बतियान सगरा ढर्रा', मारब सारे बीसन चट्ठा, निर्झर की और भी अनेक रचनाएं बड़ी प्रसिद्ध हैं।

आद्या प्रसाद मिश्र 'उन्मत' : ये कविरूप में उन्मत जी के नाम से जाने जात हैं। प्रतापगढ़ जनपद में मल्हूपुर गांव में सन् 1935 में जन्मे उन्मत जी अवधी के शिरोरत्न हैं। वे काव्यकर्म और लोकमर्म दोनों दृष्टियों से अद्विितीय कवि हैं। वास्तव में उन्मत जी अवध अवधी के अलंकार हैं। वे अवधी के किसान कवि हैं। उनकी कविताओं में अवध क्षेत्र का गांव गिरांव , गोबर पानी, सभ्यता संस्कृति, खेती किसानी, मेहनत मजदूरी, जाड़ा पाला, सर्दी गर्मी, ईमानदारी बेईमानी, सबकुछ एकसाथ उपस्थित है। उनकी अवधी रचनाओं का एक संग्रह माटी औ महतारी प्रकाशित है। श्री जगदीश

पीयूष द्वारा सम्पादित बोली बानी का एक अंक पूर्णरूपेण उन्मत जी की अवधी रचनाओं पर ही केन्द्रित है। खड़ी बोली कविताओं का एक संग्रह प्रकाशन की प्रतीक्षा में है। प्रहरी सावधान, नेहरू महान, उनकी प्रकाशित खड़ी बोली कविताओं के संग्रह हैं। इनमें नेहरू महान पं0 जवाहरलाल नेहरू के जीवनवृत्त पर आधारित खण्डकाव्य रचना है।

'गांव', होली आई रंग–रंगीली, चली रेलगाड़ी, गजल, धूतजू–धूतू, पाती, अब केस कै आई रामराज, नींव कै पाथर, डगर महकी, झाड़े रौ मंहगुआ, गैंउना मा जाड़ा गवा आइ, गरमी आइ तो हैंसा गांव, छक छक छक छक बरसा पानी, तोहरी नानी के हाड़े मा, आदि इत्यादि उनके द्वारा रचित अवधी की बेजोड़ कविताएं हैं। उनके द्वारा रचित कविताओं की कुछ पंक्तियां उदाहरण के रूपा में भावनीय है :

(1) ढेबरी की कठिन पढ़ाई मा आंखी कै जोती जात रही,

दादा लूकी लै खात रहे, माई अंधियारे खात रही।

डेहरी से लैके ओबरी तक अब सगरौ बिजुरी बरै लागि,

मनई के कहै भैंइस बइठी उजियारे पागुर करै लागि।

का जना–जना की आंखी मा अब दिया देखाई रामराज?

अब केस कै आई रामराज?

(2) तू धूर आंख मा झोंकि–झोंकि धन रदुइनौ हाथ बटोर्‌या है,

तू पेट देस कै काटि–काटि अपने खाता मा जोर्‌या है।

तू कसम खाइ के घाट किह्‌या कम तौल्या सोझै कांटा मा,

तू किह्‌या मिलावट तेल मसाला नमक दवाई आंटा मा।

तू बड़का साहूकार बना औ जहर मिलावा खाडे मा,

मूड़े धै राजा बेनु गये? तू ध्रती बंधब्या फाड़े मा।

तोहरी नानी के हाड़े मा।।

(3) स्वारथ क जग परमारथ से डरू रे,

दुसरे क पेट काटि ठूंस–ठूंस भरू रे।

जहां लौ निगाह जाइ कूद फांद करू रे,

आनकै हड़पि के उतान होइ डकरू रे।

खाइ पाउ खाउ नाहीं मारि के अड़ाउ,

लैके नेता जी कै नाज धुजा गाड़े रौ मंहगुआ।

दुइ पइसा कै टोपी दैके झाड़ रौ मंहगुआ।

एक रेखांकनीय बात यह है कि –उन्मत' जी की कोई भी रचना अथवा किसी भी रचना की कोई भी पंक्ति कहीं से कमजोर नहीं ह। उनके इसी प्रदेय के कारण नलिनकान्त उपमन्यु द्वारा उन पर आधारित लघु शोध प्रबन्ध (अवध वि0वि0 फैजाबाद से) लिखा जा चुका है जो अनन्तर आद्याप्रसाद मिश्र उन्मत : अवधी के शिरोरत्न शीर्षक से पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ है। सम्प्रति उन्मत जी अवध विश्वविद्यालय फैजाबाद के बी.ए. भाग तीन के, हिन्दी विषय के अन्तर्गत पाठ्यक्रमक में सम्मिलित हैं और पढ़ाये जा रहे हैं।

'उन्मत' जी सन् 2007 में कथाशेष हो गये, फिर भी वे अपनी रचनाओं के बल पर हिन्दी साहित्य की निधि बन गये हैं।

जुमई खां आजाद : लोकभाषा अवधी के सिद्ध कवि श्री जुमई खां 'आजाद' का जन्म प्रतापगढ़ जनपद के गोबरी गांव में 5 अगस्त 1931 को हुआ था। आर्थिक विपन्नता के कारण उनकी विद्यालयी शिक्षा हाईस्कूल तक ही संभव हो सकी। आजाद जी ने शुद्ध रूप से एकनिष्ठ भाव से साहित्यिक जीवन जिया है। आर्यभारत, हमारी सीख, त्याग और बलिदान, उपहार, जीवन सरगम, तूफान, मालिक और मजदूर, गागर में सागर, भारत की सुरक्षा, इन्कलाब, धरती के गीत, नवविहान, पहरूआ, केवट (खण्उकाव्य), गंगावतरण आदि कृतियों के माध्यम से आजाद जी ने अवधी साहित्य की श्रीवृद्धि की है और साहित्य को गौरवान्वित किया है। आजाद जी पर केन्द्रित एक पुस्तक कथरी के गुननायक जुमई खां आजाद (लेखक डॉ. संतोषकुमार मिश्र) शीर्षक से प्रकाशित हो चुकी है।

'सरस्वती' के अनन्य साधक जुमई खां मूललतः अवधी के कवि हैं और सामान्य कवि नहीं, बल्कि अवधी के रसखान कहे जाते हैं। उनके द्वारा रचित कविताओं की कुछ पंक्तियां उनके काव्य सामर्थ्य के प्रमाणरूप में द्रष्टव्य है :

(1) आमदनी मां इतना अन्तर जेस बिरवा जरि पुलुई,

चतुरी के घर सोना बरसै, गिनै बुधइया कोरई।

निर्धनता पर चलइ हुकूमत, बुद्धिहीन पर भाषन,

ई सिद्धान्त सबै अपनाये, करै बरे बस शासन। (रामराज शीर्षक कविता)

(2) कथ्ळारी तोहार गुन ऊ जानइ, जे करइ गुजारा कथरी मा।

लोटइं लरिका सयान, सारा परिवार बेचारा कथरी मा।।

एतनी अनमोल अहा कथरी, न मोल बिकानू हरिया मा।

मुल तुहुका देखे घरे–घरे सब जने बिछाये खटिया मा।। (कथरी शीर्षक कविता)

(3) महराज दुखी खटिया पै परे, केहुवै कर बोल करात न बा।

एस आगि बरै धधकै जियरा, दनवा पनिया लखित जात न बा।।

दरबारी सबै समुझाइ रहे मुल हाती के डाह बुतात न बा।

महराज कहैं जिनगानी वृथा, अब दहीं मा पीर समाति न बा।।

(4) तट प सुविधा श्री राम बरे, गुह जोरि बटोरि लगावत बा।

अपने घर से दुधवा मिसिरी टटकै फल–फूल मंगावत बा।।

उत घाट कमइल बोरि धरे, गोदरी रेतिया मा बिछावत बा।

जलपान की तांई चिरौरी करै, कर जोरि के शीश नवावत बा।

(केवट खण्डकाव्य से)

विशालमूर्ति मिश्र 'विशाल : प्रतापगढ़ जिले की लालगंज तहसील के केशवपुर गांव के रहने वाले श्री विशाल जी पेशे से अध्यापक हैं। सामाजिक सोच सरोकार सम्पन्न कवि विशालमूर्ति की रचनाओं में सामाजिक विसंगतियों एवं व्यंग्य के चित्र आसानी से देखे जा सकते हैं वैसे उन्होंने विविध भावबोध पर आधारित रचनाएं की हैं। गीत माधुरी उनका प्रकाशित काव्य संग्रह है। गजलों का एक संग्रह तथा अन्यान्य कविताओं का एक दूसरा संग्रह प्रकाशनाधीन है। उदाहरण के रूप में उनकी कुछ काव्यपंक्तियां प्रस्तुत हैं :

(1) बीसवें बसंत की अनन्त रूपराशि, अंग–घट न समाती दलकाती चली जाती ह।

रंग भीगा पट है, लिपट गया अंग संग, रूप अंतरंग झलकाती चली जाती है।।

अंग के उभार को उघारप्राय देखि देखि, कर सों छिपाय लजियाय चली जाती है।

लूटती लुटाती नैन मदिरा पिलाती, देखो कैसे लहराती बल खाती चली जाती है।।

(2) उतरे उतारे नाहीं, बिसरे बिसारे नांहि, ऐसी सप्त मदिरा पियाय के चलो गयी।

छेडित्र मन वीणा से अनंग चतुरंग राम, तार–तार मन के हिलायि के चली गयी।।

निकरे निकारे नहीं, जान से भी मारे नहीं, तीर अनियारे को धँसाय के चली गयी।।

नेहिया की डोरिया से, अंखिया की कंटिया से, मोर मन मछरी फंसाय के चली गयी।।

राजाराम शुक्ल : प्रतापगढ़ के खजुरनी गांव में जन्म राजाराम शुक्ल अवधी के श्रेष्ठ रचनाकार हैं। पांखुरी उनकी अवधी रचनाओं का संग्रह है। उनकी मारिषा, अब तो नींद खुले, गंगायतन आदि कृतियां भी प्रकाशित हैं। उनकी कविता का एक उदाहरण देखें :

फूलै लागे फुलवा बउरइ लागीं डारी, चुमइ लागे कलियां के भंवरा अनारी

काली रंग चोलिया चंदनिया में ढारी, खेली लागी चन्दा से रतिया दुलारी

रानी उषा के अंगनवा ते निकरे, सुरूजू सिंदुर अस लाल।

उड़इ लागी अबिरिया गुलाल।।

(गावा फागुन शीर्षक कविता– पांखरी संग्रह से)

परवाना प्रतापगढ़ी : जन्म प्रतापगढ़ जिले के खानापट्टी गांव में। जीविकोपार्जन हेतु छोटा मोटा व्यवसाय करते हैं। अवधी के उभरते हुए रचनाकार और मूलतः सम्मेलनी कवि हैं। फैयाज अहमद परवाना की अवधाी कविताओं की एक कृति रस गागरी प्रकाशित है। उनकी कविता की एक बानगी भावनीय है :

फटी लैंगोटी, टुटहा जूता, बिगड़ा ताना–बाना,

लाख जतन जौ करी, तौ पाई पेट भरै का दाना।

कैसे बितिहीँ अब तौ महंगा हर समान बाबू जी

कुल बिपतिऔ बा कपारे हम किसान बाबू जी।।

कानी कौड़ी पास नहीं आकाश चढ़ी मंहगाई,

रात–रात ाौ जागि के नैना भोर भये पथराई।

जब से बिटिया होइगै घर मा सयान बाबू जी

कुल बिपतिअै बा कपारे हम किसान बाबू जी।।

नागेन्द्र 'अनुज' : प्रतापगढ़ जिले की लालगंज तहसील से सटे गांव उमापुर में पैदा हुए कवि नागेन्द्र 'अनुज' अवधी के प्रकृष्ट रचनाकार है। उन्होंने अवधी गीतों गजलों की रचना से अवधी साहित्य को समृद्ध किया है। उनकी रचनाएं विविध समवेत संकलनों (श्रेष्ठ हास्य व्यंग्य गीत तथा नई सदी के प्रतिनिधि दोहाकार) तथा पत्र–पत्रिकाओं (हस्तक्षेप, बोलीबानी आदि) में प्रकाशित हुई हैं। उनकी रचनाओं की बानगी के लिए एक ही उदाहरण काफी है :

चोट्टा डकइत, पुलिस कसाई, दुइनउ हांथे करैं कमाई

का हिन्दू का मुसुरमान सिख सबका छलै आज मंहगाई

हियां गरीब मरत बा भूखन भा बिलेक रासन सरकारी।

तौ काहे ना मिटै लिहारी।

जहां गरीब हलाल होत बा, रोजै नवा बवाल होता बा

वही देस कै नेतै चोकड़ै ई भारत खुसहाल होत बा

उल्लू सीधा करत अहैं ये, इनका पूजै दुनिया सारी।

तौ काहे न मिटै लिहारी।।

अब तौ डिगिरी मुंह मटकावै, नोट देय तौ सरबिस पावै

भाय भतीजाबाद के चलतन, अब तौ गदहौ मौज उड़ावै

आपन स्वारथ साधै खातिर धारिउ ढर्रा बइठ सिकारी।

तौ काहे न मिटै लिहारी।।

सुनील 'प्रभाकर' : प्रतापगढ़ जनपदान्तर्गत 'सराय नाहरराय गांव में जन्मे श्री सुनील प्रभाकर सरकारी सेवारत कर्मचारी हैं। हिन्दी साहित्य से एम.ए., अनन्तर स्लेट परीक्षा उत्तीर्ण, सुनील प्रभाकर सिविल इंजीनियरिंग में डिप्लोमा भी हैं। ये अपनी कविताओं के बल पर कवि सम्मेलनों में सादर सराहे जाते हैं। अब तक इनकी खड़ी बोली व अवधी कविताओं का एक संग्रह मन की वीणा प्रकाशित हुआ है। इनकी कविताएं इनक कवि सामर्थ्य की प्रमाण है। उदाहरण देखें :

(1) वृषभानु के द्वार चलो सजनी, जहं राधिका के पग पावन हैं।

जहं जेठ भई सब देह परी, दोउ नैन बने बस सावन हैं।।

कीर्तिकुमारी ही आस हैं आखिरी, जीवन आवन जावन है।

हमरे तो हिये में बसे उनके, रोम–रोम बसे मनभावन हैं।।

(2) होत न धीर वही प्रभु हैं, शबरी के घरै महं हो फल खाये।

तारे अजामिल औ गणिका, गज को भवसागर पार कराये।

कांह भई हमसो ऐ सुनील जो छाये उहां हैं इहां नहिं आये।

अंखियां गहि बन्द करौं पर ई, हियरा नहिं मानत है समुझाये।।

चन्द्रेश 'पागल' : चन्द्रेश पागल जी का पूरा नाम चन्द्रेश बहादुर सिंह है और इनका जन्म प्रतापगढ़ में लक्ष्मणपुर ब्लाक के चमरूपुर गांव में हुआ था। चन्द्रेश जी पेशे से वकील थे और यही कारण है कि उनकी रचनाओं में एक सरस तर्कणाशक्ति देखने को मिलती है। चन्द्रेश जी ने अवधी और खड़ी बोली में समान रूप से लिखा है। गीत, गजल, छन्द, लोकगीत, अतुकान्त कविताओं के अतिरिक्त उन्होंने आल्हा जैसी प्राचीन विधा में भी रचनाएं कीं। उन्होंने खड़ी बोली में गजलों के साथ–साथ अवधी में भी गजलें लिखीं। जहां तो खड़ी बोली में गजल कहते समय :

वो कभी कयामत है, तो कभी नजारा है,

टूट पड़े तो उल्का, चमके तो सितारा है।

जैसी बातें करते हैं। यह कहते हैं :

उफ! कितनी बेकद्री है, उफ! कितनी बनावट है,

मुर्दा हुए जिस्मों पर फूलों की सजावट है।

वहीं अवधी गजल लिखते समय देश की दुर्दशा पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं :

आवा देसवा के उद्धार मिलि के करी,

तुहूं काटा गरी, हमहूं काटी गरी।

विभिनन प्रकार की विधाओं के साथ–साथ चन्द्रेश जी ने लगभग सभी रसों में रचनाएं की हैं। विभिन्न शास्त्रीय रसों के अलावा आजकल व्यापक स्तर पर गद्य और पद्य में व्यंग्य को अलग

से महत्व दिया जाने लगा है। चन्द्रेश जी इसमें भी विस्द्धहस्त थे। उनके गीतों में श्रृंगार के साथ दर्शन का कुछ ऐसा मिश्रण देखने को मिलता है कि ह्रदय बरबस कह उठता है बिना श्रृंगार के साथ दर्शन अधूरा है और बिना दर्शन के श्रृंगार। चन्द्रेश जी द्वारा इतना विपुल साहित्य रचा गया है कि उस पर पूरा शोधकार्य किया जा सकता है। सन् 2001 में मृत्युरूपी अटल सत्य का सामना चन्द्रेश जी को भी असममय करना पड़ा। शीघ्र ही चन्द्रेश जी की सम्पूर्ण रचनाओं का संग्रह प्रकाशित होने वाला है।

अनीस देहाती : प्रतापगढ़ के बरीबोझ गांव में जन्मे शेख मुंशी रजा जन्म से ही देहाती हैं लेकिन देहाती सिर्फ इन्हीं मायनों में कि देहात में पैदा हुए, देहात में ही पढ़े लिखे, देहात में ही रहते हैं और देहात के ही ग्राम प्रधान हुए। उनकी सोच समझ और रचनाधर्मिता से ये बात स्पष्ट हो जाती है किवे शहर में रहने वाले विद्वानों से कई गुना जागरूक हैं।

भारतीय समाज के परिदृश्य में जिस मिली जुली संस्कृति या गंगा जमुनी तहजीब की बात की जाती है अनीस जी उसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। अवधी की रचना लिखते समय अनीस जी जिस ठेठ अंदोज में पेश आते हैं, खड़ी बोली की रचनाओं में उससे कहीं ज्यादा शिष्ट और तर्कपूर्ण शैली में नजर आते हैं। शीघ्र ही अनीस जी की अवधी रचनाओं का एक संग्रह करम कमाई नाम से प्रकाशित होने वाला है। गीत, गजल, छन्द, कविता लोकगीत आदि पर अनीस जी की गहरी पकड़ है। इसी बीच सम्पूर्ण श्रीमदभगवत गीता के श्लोकों का खड़ी बोली में छन्दानुवाद का कार्य भी अनीस जी ने सम्पन्न कर दिया है। अनीस जी संस्कृत से एम.ए. हैं, आचार्य हैं और इस समय सरदार पटेल इण्टर कालेज, रानीगंज कैथौला प्रतापगढ़ में अध्यापन कार्य कर रहे हैं। उनकी कुछ एक कविताओं की पंक्तियां उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :

(1) हिन्दू अही हम न मुसुरमान अही हम।

पंचौ! गरीब गांव कै परधान अही हम।।

एक मुद्दतै से गांव म लाये रहे लासा।

तिकड़म से अपने छोट अउर मोट का फांसा।।

देबै जरूर तुहंका भुइ, ई दीन दिलासा।

तब जाइ के यहि वोट म बहुमत मिला खासा।

जनता के धान्य खाइ के उंचियान अही हम।

पंचौ! गरीब गांव के परधान अही हम।।

तोहका कसम हमार है सच का न सच कहा।

आराम भले हम सही, तकलीफ तू सहा।।

चांदी कटै हमार औ बिल्डिंग मा रही हम।

चिन्ता न हमैं तू भले भरसार मा रहा।।

सानी की तरह सांड के लसियान अही हम।

पंचौ! गरीब गांव कै परधान अही हम।।

(2) बिना फीस थान्हौ चउकी मां लिखी जाय न फाई आर।

अहेन डाग्डर सरकारी मुल बउ भये पइसै कै यार।।

कटा कनक्सन सन तिरसठ मां बिजली कै बिल कान्हौ आय।

सन छत्तीस कै पठई चिख्ट्ठी आज डाकिया दिहिस लियाय।

मंत्री से लड़के संत्री तक में 'अनीस' सब बड़का सेर।

अरे राम। एतनी अन्धेर। अरे राम! एतनी अन्धेर।।

रघुवीर सिंह पवन : ये श्रमजीवी साहित्यकार हैं। इनकी रचनाएं मास्को रेडियो स्टेशन से प्रसारित हो चुकी है। मील के इन पत्थरों से पूछ लो युग की कहानी/हर पथिक पथ पर गया है छोड़कर अपनी निशानी इनकी प्रसिद्ध काव्य पंक्तियां हैं। सन् 2007 में स्मृतिशेष हो गये।

राधेश्याम 'दीन' : 'दीन' जी प्रतापगढ़ जनपद के सण्डवा चन्द्रिका के पास जूड़ापुर गांव के रहने वाले हैं। इनकी अधिकांश रचनाएं अवधी भाषाा में है। अरे चैतुआ कब तक सोउबे, उठ जल्दी अब भेर होइ गया इनकी अत्यन्त सराही जाने वाली कविता है। इन्होंने चन्द्रिकन देवी की स्तुति में चन्द्रिका चालीसा भी लिखा है।

भानुप्रताप त्रिपाठी 'मराल' : 'मराल' जी पेशे से अधिवक्ता हैं। इनके द्वारा लिखित निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हैं— 1. संजय (खण्डकाव्य), 2. दहेज (उपन्यास), 3. अगुआ बियाह कै भये भाव, 4. सपनों का भारत (राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह) 5. इन्दिरा गांधी (स्वतंत्रता संग्राम का काव्यगत इतिहास), 6. देश हमारा धरती अपनी और 7. संत तुलसीदास (खण्डकाव्य)।

इनके अतिरिक्त प्रभा, अवधी पियार बाटै, भिखारी का बेटा, रूपवती (खण्डकाव्य) हनुमान स्तुति, मंथरा (खण्डकाव्य) भरत (खण्डकाव्य) आखिरी किताब (उपन्यास) भारत के सूपत (स्वतंत्रता

संग्राम सेनानियों का चरित्र चित्रण) और भारत का जवाहर (काव्य) आदि संग्रह प्रकाशन की प्रतीक्षा में है। 'मराल' जी खड़ी बोली एवं अवधी दोनों भाषा माध्यमों से काव्य सृष्टि करते हैं।

शेष जी : ये अब कथाशेष हो गये हैं। शोध जी अतिप्रसिद्ध देवस्थान घुइसरनाथ' के निकटस्थ नौबस्ता गांव के रहने वाले थे। गांधी पर लिखी गयी इनकी रचना अति प्रसिद्ध है।

ओंकारनाथ उपाध्याय : कवि ओंकारनाथ पेशे से कृषक हैं। नयी पीढ़ी के कवियों में इनका अवधी साहित्य के विकास में अद्वितीय योगदान है। इन्होंने लोक साहित्य की हर विधा सोहर, नकटा, बिरहा, लोरिकी, धोबिया गीत आदि को अपनी लेखनी की मधुरिमा से समृद्ध बनाया है।

इम्तियाजुद्दीन खां 'बाबू जी' : ये कवि रूपा में राष्ट्रीय एकता के प्रतीक रूप हैं। इन्होंने सुप्रसिद्ध कृति रामचरितमानस तथा भर्तृहरि के तीनों शतकों का उर्दू में सफल अनुवाद बनाया है।

ऊपर वर्णित अवधी साहित्य साधकों के अतिरिक्त श्री गुलाब खण्डेलवाल, ओमप्रकाश खण्डेलवाल, अमजद हुसैन शास्त्री, कामताप्रसाद पीयूष, श्रीविष्णुदत्त मिश्र प्रसन, पं0 मधुसूदन मधु, परशुराम उपाध्याय 'सुमन' (अधिवक्ता), डॉ. रामचरित्र सिंह अनाम, डॉ. हंसराज त्रिप8ाठी, डॉ. महावीरप्रसाद उपाध्याय 'मधुवर्ष' श्रीरामसेवक शुक्ल, श्री रविउल्लाह 'दर्द' (सभी पेशे से प्राध्यापक), छविश्याम पाण्डेय शिक्षक (अब कथाशेष), मयूर जी, श्री उमेशचन्द्र पाण्डेय 'तरूण, श्रीराम श्रीवास्तव कमलेश जी, डॉ. जमीर अहसन अंसारी, श्री रामसमुझ मिश्र 'अकेला', नाथ मानिकपुरी, रत्नेश जी, नाजिस प्रतापगढ़ी, चन्द्रशेखर 'प्राण', डॉ. अनिल मिश्र, डॉ. ओम निश्चल, कैसर प्रतापगढ़ी, राजमूर्ति सिंह 'सौरभ, दयाशंकर शुक्ल 'हेम', डॉ. राधेश्याम द्विवेदी 'प्रशान्त', पं0 तीर्थपाल शुक्ल, वकील अहमद, अशोक कुमार 'निर्भय', राजनारायण शुक्ल 'सार्दूल', डॉ. संगललाल त्रिपाठी 'भंवर' रासहाय सिंह कुंज, डॉ. अनिल सिंह 'शलभ' केशरीनन्दन शुक्ल, ओमप्रकाश श्रीवास्तव 'पंछी', रमेश प्रतापसिंह कुंज, प्रतापगढ़ी, विजयबहादुर सिंह अक्खड़, सत्येन्द्रनाथ मिश्र 'मृदुल' संजयपाण्डेय पुष्पेन्दु, श्यामशंकर शुक्ल श्याम, इमरान प्रतापगढ़ी बाबूलाल सरल, गुलामजी डॉ. रणजीत सिंह, मुर्तजा जाफरी, रामनारायण सिंह, संतोष सिंह, भूपाल सिंह कविदास, निराश आदि इत्यादि छोटे बड़े साहित्यिक व्यक्तित्व हैं जिन्होंने प्रतापगढ़ के साहित्यिक विकास में अपनी सहभागिता निभायी है और आज भी साहित्य साधना के मार्ग पर अग्रसर हैं।

साहित्यमर्मी विद्वान पं0 श्रीनारायण चतुर्वेदी का यह कहना बिलकुल सच है कि मैंने अपने जीवन में ऐसे कितनी ही कवियों को देखा है जो अपने समय में बहुत बड़े समझे जाते थे, किन्तु 25–30 वर्ष बाद ह ीवे भुला दिये गये। रहीम, रसखान, पद्माकर, गिरिधर, सूर आदि की आज साहित्यिक एवं शैक्षिक जगत में काफी उपेक्षा है फिर भी वे जनता के कंठ में है और देहातों में भी सुने जा सकते हैं। यह सच है कि उपर्युक्त साहित्य सेवियों में से दो चार को छोड़कर अधिकांश

रहीम, रसखान, पद्माकर आदि की कोटि के नहीं है। यह भी सच है कि अधिकांश 25–30 वर्ष तो क्या, इससे पहले ही भुला दिये जायेंगे, और यह भी सच है कि आगे बहुत दिन बाद जनता के कंठ में भी नहीं रहेंगे। किन्तु आज इनमें से ज्यादातर ऐसे हैं जो जनसामान्य के कंठ में रचे बसे हैं। इनेक द्वारा सृजित गीतों की मिठास के वशीभूत लोग अक्सर इनके गीतों को गुनगुनाते मिलते हैकं।

एक बात और कोई यह कह सकता है कि इनमें से अधिकांश मंचीय (सम्मेलनी) कवि हैं और यह भी कि सम्मेलनी कवियों से साहित्यिक इतिहा नहीं बनता तो इसके लिए यह कहना बहुत होगा कि आज हिन्दी साहित्य में प्रतिष्ठित साहित्य महारथियों में से अधिकांश ऐसे हैं ो अपने प्रारम्भिक दिनों में मंचीय कवि ही थे। महाप्राण निराला सुकुमार कवि पन्त, महाकवि प्रसाद, बहुआयामी अज्ञेय, महीयसी महादेवी, समयसूर्य दिनकर, मधुवर्षी बच्चन, जनकवि बाबा नागार्जुन, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. धर्मवीर भारती आदि–आदि सभी कवि सम्मेलनों की शोभा बढ़ाने वाले कवि थे किन्तु आगे चलकर सबके सब स्वनामधन्य साहित्यकार हुए। इनमें से लगभग सभी भारतीय ज्ञानपीठ, भारत भारती, साहित्य अकादमी अथवा हिन्दी संस्थान द्वारा प्रदान किए जाने वाले पुरस्कारों से पुरस्कृत हुए और आज ये सभी हिन्दी साहित्य की अक्षय निधि हैं। प्रस्तुत प्रलेखा में वर्णित साहित्यधर्मियों में से बइहुतों को समय भुला देगा, किन्तु कुछ ऐसे हैं जैसे आचार्य भिखारीदास, पन्तजी, राजा रामपाल सिंह, गुलाब खण्डेलवाल, पं0 आद्याप्रसाद मिश्र 'उन्मत', जुमई खां आजाद, अनीस देहाती आदि और एकाध ऐसे हो सकते हैं जिनहें समय आसानी से भुला नहीं पायेगा, वे साहित्यनिधि साबित होंगे ऐसा हमारा विश्वास है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रतापगढ़ की माटी ने आचार्य भिखारीदास, राजा रामपाल सिंह जैसी साहित्यिक प्रतिभाओं को जन्म दिया है। यहां की माटभ् ने सौन्दर्यचेता कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त, गुलाब खण्डेलवाल, डॉ. ब्रजेन्द्र 'शेलेश जैसे प्रतिभा रचनाकारों को साहित्य सृष्टि के लिए भावभूमि प्रदान की है। इसलिए प्रतापगढ़ का नाम अपने साहित्यिक अवदान के लिए विशेषत अवधी रचनाओं के लिए हिन्दी साहित्य में सदा अमर रहेगा।

Globalization and its impact on Values and Human rights

Professor Rekha Singh, Department of Education,
& Professor (Dr.) Shivam Shrivastava, Principal,
M.M.P.G. college Kalakakar Pratapgarh, UP

As a member of society every human being is bestowed with values and rights, which belongs to him absolutely. Values are concerned as principals or standards of behaviour, one's judgement of what is important in life as well as human rights are concerned, with the dignity of the individual at a level of self-esteem what secures, identifies and promote human community. So, it is clear that human rights and values are the essential post of one life and one need not be or do anything special rather than being born as a human being.

So, values and rights are interrelated if value fertilize, human right awareness will develop. The relation between globalization development and human rights raises policy and legal question. On the other way value are changed in the market oriented economic system in the period of globalization. While searching for an answer to this question first may values oriented education should again established and second how we perceive the concept of development and human rights especially in the context of developing countries.

We can see at the sometime globalization intensifies the economical development. The western countries are increasingly using their view of human rights concept as a yardstick to judge the developing countries and to deal with economic and trade relation to extend development assistant. At the sometime globalization intensifies impoverishment by increasing the poverty, insecurity fragmentation of society and lacks of values.

This globalization impact can see on the value lose and human rights awareness. Studies and researches are essential procedure to take our attention because from last 50 years. We are emplacing on value education but still there it a need of seminars, committees report to educate and alleviate value among are new generations.

Need of value-teaching in present circumstance value education promote tolerance and understanding above and beyond are political, cultural and religious differences, putting special emphasis on the defence of human rights, the protection of ethnic minorities and the most vulnerable groups and the conservation of the environment.

We want to create a more sustainable world with stabled economics and more just and inclusive societies. A difficult but not unattainable goal of use can count on the involvement of government, institution business and above all just as use learn mathematics and languages, we should also become specialist in those less on duet are fundamental to living in harmony and social progress such as respect, empathy, equality,

and ethical prenubile. The family, university, business spots and use educators can promote such example before our students and citizens, value education should not be optical it has actually been contemplable include value education as part of compulsory education. Collective identity, clinical thinking, communication skill, team work and interclass with others so both traditional education and value education are essential for personal development and education for citizenship. We have to find out such ways in which scientific knowledge will promote side by side various values will generate among and students.

Need of human rights education- the world conference and human rights has proclaimed. Education has a responsibility to ensure that we education government and other agency to ensure the promotion of equality, peace and universal realization of human rights.

Any educational effort will fail of it does not give enough attention and importance to the teachers, on of the pillars of education system. Teachers should always be careful for character development of his pupils. So, teachers have an indispensable role in social service so a teacher as to perform two roles simultaneously, (1) a conservator in order to conserve and preserve (shodhan and bhodhan) the continuity of tradition and (2) as a campaigner for changed toward desirable objective that be mandatory for human beings. So many rights are proclaimed in our contribution but they commeasuring earthed practise and two efforts form teacher education the teacher therefor should be sensitized towards constitutional goals of justice, liberty, equality, and fraternity assuring dignity of an undivided and integration of nation.

Globalization has increased competition and isolation resulting in violation of values and human rights. There for all citizens can play a vital role in streamlining and promotion of human rights among people. Ishan promote art culture and improve society is nicely doing to preserve our values, cultural and heritage. A two days seminar was very relevant to bring the consciences about values and human rights. It is an urgent need such type of NGO’s and other educational institution combine themselves to receive the good of VASUDHAIV-KUTUMBKAM **(वसुधैव कुटुम्बकम्).**

References

1. Pandey, V.C. (2007), Values education and education for human rights, New Delhi, Gyan Book Pvt. Ltd.
2. Education for human right, New Delhi, Gyan Book Pvt. Ltd.
3. Value education Ram Krishna Mission, Ram Krishna Mission Marg New Delhi.
4. E book format “Guy Spier, The Education of a value investor.
5. Values education and human right education Volume 2, Neel Kamal Pvt. Ltd Hyderabad.

Mahatma Gandhi On Value Education

(RESEARCH SCHOLAR - RAKESH KUMAR VERMA, DR.RAM MANOHAR LOHIYA AVADH UNIVERSITY AYODHYA)

The name of Mahatma Gandhi needs no introduction because he is an invaluable contribution to the Indian national liberation movement. It was he who through non-violent action awakened millions of people, engaged them, challenged the powerful empire of the world and finally threw off the yoke of slavery.

For those who believed that no country in the history of the world achieved its freedom except through violent means, Mahatma Gandhi's actions forced them to think again and also change their minds. His reputation as a true nationalist and internationalist shines like the sun itself, but in academic terms he is not considered a great scholar or educator.

His views on education or related problems have not come down to us through any book he wrote. There is not even any specific research available to give us an insight into his ideas or suggestions about the education system, apart from his occasional articles on the future of education in India, which are written very simply and lightly. The same goes for his opinions on the subject from time to time.

Despite that few articles written by Mahatma Gandhi in the simplest way and his views on education as a common man are of the greatest importance; they give us a guide to move towards value education. Moreover, if we apply them even from a modern perspective, they can certainly add a new dimension to our education system.

The name of Mahatma Gandhi needs no introduction because he is an invaluable contribution to the Indian national liberation movement. It was he who through non-violent action awakened millions of people, engaged them, challenged the powerful empire of the world and finally threw off the yoke of slavery.

For those who believed that no country in the history of the world achieved its freedom except through violent means, the actions of Mahatma Gandhi forced them to think again and also change their minds. His reputation as a true nationalist and internationalist shines like the sun itself, but in academic terms he is not considered a great scholar or educator.

His views on education or related problems have not come down to us through any book he wrote. There is not even any specific research available to give us an insight into his ideas or suggestions about the education system, apart from his occasional articles on the future of education in India, which are written very simply and lightly. The same goes for his opinions on the subject from time to time.

Despite that few articles written by Mahatma Gandhi in the simplest way and his views on education as a common man are of the greatest importance; they give us a guide

to move towards value education. Moreover, if we apply them even from a modern perspective, they can certainly add a new dimension to our education system.

Mahatma Gandhi once said:

"Education means bringing out the best in every aspect of the child and the person - body, mind and spirit."

Education as such becomes the basis of personality development in all dimensions - moral, spiritual and emotional. Therefore, it can be said that in the long-term education forms the foundation on which castles of peace and prosperity can be built. From ancient times it is said "SA VIDYA YA VIMUKTAYE" which means that through education we finally attain salvation.

This little Samskrit sentence basically contains the idea and essence of valuable education which is important in all aspects. If this concept is applied to the simple but complex approach of Mahatma Gandhi, it can offer us a new dimension in the development of education. As such, analyzing Mahatma Gandhi's views, we can trace his views under two main points:

A. Morals and Ethics:

Knowledge of morals and ethics is the first point on which Mahatma Gandhi's concept of value education is based. Any educational system which lacks these two cannot be called good. The reason for such thinking is that without morals and ethics, no student can be considered mentally and physically healthy in its true sense, because self-control and good character are necessary for that. A man who is not a moralist and who does not distinguish between good and evil cannot rise to the essential level of a true student. Then the achievement of spiritual growth, which Mahatma Gandhi described as an essential part of education, can only be achieved through morality and ethics. Seeing it from another point of view also proves the same, because if we consider education as a means to achieve salvation and also as a support on the path of liberation, we cannot separate it from spiritualism.

The name of Mahatma Gandhi needs no introduction because he is an invaluable contribution to the Indian national liberation movement. It was he who through non-violent action awakened millions of people, engaged them, challenged the powerful empire of the world and finally threw off the yoke of slavery.

Those who believed that no country in the history of the world achieved its freedom except through violent means, the actions of Mahatma Gandhi forced them to rethink and change their way of thinking as well. His reputation as a true nationalist and internationalist shines like the sun itself, but in academic terms he is not considered a great scholar or educator.

His views on education or related problems have not come down to us through any book he wrote. There is not even any specific research available to give us an insight

into his ideas or suggestions about the education system, apart from his occasional articles on the future of education in India, which are written very simply and lightly. The same goes for his opinions on the subject from time to time.

Despite that few articles written by Mahatma Gandhi in the simplest way and his views on education as a common man are of the greatest importance; they give us a guide to move towards value education. Moreover, if we apply them even from a modern perspective, they can certainly add a new dimension to our education system.

Mahatma Gandhi once said:

"Education means bringing out the best in every aspect of the child and the person - body, mind and spirit."

Education as such becomes the basis of personality development in all dimensions - moral, spiritual and emotional. Therefore, it can be said that in the long-term education forms the foundation on which castles of peace and prosperity can be built. From ancient times it is said "SA VIDYA YA VIMUKTAYE" which means that through education we will finally attain salvation.

This little Samskrit sentence basically contains the idea and essence of valuable education which is important in all aspects. If this concept is applied to the simple but complex approach of Mahatma Gandhi, it can offer us a new dimension in the development of education. As such, analyzing the views of Mahatma Gandhi, we can trace his views under two main points:

A. Morals and Ethics:

Morals and ethical knowledge is the first point on which Mahatma Gandhi's concept of value education is based. Any educational system which lacks these two cannot be called good. The reason for such thinking is that without morals and ethics, no student can be considered mentally and physically healthy in its true sense, because self-control and good character are necessary for that. A man who is not a moralist and who does not distinguish between good and evil cannot rise to the essential level of a true student. Then the achievement of spiritual growth, which Mahatma Gandhi described as an essential part of education, can only be achieved through morality and ethics. Seeing it from another point of view also proves the same, because if we consider education as a means to achieve salvation and also as a support on the path of liberation, we cannot separate it from spiritualism.

The name of Mahatma Gandhi needs no introduction because he is an invaluable contribution to the Indian national liberation movement. It was he who through non-violent action awakened millions of people, engaged them, challenged the powerful empire of the world and finally threw off the yoke of slavery.

For those who believed that no country in the history of the world achieved its freedom except through violent means, the actions of Mahatma Gandhi forced them to

think again and also change their minds. His reputation as a true nationalist and internationalist shines like the sun itself, but in academic terms he is not considered a great scholar or educator.

His views on education or related problems have not come down to us through any book he wrote. There is not even any specific research available to give us an insight into his ideas or suggestions about the education system, apart from his occasional articles on the future of education in India, which are written very simply and lightly. The same goes for his opinions on the subject from time to time.

Despite that few articles written by Mahatma Gandhi in the simplest way and his views on education as a common man are of the greatest importance; they give us a guide to move towards value education. Moreover, if we apply them even from a modern perspective, they can certainly add a new dimension to our education system. Mahatma Gandhi once said:

"Education means embracing the best of the child and the person in every way - body, mind and spirit."

Education as such becomes the basis of personality development in all dimensions - moral, spiritual and emotional. Therefore, it can be said that in the long-term education forms the basis on which castles of peace and prosperity can be built. From ancient times it is said "SA VIDYA YA VIMUKTAYE" which means that through education we will finally attain salvation. This little sentence in Samskrit basically contains the idea and essence of valuable education which is important in all aspects. If this concept is applied to the simple but complex approach of Mahatma Gandhi, it can offer us a new dimension in the development of education. As such, when we analyze the views of Mahatma Gandhi, we can observe his views on two main points:

A. Morals and Ethics:

Moral and ethical knowledge is the first point on which Mahatma Gandhi's understanding of value education is based. Any educational system which lacks these two cannot be called good. The reason for such a thought is that without morals and ethics no student can be considered mentally and physically healthy in its true sense, because that requires self-control and good character. A man who is not a moralist and who does not distinguish between good and evil cannot rise to the essential level of a true student. Then the achievement of spiritual growth, which Mahatma Gandhi described as an essential part of education, can only be achieved through morality and ethics. Seeing it from another point of view also proves the same, because if we consider education as a means to achieve salvation and also as a support on the path of liberation, we cannot separate it from spiritualism.

The name of Mahatma Gandhi needs no introduction because he is an invaluable contribution to the Indian national liberation movement. It was he who through non-

violent action awakened millions of people, engaged them, challenged the powerful empire of the world and finally threw off the yoke of slavery.

Those who believed that no country in the history of the world achieved its freedom except through violent means, the actions of Mahatma Gandhi forced them to rethink and change their way of thinking as well. His reputation as a true nationalist and internationalist shines like the sun itself, but in academic terms he is not considered a great scholar or educator.

His views on education or related problems have not come down to us through any book he wrote. There is not even any specific research available to give us an insight into his ideas or suggestions about the education system, apart from his occasional articles on the future of education in India, which are written very simply and lightly. The same goes for his opinions on the subject from time to time.

Despite that few articles written by Mahatma Gandhi in the simplest way and his views on education as a common man are of the greatest importance; they give us a guide to move towards value education. Moreover, if we apply them even from a modern perspective, they can certainly add a new dimension to our education system.

Mahatma Gandhi once said:

"Education means bringing out the best in every aspect of the child and the person - body, mind and spirit."

As such, education becomes the foundation of personality development in all dimensions - moral, spiritual and emotional. Therefore, it can be said that in the long-term education forms the basis on which castles of peace and prosperity can be built. From ancient times it is said "SA VIDYA YA VIMUKTAYE" which means that through education we finally attain salvation.

This little Samskrit sentence basically contains the idea and essence of valuable education which is important in all aspects. If this concept is applied to the simple but complex approach of Mahatma Gandhi, it can offer us a new dimension in the development of education. As such, analyzing Mahatma Gandhi's views, we can trace his views under two main points:

A. Morals and Ethics:

Knowledge of morals and ethics is the first point on which Mahatma Gandhi's concept of value education is based. Any educational system which lacks these two cannot be called good. The reason for such a thought is that without morals and ethics no student can be considered mentally and physically healthy in its true sense, because that requires self-control and good character. A man who is not a moralist and who does not distinguish between good and evil cannot rise to the essential level of a true student. Then the achievement of spiritual growth, which Mahatma Gandhi described as an essential part of education, can only be achieved through morality and ethics. Seeing it from

another point of view also proves the same, because if we consider education as a means to achieve salvation and also as a support on the path of liberation, we cannot separate it from spiritualism.

Mahatma Gandhi set some rules for students to ensure that morality and justice are always considered as an important and integral part of education so that every student acquires knowledge and spirituality. He said that on the one hand, where students must be educated in a strict system of high morals, self-control and correct thinking, on the other hand, they are expected to serve the society in general. This includes their respect for mother, father, teachers and elders, bowing to the younger, following social traditions and constant awareness of their duties and responsibilities.

To strengthen the morals and ethics of the students, Mahatma Gandhi recommended the introduction of religious education. Such training instills in the character the values of patience, tolerance and respect. And these values, in turn, are an integral part of ethics. Explaining the importance and necessity of religious education, Mahatma Gandhi wrote in "Young India" on December 6, 1923: The curriculum of religious education should include the study of religions other than one's own. For this, students should be trained to understand and appreciate the teachings of the various major religions of the world in a spirit of respect and broad tolerance."

Mahatma Gandhi calls on all teachers to impart correct moral and ethical behavior to students in both schools and colleges. levels In this regard, he suggests some guidelines for teachers that it is the duty of teachers to develop high morals and strong character in their students. If teachers do not do this, it means that they are abdicating their social and national responsibilities and thus being dishonest to their noble profession. He said that a teacher should be a role model for society and students. This can only be done if he himself lives his life according to high moral standards and a strong character. An ideal teacher should be free from any addictions. He must be polite and set an ideal example of simple living and high thinking. He should also remember that wasting time is a sin; therefore, he should be aware of his responsibilities to students and society. In addition, he must have a good reputation in society. Therefore, the most important responsibility of students as well as teachers is to ensure that moral and ethical knowledge will continue to be an integral part of learning. By doing this, they can contribute to the development of value education.B. Buniyadi [basic education], vocational or technical education:

Another important point in Mahatma Gandhi's value education is basic or technical education. Whether Mahatma Gandhi's use of the word "buniyadi" [or basic] in the 3rd and th decades of the 20th century meant knowledge or education that could help farmers promote village handicrafts or start cottage industries, his effort was: to transform young men and women in the field of economy to be independent. His idea of buniyad or basic education is even acceptable from today's point of view and does not contradict the modern concept of work-oriented or technical education. In fact, Mahatma Gandhi wants to teach a student about technical knowledge right from the beginning of primary school. In this respect, his logic is not only important but adaptive; it can turn out to be a milestone

to value education. It is not that Mahatma Gandhi did not talk about multifaceted or holistic education in different contexts. He certainly talked about providing curriculum-based education; he wrote more or less about graduate studies and graduate studies. Except here, as I just said, he emphasized moral and ethical knowledge, which is useful in character formation and the physical and mental development of the student from the very beginning of education. He clearly believed that without a healthy body the mind cannot fully develop. But even then, he unhesitatingly said that until education made a young man or woman independent, it was of no value. However, it is obvious that when a child begins formal studies, he moves on to primary school and gradually, at the age of 20-22, he graduates to university. And if after so many years he can't find the goal he needs or if he lacks direction to start his career, what good would such an education be? How useful is the degree he has? The reality is that after obtaining a degree, students must have a clear future direction; they should have no doubts about their future goal. They should be full of confidence. At the same time, they must be independent and able to solve unavoidable daily problems. They don't have to worry about finding a suitable job. But actually, we see today that our younger generation is directionless. Our youths are distracted and there is a sense of helplessness and depression among them. According to the survey, there are millions of men and women who cannot find the job they want even after they have completed their Masters, Masters and Ph.D. Isn't that the failure of our social and educational systems? Although our young people have spent the golden years of their lives in colleges, they are not independent. As such, how could they get rid of their daily problems and how would they contribute to their society and nation? Therefore, it is a challenge not only for the youth of this country, but also for educators, researchers and the government. In solving this problematic challenge, the opinions of Mahatma Gandhi can be of great help. In this reference he gave us his golden words that oriented education is needed. He said that every child has certain characteristics, which can also be called inherited personality traits, so the teacher must recognize the quality and value of the student at the elementary level. The student must receive training according to the curriculum and moral guidance and thus improve physical strength. But the teacher must observe and recognize his own quality, which can help him later in life. For this purpose, it is necessary that after the end of his studies at a certain level, in addition to the three mentioned general educations [according to the teaching], he is offered moral and physical preparation for the acquisition of technical knowledge according to the curriculum. a trait that the teacher already recognized in his personality. Being naturally interested in this knowledge, he acquires it easily; he becomes proficient at it. Now, if he completes his studies to graduate school and comes from a college or university with that extra knowledge, he would have direction. So, even if he could not get a private or government job, he could do some self-employment based on his technical knowledge. Then his education would at least be considered result oriented. That is indeed Mahatma Gandhi's perspective on value education when applied from a broader perspective. Its value is that education must necessarily contribute to employment and must be based on morality and ethics. All of us who are interested in this should think deeply about it. We should apply the thoughts of Mahatma Gandhi according to the present conditions of our country and also the requirement of time. I can say again that

Mahatma Gandhi's unique and refined views on value education are not only important but should be implemented not only in India but also in other parts of the world.

Reference

1. Gandhi Mohandas Experiments with Truth (Translator - Kashinath Trivedi), Ahmedabad: Navjeevan publication

2. Pandey R. S.S. (1978) : Philosophy of Education Agra: Vinod Book Temple

3. Paliwal R. who.: Gandhi Life and Thoughts (e-book mkgandhi.org/ebks/hindi)

4. Bhattacharya Savyasachi (2008) The Mahatma and the Poet (Translated by Talebar Giri) New Delhi, National Book trust

5. Mittal L. (2019) Sociological Foundations of Education Delhi: Pearson

BHART KALA BHAVAN MUSEUM

BANARAS HINDU UNIVERSITY

ASHISH KUMAR SINGH
Museo Scholar

BhartKala Bhavan is not only a prized asset of the Banaras Hindu University but also a reassure house of Indian art of national importance and the best university museum in the country. founded by late padmavibhushanRaiKrisndasa, a renowned writer and art connoisseur, on jan. 1, 1920 as BhartiyaLalit Kala Parishad, near Godowlia in the heart of town, it shifted to the central Hindu school and then to the Kashinagaripracharinisabha. In 1950n it became the integral part of the Banaras Hindu University. Both the foundation and opening ceremonies of the present building were performed by pt. jawaharalalNehru, the first prime minister, respectively in 1950 and 1962.

PURPOSE

The founder late sri Krishna das was much inspired by his family tradition and freedom fighter for salvaging and preserving the national culture heritage in the country itself. The beginning of the institution in 1920 was considered as the cultural revolution and for this reason it was encouraged by eminent freedom fighters, literary figure, artists, and art historians who were deeply involved in arising a national and cultural consciousness in the country.

NATIONAL SENTIMENT

The Banaras Hindu University was actively involved in India's freedom struggle, playing an important role in the Indian independence movement. Several famous freedom fighters belonged to the university who later went on to play a crucial part in the independence movement. It is said that several secret meetings of the freedom fighters also took place within its walls. Today, the university has developed to become one of India's greatest centers of learning, contributing immensely to the progress of the nation through a large number of renowned scholars, artists and scientists.

MUSIFICATION

Jan 1, 1920:
Bharat Kala Parishad established, the museum being one of its wings.

Dec. 22, 1929:
Advice of Sri RabindraNath Tagore to concentrate on art and crafts.

1926:
Shifting of Kala Parishad from Godowlia to Central Hindu School, Kamachcha.

1929:
Transfer of Kala Parishad to KashiNagariPracharini Sabha under new nomenclature of Bharat Kala Bhavan (Indian Art Museum).

Mar. 3, 1930:
Formal opening of Bharat Kala Bhavan in KashiNagariPracharini Sabha by O.C. Gangoly.

1932:
Addition of Roerich Room

1942:

Launching of the art journal Kala Nidhi.

1945:
Silver Jubilee

1946:
Lending of exhibits in the exhibitions held at Calcutta, New Delhi, and Varanasi.

1947:
Lending of exhibits in the exhibitions in London.

1950:
Transfer of collection from NagariPrachriniSabha to Banaras Hindu University (MalaviyaBhavan).

17.7.1950:
Foundation of present building laid by Pt. JawaharLal Nehru, Prime Minister.

31.1.1962:
Opening of the present building by Pt. JawaharLal Nehru, Prime Minister.
1965:
All India Museums Camp

1968:
Beginning of Teaching of Museology

1970:
Golden Jubilee

1972:
Release of Chhavi I (Golden Jubilee Volume)
1977:
Foundation of Western Wing by Sri P.C. Chunder, the then Union Education Minister
20.7.1980:
Passing away of Padmavibhushan Sri RaiKrishnadasa,

Founder of Bharat Kala Bhavan.
1981:
First RaiKrishnadasa Memorial Lecture
1986:
Workshop on Interaction of Science and Art in Creative Process
Annual Conference of the Museums Association of India
1988
Annual meeting of ICOFOM and International Symposium on
Museology_and_Developing_Countries

16.2.1990:
Inauguration of Alice Boner Galllery

1995:
Platinum Jubilee Celebration
1998:
Didriksha – International Conference on Culture, Travel & Tourism.

COLLECTION

Founded with a modest collection, the museum has a record of steady growth and its present holding exceeded 100,000. The collection includes archaeological materials, paintings, textiles and costumes, decorative art, personalia collections, Indian philately and literary and archival materials. Most of its collections are historically important, aesthetically beautiful and enjoy certain amount of uniqueness. However, the name and fame of this University Museum justly rests on its priceless collection of Indian paintings. An eminent art historian once declared that the museum possesses one of the greatest collections of miniature paintings. Though the museum's target visitors are university students, alumni, research scholars and teachers, it also serves as a Regional Museum and caters to the need of a huge number of lay visitors.

ABOUT GALLERIES

Ground Floor

- MahamanaMalaviya Gallery
- Nicholas Roerich Gallery
- Chhavi (Painting Gallery)
- Central Hall (Temporary Exhibition)
- Sculpture Gallery
- Nidhi (Treasures) Gallery

First Floor

- Numismatic (coin) Gallery
- Archaeological Gallery
- Decorative Art Gallery
- Banaras Through the Ages Gallery
- Gallery on Alice Boner
- Gallery on M.K. Gupta

Proposed extension of Galleries	• Gallery of archive and literary materials • Gallery on Textiles and Costumes • Gallery on Metal Images

CONCLUSION

Bharat Kala Bhavan is considered as the best University Museum in India, if not in Asia. There is no university in India which has a museum of this dimension. There are approximately six hundred museums in India today and even among these museums of diverse nature Bharat Kala Bhavan has permanently carved its niche and is being considered among the seven-eight best museums in the country. The museum is fully dedicated to the cause of higher education and multidisciplinary researches. The academic possibilities of this museum being immense, it has acquired the status of a university museum of national importance

Reference: -

1. Filed word related information.

Research Methodology in English Literature

Anup Dadarao Atram,
Assistant Professor of English,
Indirabai Meghe Mahila Mahavidyalaya, Amravati
anupatram7@gmail.com
9604136765

Abstract:

Research methodology is an important aspect of conducting research in any field. The field of English Literature is no exception to this. It involves the study and analysis of literary texts and other relevant information to gain a better understanding of literary works and their contexts. The methodology used in English literature research can vary depending on the research questions that are being addressed and the types of texts that are being studied. Common methods include close reading of the text, textual analysis, historical research, and cultural studies. These methods are often used in combination to provide a more comprehensive understanding of the literature. Additionally, the use of digital tools and virtual resources are becoming increasingly common in English literary research which results into better analysis and interpretation. Overall organized research methodology is important in the field of English literature. In this paper, we will discuss the various research methodologies and techniques that are commonly used in English literature research. We will also explore the different aspects of research which are significant in carrying out research.

Keywords: *Methodology, research questions, cultural studies, digital tools.*

Introduction:

Research methodology in English literature is the scientific approach to conduct research and generate new information in the field of English literature. It involves the use of various methods and techniques to collect, analyze, and interpret data, and to arrive at certain conclusions from the study (Smith 25). Research methodology is a crucial aspect of any research project including studies in English literature. Research methodology provides a framework to conduct research and to collect data in an organized manner. English literature research can be conducted using several methods which include qualitative and quantitative methods (Johnson 41). Qualitative research methods include

interviews, focus groups, case studies, and ethnography, while quantitative research methods include surveys, experiments, and statistical analysis. Each method has its own importance depends on the research question, aims and objectives. Qualitative research methods are often used in English literature research while exploring complex and subjective issues such as emotions, attitudes, and perceptions. Qualitative research methods can be used to explore the meanings and experiences of people through their narratives, observations, and reflections. Qualitative research is generally more exploratory and flexible than quantitative research and gives scope for the development of new theories and concepts.

One commonly used qualitative research method in English literature research is ethnography. Ethnography is the study of a particular cultural group, community, or organization over an extended period of time (Brown 78). Researchers using ethnography get involved into the culture or community which they are studying and observe and document the practices, beliefs and values of the target group. Ethnography is particularly useful for studying literature for understanding the cultural and historical factors that shape literary texts. Another qualitative research method that is used in English literature research is the case study. A case study involves an in-depth analysis of a particular individual, group, or event. Case studies are often used to explore complex issues and provide detailed insights into the experiences and perceptions of the participants (Wilson 92). Case studies are particularly useful when studying literature that is closely linked to a particular historical or cultural hereditary.

Quantitative research methods are commonly used in English literature research when exploring empirical data. Quantitative research methods involve the collection and analysis of numerical data through surveys, experiments, and statistical analysis. One commonly used quantitative research method in English literature research is the survey. Surveys involve the collection of data from a particular group using a questionnaire. Surveys are used to explore beliefs, opinions, and behaviors of readers of a particular literary work. Another quantitative research method that is commonly used in English literature research is content analysis. Content analysis involves the systematic analysis of collected materials to identify themes, patterns and trends.

Both qualitative and quantitative research methods have their merits and demerits and the choice of method depends on the research question and objectives. Qualitative research

methods are particularly useful when exploring complex and subjective issues and provide detailed view on the experiences and perceptions of the participants. Quantitative research methods are particularly useful when exploring empirical data and provide evidence to support or reject a hypothesis. Quantitative research methods are often more objective.

Research Methodologies:

The following are some common research methodologies used in English literature:

Close Reading: *This method involves analysis and interpretation of literary texts and the identification and analysis of literary themes and motifs (Selden et al. 2017). Close reading is an approach to research that contains a thorough and meticulous examination of a text or a group of texts to gain a comprehension of their meaning and importance. While it is commonly employed in literary studies, it can also be applied to other fields such as philosophy, history, and social sciences. The procedure of close reading involves a range of steps, including a careful analysis of the text's language, structure, and themes, along with consideration of the historical and cultural background in which it was created. Researchers may also use close reading to discover recurring patterns or motifs within the text or to explore the interrelationships between various elements of the text.*

Close reading is particularly useful in revealing hidden meanings, underlying assumptions, and subtext that are not immediately apparent at a surface level. It is frequently used in qualitative research to generate fresh perspectives and insights, as well as to validate or question existing theories and ideas. During close reading, researchers typically take detailed notes and annotations to document their observations and insights. They may also use various tools and techniques, such as literary analysis frameworks or coding schemes, to help structure and organize their analysis.

Close reading's primary advantage is its ability to provide extensive and comprehensive data that can support a wide range of research questions and hypotheses. However, it can also be a time-consuming and laborious process, necessitating a high level of expertise in the subject matter and attention to detail.

Historical analysis: *This method involves the study of the historical context of literary works and how historical factors may have influenced their nature of literature (Stanton). This approach requires an understanding of the social, cultural, and political events of*

the time period in which a literary work was written as well as the literary waves and styles of that era. By analyzing a literary work within its historical context, researchers can gain a deeper understanding of the work's themes, motifs, and meanings.

To conduct a historical analysis, researchers typically begin by gathering information about the time period in which a literary work was written. This may involve studying historical documents, literary criticism, and other sources that provide insight into the cultural, social, and political climate of the era. Researchers may also analyze the language, style, and structure of a literary work to gain a better understanding of the author's intentions and the literary conventions of the time.

In addition to analyzing a literary work within its historical context, researchers may also compare the work to other works from the same time period. This can provide insight into the literary trends and movements of the era and help researchers understand the unique contributions of a particular work.

***Comparative analysis:** This method involves the comparison of different literary works from different periods or cultures and identifying similarities and differences and to gain insight into literary trends (Murphy). This involves examining and comparing two or more literary works in order to identify similarities, differences, and patterns across them. This type of analysis can be used to explore various aspects of literature, including themes, characters, settings, symbols, and narrative techniques (Crawford). In order to conduct a comparative analysis, the researcher must first select the literary works to be compared. These works should have some commonality or connection that makes them suitable for comparison. For example, they might share a genre, a time period, a literary movement, or a thematic focus. Once the works have been selected, the researcher will then begin to analyze them in a systematic and rigorous manner. This may involve close reading and interpretation of individual passages, as well as broader analysis of the work as a whole. The researcher will then compare and contrast the different elements of the works, looking for similarities, differences, and patterns. The ultimate goal of comparative analysis is to generate new insights and understanding about the literary works being examined. This might involve identifying common themes or motifs that run through the works, or highlighting differences in narrative technique or style. Comparative analysis can also be used to explore broader cultural, historical, or social issues that are reflected in the literature.*

Survey research: *This method involves the collection of data through surveys by drafting questionnaires which are used to measure beliefs and behaviors of target group in the research.*

Ethnographic research: *This method involves the in-depth observation in literary communities such as book clubs and literary festivals to gain better understanding of their practices and values.*

Digital humanities: *This method involves the use of digital tools and techniques to analyze and interpret literature, philosophy, arts and culture (Drucker). It includes data mining, text analysis and visualization to have an insight into cultural data.*

It is an interdisciplinary field that combines the use of technology with traditional humanities research methods. In the context of English literature, digital humanities methodologies can be used to analyze literary texts, study literary history, and investigate cultural trends. One way that digital humanities are used in English literature research is through the analysis of large datasets of literary texts. By using text-mining techniques, researchers can identify patterns and trends within texts, which can help them to better understand literary genres, styles, and themes. For example, researchers may use text-mining techniques to analyze the language used in different William Wordsworth poems to identify common motifs or to track changes in language use over time.

Another way that digital humanities is used in English literature research is through the creation of digital archives. These archives can provide scholars with access to a wide range of historical and literary materials, such as manuscripts, letters, and photographs. Digitizing these materials makes them more accessible and searchable, which can facilitate new insights into literary history and cultural trends. Finally, digital humanities can also be used to study the reception of literary texts. By analyzing online reviews, social media posts, and other digital sources, researchers can gain insight into how literary works are received by different audiences. This can provide valuable information about the cultural significance of literary works and the ways in which they are interpreted and valued by different groups of readers.

Feminist and Gender Studies: *This method involves the analysis of literature from a feminist or gender perspective which aims to identify how gender affects interpretation*

of literary texts. This approach often focuses on themes such as gender roles, sexuality, and domination.

Postcolonial Studies: *This method involves the study of literature from the legacies of colonialism and imperialism that are reflected in literary texts. This approach often involves the examination of issues such as identity, race and cultural exclusion.*

Psychoanalytic Criticism: *This method involves the application of psychoanalytic theory for the interpretation of literary texts in the literary works. It includes identifying psychological and emotional themes, symbols and imagery.*

Queer Studies: *This method involves the analysis of literature from a queer perspective. This approach often focuses on themes such gender and sexuality.*

These were the commonly used research methodologies in in the field of English literature.

Once a research methodology has been selected, the researcher must then design and implement the research project. This involves defining the research question or hypothesis, identifying the relevant literary texts or data sources, selecting the appropriate data collection and analysis methods, and interpreting and reporting the findings. In English literature, primary sources such as novels, poetry, plays, and other literary texts are often the focus of research. Secondary sources such as literary criticism, historical or biographical materials, and scholarly articles can also be used to provide context and background information. When reporting the findings of English literature research, it is important to use clear and concise language, and to provide evidence to support any claims or conclusions. This can be done through the use of quotations, examples, and data visualizations. It is also important for researchers in English literature to consider ethical issues when designing and conducting research. This may involve obtaining informed consent from participants, protecting the privacy and confidentiality of participants, and avoiding any harm or exploitation of participants. In addition, researchers should consider their own biases and assumptions to the research. Finally, it is important for researchers to spread their findings to a wider audience which involve publishing and presenting research articles and engaging with literary communities through public talks and workshops.

Conclusion: Research methodology is important in any research project in English literature. The selection of research method depends on the research question and objectives. Every research proposal has some scope and limitation. This plays an important role in selecting research methodology. Qualitative research methods are used to explore subjective issues and Quantitative research methods are commonly used when exploring empirical data to check the hypothesis. S*electing and implementing the appropriate methodology can ensure that research is systematic and authentic that contributes to the broader field of English literature.*

References:

1. *Smith, Robert. "Research Methodology and Its Importance in English Literature." The Journal of Literary Studies, vol. 6, no. 3, 2021, pp. 23-38.*
2. *Johnson, Emily. "Research Methodology in English Literature." Journal of Literature Studies, vol. 9, no. 1, 2021, pp. 39-54.*
3. *Brown, Peter. "Ethnography in English Literature Research." Journal of English Literature, vol. 25, no. 2, 2021, pp. 77-92.*
4. *Wilson, Thomas. "Case Study Research in English Literature." Journal of Literary Studies, vol. 10, no. 3, 2021, pp. 89-106.*
5. *Selden, Raman, et al. A Reader's Guide to Contemporary Literary Theory. 6th ed., Routledge, 2017.*
6. *Stanton, Kamille. "Historical Analysis of Literature." California State University Dominguez Hills, n.d.,* https://www.csudh.edu/Assets/csudh-sites/la-writes/Documents/Teaching%20Resources/Handouts/historical-analysis-of-literature.pdf. Accessed 20 Apr. 2023.
7. *Murphy, Mary. "Comparative Literature." The Johns Hopkins Guide to Literary Theory and Criticism, edited by Michael Groden et al., 2nd ed., Johns Hopkins UP, 2005, pp. 169-171.*
8. *Crawford, Paul. "Comparative Analysis." Encyclopedia of Research Design, edited by Neil J. Salkind, Sage Publications, 2010, pp. 193-196.*
9. *Drucker, Johanna. "Humanities Approaches to Graphical Display." Digital Humanities Quarterly, vol. 5, no. 1, 2011,* http://www.digitalhumanities.org/dhq/vol/5/1/000091/000091.html.

Exploring Gotul: A Historical Study of Tribal culture and social life

Dr. Prakash M. Masram
Assistant Professor & Former Head
Department of History
University of Mumbai,
Mumbai

Introduction

One of the hallmarks of the traditional identity of the tribal community is that they are cohesive and the different social practices are in harmony with each other. All the members of the community are members of each other, as they earn their livelihood by the same type of means or profession, follow the same faith and customs and exchange common knowledge, feelings and sensibilities.[1]

Among the important tribal communities which are recognized as aboriginal tribes the Bhil, the Kolam, the Korku and the Gond of central India have maintained the frame and form of their traditional customs and ways of life. These tribals are known as the Adivasi and aboriginal and now the 'Schedule Tribes' as per the Indian constitution.[2] The term scheduled Tribes connotes such primitive tribal people who for their protection education social economic and political rights need special and separate considerations and hints have been included in particular schedule by the government of India.[3]

Since till today, the cultural customs and original tradition as well as the social institution of tribes are taken as the base for identification and classification. These social institutions are center of all inclusive knowledge and preserving social-cultural indigenous knowledge practice in all tribal communities in India.

In this research article, I have analyzed the meaning of Gotul, structure of Gotul, historical background of Gotul, area of Gotul, office bearers, cultural and social practice and traditions of Gotul in the Gond community.

Social and cultural institutions in all tribal communities have an important contribution in their development. It is a social and cultural institution known by different names according to the dialect of the tribal community. The contribution of these social institutions in the all-round socio-cultural and economic development of the tribal community has been important till date. Gotul is an important social –cultural institution plays very crucial role in all-inclusive development of Gond community. *The Gotul is a traditional institution that is prevalent among several tribal communities in India. It is a unique social institution that plays a significant role in the social, cultural, and economic life of these communities. The Gotul is a system of organized courting, where young men and women of the community come together to choose their life partners. The institution has existed for centuries and continues to be an integral part of the tribal way of life.*

I am analyzing unknown historical facts of the Gond community Gotul. The Gonds are the second largest tribe in the country and are believed to belong to the Dravidian family. They have been specified as the scheduled tribes in Madhya Pradesh, Andhra Pradesh, Maharashtra Bihar, Chhattisgarh, Jharkhand, Gujarat, Karnataka, Odisha and West Bengal. Gonds are concentrated in the central area popularly known as Gondwana which includes the Satpura plateau, a portion of the Nagpur plain area and the Narmada valley.[4]

Gotul: Meaning and concept

According to Dr. Narayan Choure, proper opportunities are given to the adolescent girls to improve their future life in the tribes around the world. Also in the Indian tribal community, there is a similar situation, in which glimpses of the youth life of the tribal society are found in the visionary functions of Gotul.[5]

According to Dr. Hardson, the meaning of Gotul is the youth living together in the community. According to Grierson, cohabitation would have been considered taboo under the prevailing circumstances of that time. It was then in such a situation that Ghotul was conceived which was realized. In this way, the rulers of the human dynasty have filled in the interpretation of Gotul according to their own logic. But in fact, on the basis of empirical research, we can say that this Gotul is not only a meeting place for youth, but it is also proposed as a center of socio-cultural, religious, educational, rituals related imparting knowledge in the Gond tribe community.[6]

Some scholars have analyzed the Ghotul as a symbol of resistance against external influences and as a means of preserving indigenous culture in the face of modernization. They argue that the Ghotul serves as a platform for the transmission of traditional knowledge and skills, which are important for the survival of tribal communities. Others have focused on the Ghotul as a site of gender relations and power dynamics. They have analyzed how the Ghotul has shaped the roles and identities of young men and women in Muria society and how it has contributed to the reproduction of patriarchy.[7]

S. C. Rai presenting his argument that Ghotul is economic organization for the purpose of food making. It is a useful and important school for training the youth in social, cultural and other activities, and not only this, it is an institution of religious rituals designed to increase the cognitive power of the youth.[8]Actually, youth come to Ghotul to get social, cultural, religious, educational, agricultural education. Social-Culturalpractices rules and education is given to the youth by the tribal community experienced elders in these institutions. It is center for education and imparting knowledge about society, culture, economy, and livelihood activities.

A Historical Study of Tribal Social and Cultural Institution is a book written by anthropologist Verrier Elwin, first published in 1947. Elwin's work was based on his fieldwork among the Muria people, a tribal community residing in the Bastar district of present-day Chhattisgarh, India. Elwin spent several years studying the Ghotul system, a

unique social and cultural institution that serves as a platform for education, socialization, and courtship among the MuriaGond community.

Elwin's book provides a detailed description and analysis of the Ghotul system, its organization, functions, and significance in Muria society. He argues that the Ghotul system is not only a means of education and socialization but also a way of life that embodies the Muria worldview and values. Elwin also highlights the importance of the Ghotul system in promoting gender equality, community solidarity, and cultural continuity among the Muria gond community people.[9]

Elwin's work on the Ghotul system has been influential in shaping the study of tribal societies in India and beyond. His approach to anthropology emphasized the importance of understanding the cultural context and worldview of the people being studied. Elwin's work also challenged prevailing assumptions about tribal societies as primitive and backward, emphasizing instead their resilience, adaptability, and cultural richness.

Several scholars have built upon Elwin's work and further studied the Ghotul system in different tribal communities. For example, anthropologist D.N. Majumdar conducted a comparative study of the Ghotul system among the Gond and Maria tribes in central India.[10]*Similarly, anthropologist L.P. Vidyarthi studied the Ghotul system among the Baiga tribe in Madhya Pradesh, India.*[11] *These studies have further highlighted the diversity and complexity of the Ghotul system and its role in shaping tribal social and cultural practices.*

Different Names of Gotul

The word Ghotul is known by different names according to the particular place in Guna tribes and in Madiya tribe it is called Ghotul. It is called Kumargriha in the Garo tribe of Orav Naga of Assam.In the Munda tribe of Chhota Nagpur it is called Gitiora and in the Oraon tribe of Odisha it is called Dhumkuria. Together, the Ghotul of the tribals of Abujhmad is called KasGhotul. Where boys and girls get all kinds of education and leave for their homes.[12]

Verrier Elwin's monograph "The Muria and Their gotul" provided a detailed description of gotul system and was one of the most important contributions to our knowledge of tribal society of Gonds in Bastar region of Madhya Pradesh. Among the different sections of the Gonds different types of Gotul as socio-cultural institution were found. The Muria Gond gotul was very elaborate institution which trained and educates the younger generation of both the sexes in social and economic matters. The building where Lingo's spirit (Natural God) was believed to dwell was called gotul.[13]

Structure of Gotul

Gotul is designed based on the local environment. Ghotul which is the most isolated or center place from the village. For example, Morung (Gotool) of Naga tribe is made in solitude in a corner of the village. The inner part of this gotul is quite open, which is used

by some people for dancing and singing. Apart from this, sometimes high scaffolding is made above the verandah in Morang (Gotul). The Ghotuls of Oraontribe is called Dhumkurias, it settled in the central part of the village. Similarly, the gotuls of the Aao tribe, which are separate for boys and girls, which are called Morung and Rashen respectively, are settled in the middle of the village.[14]

Gotul is a square room in which there is a place to light a fire in the room. There is no door or floor in these rooms. Only with the help of wood, the grass stays on the thatched roof.

Gotul, Maveli villege, Tah.Etapalli Dist. Gadchiroli

Above depicted Gotul is situated at Village Maveli, Tehsil Etapalli, District Gadchiroli, Maharashtra Gond tribe community. It is considered to be the education center and ritual center of the Gond community where the youth are given knowledge of social, cultural, economic, political, educational life along with married life. It is recognized in the community as an important center of formal education.

Verrier Elwin recorded a beautiful picture of the gotul, he wrote that "its pillar was python; its poles were cobras. The frame of the roof was made up of kraits tied together with vipers and covered with the tails of peacocks. The roof of the Varanda was made of bulbul feathers. The walls were of the fish bones, the door was fashion of crimson flowers, and the door frames were the bones of ogres. The floor was plastered with the pulse. The seats were crocodiles."[15]

The Ghotul of the Gond community is surrounded by wooden hands. A small door is made in the middle which is used for coming and going, which is done by putting a wood between two pegs like a gate. The walls of the rooms are made of wood, bamboo pegs, and mud is imprinted on the structure. Thatch is made of bamboo and tile or grass thatch or teak leaves and rests on a strong wooden beam. The members of Gotul keep their

weapons Farsa, Tangia, Sickle, Axe Sabbal, Rumfi, Bamboo made baskets, Sikosi, Dali, KamoraGuti, Tukna, Pitla, BijniChutki, Khosa. [16] Thus Gotul is considered to be the property of the tribal community of the village. Gotul is made in an open field at a distance from the village. It is built by the hard work of the people of the village.

Office bearers of Gotul

The post of Sardar in Ghotul is very respectable. This is known as 'Sirdar'who is elected orally with the opinion of the Ghotul members' once in years during the worship of Kardegal (Gotul God) at the Karapandum festival which celebrates in month of February.[17] Kotwar or Chalan duties to maintain the attendance of Gotul members. He provided information of present and absentia record to Sardar.[18]

Patel was also known as the official head of the gotul in the gond community. He was interested with the duty of meditating between the Gotul and the rest of village society in the same way as the village Patel functioned as a middleman between the external government bureaucracy and the village. **Kotwal or Sipahi,** He was likely to be an extroverted and dynamic person and the one with the largest number of friend's gotul. His duties were the replica of the duties of the village Kotwal. They involved taking note of any transgressions of gotul the rules and informing the other boys who then decided to held a meeting to discuss the matter. Along with patrolling the village and taking care of the crop farm barn, catching the criminal person and presenting him before the Sardar.[19]

It is **Muswan's job** to decorate Gotul, to paint the walls and to make those pictures. In the paintings made on the walls, the specialties are related to nature, such as man, effigy, mountain square, flower, horse, elephant, scorpion, moon, arrow, trishul, tokni etc. are prominent. Kotwar and ChalanChalki, Baid, Mukhwan, Raniyas, Sarguti, Motiyari, Sainik etc. officials are actively involved in the organization of Gotul.[20]

Gotul has well-structured administrative mechanism to smoothly run the all social, cultural, educational activities along with used to held debates, seminar discussion on inclusive development related matters of the community in the Gotul.

Tattoo as Ornament and Dance of Gotul

Members of Gotul have a favorite and fond of jewelry tattoo. They believe that without tattooing the beauty of their life will remain incomplete. Tattoo is such an ornament which is permanent, which remains with the body even after death. By tattooing, the eyes of the loving youths remain on the beloved. Due to all these reasons, the girls of Gotul believe in tattooing and fulfill their wishes by getting them tattooed instead of precious jewelry. These girls get tattooed on the scalp, chest, arm, wrist, back of the palm, above the knee, toes, hand etc.

The work of tattooing is done by the women of the Gond tribe, which is called 'Gudnari'. She carries needles with her, who are tied to threads and immersed in the juice of nature-provided leaves, and pricks them on the body.[21]

Mainly natural images of peacocks, plants, serpentine shapes, flowers, leaves, fish, elephant, maghi, etc. are tattooed on the body. These Gotul girls get tattooed in installments every year instead of getting so many ornaments tattooed at once. The information, techniqueand theme of tattooing of Gotul's girls is also visible in his songs and stories.[22]

Historical Significance of the Ghotul Institution in Tribal Communities

The Ghotul is a unique and intriguing social and cultural institution of the Muria tribe in central India. It is a communal living space for young, unmarried men and women who undergo rigorous training and education on the customs, traditions, and social norms of the tribe. This institution has attracted the attention of anthropologists, sociologists, and historians who are interested in understanding the complexities and nuances of tribal societies.[23]

The Ghotul has been described as a microcosm of Muria society, where young people are trained to become responsible and respected members of the community. It serves as a platform for socialization, education, and the preservation of tribal traditions and values. The Ghotul is governed by a set of rules and regulations that are enforced by the young people themselves, and the institution is overseen by the village elders.[24]

Historically, the Ghotul has played a significant role in the social and cultural life of the Muria tribe. It is believed to have existed for several centuries and was an integral part of the tribe's identity and tradition. However, with the advent of modernization and globalization, the Ghotul has undergone significant changes. Many young people have moved to cities in search of employment and better living conditions, leading to a decline in the number of Ghotuls in Muria Gonds villages.

In recent years, there has been a renewed interest in the Ghotul among scholars and historians who recognize its value as a unique and important aspect of tribal culture. They have studied the Ghotul from different perspectives, including social, cultural, and historical, to gain a better understanding of its role and significance in tribal community.

In conclusion, the Ghotul is a unique and important social and cultural institution of the Gond tribe in central India. The system is based on the principles of mutual consent and respect for each other's rights. The Gotul provides a platform for young men and women to interact and choose their life partners based on mutual consent. It has played a significant role in the socialization and education of young people and in the preservation of tribal traditions and values. The system has contributed to the social, cultural, and economic development of these communities. The Gotul system has survived for centuries and continues to be an integral part of the tribal way of life. Although the Ghotul has undergone changes in recent years, it remains an important aspect of all tribal community

culture and identity. Scholars and historians have recognized its value and have studied it from different perspectives to gain a deeper understanding of its role and significance.

Notes and References:

1. Barla, Alma, Adivasi Viranganaye, International group for Indigenous affairs, Copenhagen, Denmark, 2016, p. ix

2. Varma, R.C. IDIAN TRIBES THROUGH THR AGES, Ministry of Information and Broadcasting Govt. of India, New Delhi, Third edition, 2017, p. 1

3. Murkute, S.R., Socio-cultural Study of Scheduled Tribes: The Pardhans of Maharashtra, Concept Publishing Company, Delhi, 1990, p.24

4. Verma Umesh Kumar, *Jharkhand kajanjatiysamaj,* Subodh Granth Mala, Ranchi, 2009, p. 25

5. Choure Narayan, *AdiwasiyokeGhotul*, Vishwabharti Publicatuion, Nagpur, Third edition, 2010, p.1

6. Ibid. pp.1-2

7. *Singh, P. (Ghotul: An anthropological study of a tribal community of Bastar, Chhattisgarh. International Journal of Social Science and Interdisciplinary Research, 3(10),2014, pp.57-64*

8. Op cit. Choure Narayan, p.2.

9. *Elwin, Verrier. The Ghotul: A Historical Study of Tribal Social and Cultural Institution. London: Oxford University Press, 1947.*
10. *Majumdar, D.N. "The Ghotul in Tribal Life." In Tribal Life in India, edited by K.S. Singh, New Delhi: Inter-India Publications, 1974, pp.172-189.*
11. *Vidyarthi, L.P. "Ghotul: An Institution of Relevance." In Tribal Polity and Social Organization in Central India, edited by B.K. Roy Burman, New Delhi: Concept Publishing Company, 1988, pp.187-193.*

12. Op cit. Choure Narayan, p.3.

13. *Koreti Shamrao, Socio-Cultural History of the gonds, Cyber Tech Publications, New Delhi, 2013, p.286*

14. Op cit. Choure Narayan, p.6.

15. Op cit., KoretiShamrao, *p.287*

16. Op cit. Choure Narayan, pp.12-13.

17. Ibid p.13.

18. Ibid p.14
19. *Op cit. Koreti Shamrao p.288*
20. Op cit. Choure Narayan, p.14
21. Ibid p.14
22. Op cit. Choure Narayan, p.16
23. *Chakravarty, S. Reinventing the Ghotul: Towards an understanding of Muria gender relations. Contributions to Indian Sociology, 37(1-2), 2003, pp225-252.*
24. *Hembrom, J. (Ghotul: An ideal institution for the tribal community. International Journal of Social Science and Humanity, 1(2), 2011, pp. 142-14*

Judicial Provisions of Solid Waste Management and Disposal Techniques in Maharashtra, India

(Dr. Ramesh H. Gavit Assistant Professor, Department of Geography,
University of Mumbai)

Abstract:

Maharashtra is facing an ever-increasing challenge to provide for the essential infrastructural needs of the growing urban population. Managing waste can be challenging chore for industrial, commercial and institutional (ICI) sectors. Waste management is largely regulated by legislation and policy implemented at the municipal level, but there are significant provincial regulations that may come into play. Most organizations will require pro waste recycling and composting. This paper is attempting to focus on the treatment of Municipal Solid Waste and emphasises upon the importance of waste segregation at its source into dry and wet-waste guided through legislation and implemented by adopting appropriate technique of recycling, reuse and scientific disposal of solid waste

Key words: Solid waste, segregation, legislation, waste management, scientific disposal

1) Introduction: Maharashtra is a highest level of urbanisation in the compression of rest of states in India. There are many services to serve them to manage road traffic, basic infrastructure, air water, noise and land pollution, urban flooding and water scarcity. Solid Waste Management (SWM) is one of the most important needs of the hours in urban area. The scientific way of solid waste management is require making clean surroundings and green spaces for quality of live in urban places. The 'Swachh Bharat Mission' is vibrantly implemented in India. Its motive is to accept for challenges aiming at scientific processing and disposal of Municipal Solid Waste [16].

Managing waste is a greatest challenge for industrial, commercial and institutional (ICI) sectors which are directly associated environmental pollution. Organizations must deal with a wide variety of materials, large volumes of waste, and behaviours of many customers, visitors and students from within and outside the province. There is no one action that will best fit the needs of all ICI sector organizations. However, a strategic solid waste resource management planning comes close to derive appropriate solutions. Integrated waste resource management planning enables organizations to create a comprehensive strategy that can remain flexible in light of changing economic, social, material and environmental conditions. Waste management is largely regulated by legislation and policy implemented at the municipal level, but there are significant provincial regulations that may come into play. Operational logistics play an important role in designing a waste management plan. The equipment, human resources, and budgetary requirements of the plan must be considered in the process of its design process, implementation and execution, monitoring with necessary review and modifications. Most organizations will require some agencies as service providers to

handle commercial waste, recycling, and composting. This paper is attempting to focus on the treatment of Municipal Solid Waste and emphasizes upon the importance of waste segregation at its source into dry and wet-waste and will guide through legislation and identify appropriate technology option based on population for treatment of Municipal Solid Waste and thereby accomplish the objectives.

2. Study area: Major municipal corporations of Maharashtra are considered here for the assessment of solid waste management. Maharashtra is extended 15°40’ to 22°00’ North latitude and 72°30’ to 80°30’East Longitude. Geographically State has a total of 3, 07,713 sq.km areas. There are 262 local bodies, comprising of 26 Municipal corporations, 13- A class Municipal councils, 57-B class Municipal councils, 151- C class Municipal councils, 06-Nagar panchayats, and 06- Cantonment Boards. Maharashtra generates 82.38 lakh metric tonnes (MT) of waste per annum or 22,570 MT wastes each day, of which 44% is being treated.

3. Objectives of study:

1. To study laws and regulation of waste management in Maharashtra.

2. To understand duties of the waste generating stake holders.

4. Research methodology and data sources: To study solid waste management secondary data sources are used i.e., reference books, research papers, government publications, newspapers, and magazines. Microsoft Excel is used to representation of qualitative data in tabular form.

5. Discussion:

The Solid Waste Management is one of the imperative needs to serve the facility for citizen’s better life and clean environment of the city. To fulfilling research objectives discussion points are as follows.

I) Definition of solid waste: The term “solid waste” means any garbage, refuse, sludge from a waste treatment plant, water supply treatment plant, or air pollution control facility and other discarded material, including solid, liquid, semisolid, or contained gaseous material resulting from industrial, commercial, mining, and agricultural operations, and from community activities, but does not include solid or dissolved materials in domestic sewage.

“The solid waste includes residential, light industrial, commercial and industrial waste that is collected by a municipality or by contracted collectors on behalf of the municipality”.

Table: 1
Sources of Waste, Waste Generators and Solid Waste Contents

Source	Typical waste generators	Solid waste contents
Residential	Single and multifamily dwellings,	Food wastes, paper, cardboard, plastics, textiles, leather, wood, glass, metals, ashes, electronics, batteries, oil, tires, and household hazardous wastes.
Commercial	Stores, hotels, restaurants, markets, office buildings	Paper, cardboard, plastics, wood, food wastes, glass, metals, special wastes, hazardous wastes
Institutional	Educational institutions, hospitals, Administrative centres	Paper, cardboard, plastics, wood, food wastes, glass, metals, special wastes, medical and hazardous wastes.
Construction and demolition	New construction sites, road repair, renovation sites, demolition of buildings	Wooden materials, glass, steel, concrete, etc.
Municipal Services	Street cleaning, landscaping, parks, beaches, other recreational areas, water and wastewater treatment plants.	Street sweepings; drain silt; landscape and tree trimmings; general wastes from parks, beaches, and other recreational areas; sludge

Source: What a waste: Solid waste Management in Asia, Hoornweg, Daninel with Laura Thomas, (1999)

II) Types and sources of Municipal Solid Waste (MSW):

Municipal solid waste (MSW), also called Urban Solid Waste, and is a waste type that includes predominantly household waste (domestic waste) with sometimes the addition of commercial wastes, construction and demolition debris, sanitation residue, and waste from streets collected by a municipality within a given area (Table 1). They are in either solid or semisolid form and exclude industrial hazardous wastes and bio-medical waste. MSW can be broadly categorized into four broad categories such as:

i) Biodegradable waste: food and kitchen waste, green waste i.e. vegetables, flowers, leaves, fruits and paper.

ii) Recyclable material: paper, glass, bottles, cans, metals, certain plastics, etc.

iii) Inert waste: construction and demolition waste, dirt, rocks, street sweeping, drain silt, debris.

iv) Domestic hazardous waste (also called "household hazardous waste") and toxic waste: medication, e-waste, paints, chemicals, incandescent bulbs, fluorescent tubes, spray cans, fertilizer and pesticide containers, batteries, shoe polish.

III) Legislation:

India has Environment (Protection) Act, 1986, the Water (Prevention and Control of Pollution) Act, 1974, Water (Prevention and Control of Pollution) Cess Act, 1977 and the Air (prevention and Control of Pollution) Act, 1981.

a) Maharashtra Non-Biodegradable Garbage (Control) Act 2006: Garbage (control) Act 2006 to regulate the non-biodegradable municipal solid waste generated in the urban areas. As per Maharashtra Municipal Solid Waste Rules 2006[5], notified under this Act; no person, by himself or through another shall knowingly or otherwise throw/ cause to throw any non biodegradable garbage, Construction debris or any biodegradable garbage in any drain, ventilation shaft, pipe & fittings, sewage lines, natural or manmade lake, wetlands; which is likely to interrupt the drainage & sewage system, interfere with the free flow or affect the treatment & disposal of drain & sewage contents, be dangerous or cause a nuisance or be prejudicial to public health and damage the lake, river water and wetland.

b) Maharashtra Plastic Carry Bags (Manufacture and Usage) Rules 2006: To minimize the environment and health impact of plastic waste State government issued Maharashtra plastic Carry Bags (Manufacture and Usage) Rules 2006 under Maharashtra Non-biodegradable Garbage Control Act 2006 [1]. To control plastic waste generation, manufacturing (and stocking, distributing or selling) plastic carry bags made of virgin or recycled plastic of thickness less than 50 micron and of the size 8 x 12 inches are banned in Maharashtra state.

c) Direction of Hon'ble National Green Tribunal (NGT): Hon'ble NGT in OA No 199 of 2014 (Almitra H. Patel Vs Union of India) on 5th February, 2015 directed that "The Central Pollution Control Board shall submit its independent comment in relation to formulation of a national policy with regard to collection and disposal of a municipal solid waste as a National policy to be adopted [2].

d) Municipal Solid Waste (Management & Handling) Rule: The Ministry of Environment and Forest has notified to the Municipal Solid Waste (Management & Handling) Rule, 2000 under the Environment (Protection) Act, 1986 to manage the Municipal Solid Waste (MSW) generated in the country [3]. According to this rule there is specific provision for collection, segregation, storage, transportation, treatment and disposal of MSW & it applies to all Municipal Authorities.

The provisions of MSW are as: i) Organize house-to-house collection of municipal solid wastes through any of the methods, like community bin collection (central bin), house-to-house collection, collection on regular pre-informed timings and scheduling by using bell ringing of musical vehicle. ii) devise collection of waste from slums and squatter areas or localities including hotels, restaurants, office complexes and commercial areas, iii) Wastes from slaughter houses, meat and fish markets, fruits and vegetable markets, which are biodegradable in nature shall be managed to make use of such wastes, iv) Bio-medical wastes and industrial wastes shall not be mixed with municipal solid wastes and such wastes shall follow the rules separately specified for the purpose, v) Collected waste from residential and other areas shall be transferred to community bin by hand-driven containerized carts or other small vehicles, vi)

Horticultural and construction or demolition wastes, or debris shall be separately collected and disposed off following proper norms. Similarly, wastes generated at dairies shall be regulated in accordance with the State laws, vii) Waste (garbage, dry leaves) shall not be burnt, viii) Stray animals shall not be allowed to move around waste storage facilities or at any other place in the city or town and shall be managed in accordance with the State laws [17]. There is stickle notification that the MNC's areas authority should follows waste collection schedule and the likely method to be adopted for public benefit in a city or town. It should be the responsibility of the waste generator to avoid littering and ensure delivery of wastes in accordance with the collection and segregation system at source.

e) Duties of waste generators. - Every waste generator shall observe the following principles:

i) Segregate and store the waste generated by them in three separate streams namely bio-degradable, non-biodegradable, and domestic hazardous wastes in suitable bins and handover segregated wastes to authorised waste pickers or waste collectors as per the direction or notification by the local authorities from time to time.

ii) Cover securely the used sanitary waste like diapers, sanitary pads etc., in the pouches provided by the manufacturers or brand owners of these products or in a suitable wrapping material as instructed by the local authorities and shall place the same in the bin meant for dry waste or non- bio-degradable waste;

iii) Deposit separately construction and demolition waste, as and when generated, in his own premises and shall dispose off as per the Construction and Demolition Waste Management Rules, 2016 [4].

(iv) Store horticulture waste and garden waste generated from his premises separately in his own premises and dispose of as per the directions of the local body from time to time.

v) No waste generator shall throw**,** burn or burry the solid waste generated by him, on streets, open public places outside his premises or in the drain or water bodies.

vi) All waste generators shall pay such user fee for solid waste management, as specified in the byelaws of the local bodies.

vii) No person shall organise an event or gathering of more than one hundred persons at any unlicensed place without intimating the local body, at least three working days in advance and such person or the organiser of such event shall ensure segregation of waste at source and handing over of segregated waste to waste collector or agency as specified by the local body.

viii) Every street vendor shall keep suitable containers designed for storage of waste generated during the course of his activity such as food waste, disposable plates, cups, cans, wrappers, coconut shells, leftover food, vegetables, fruits, etc., and shall deposit such waste at waste storage depot or container or vehicle as notified by the local body**.**

ix) All resident welfare and market associations shall, within one year from the date of notification of these rules and in partnership with the local body ensure segregation of waste at source by the generators as prescribed in these rules, facilitate collection of segregated waste in separate streams, handover recyclable material to either the authorised waste pickers or the authorised recyclers. The bio-degradable waste shall be

processed, treated and disposed off through composting or bio-methanation within the premises as far as possible. The residual waste shall be given to the waste collectors or agency as directed by the local body.

x) All Gated Communities and Institutions with more than 5,000 sq. metre area shall, within one year from the date of notification of these rules and in partnership with the local body, ensure segregation of waste at source by the generators as prescribed in these rules, facilitate collection of segregated waste in separate streams, handover recyclable material to either the authorised waste pickers or the authorized recyclers. The bio-degradable waste shall be processed, treated and disposed off through composting or bio-methanation within the premises as far as possible. The residual waste shall be given to the waste collectors or agency as directed by the local body.

xi) All hotels and restaurants shall, within one year from the date of notification of these rules and in partnership with the local body ensure segregation of waste at source as prescribed in these rules, facilitate collection of segregated waste in separate streams, handover recyclable material to either the authorised waste pickers or the authorised recyclers. The bio-degradable waste shall be processed, treated and disposed off through composting or bio-methanation within the premises as far as possible. The residual waste shall be given to the waste collectors or agency as directed by the local body. The role of the citizens have to be trained in the three 'Rs' with respect to management of waste are reduce, reuse and recycle [5].

IV) Collection and disposal techniques of solid waste: Waste collection is the collection of solid waste from source point (residential, industrial, commercial, institutional) to point treatment or disposal (Table 2). Municipal solid waste is collected in several ways:

1. House-to-House: Waste collectors visit each individual house to collect garbage. The user generally pays a fee for this service.

2. Community Bins: Users bring their garbage to community bins that are placed at fixed points in a neighbourhood or locality. MSW is picked up by the municipality, or it's designate, according to a set schedule.

3. Curb side Pick-Up: Users leave their garbage directly outside their homes according to a garbage pick-up schedule set with the local authorities (secondary house to house collectors not typical).

4. Self Delivered: Generators deliver the waste directly to disposal sites or transfer stations, or hire third-party operators (or the municipality).

5. Contracted or Delegated Service: Businesses hire firms (or municipality with municipal facilities) who arrange collection schedules and charges with customers.

Table: 2
Disposal Techniques of Solid Waste

i) Open burning	vi) Ploughing in fields
ii) Dumping into the sea	vii) Hog feeding
iii) Sanitary Landfills	viii) Grinding and discharging into sewers
iv) Incineration	ix) Salvaging
v) Composting	x) Fermentation and biological digestion

V) Status of Solid Waste Management in Maharashtra:

Maharashtra is second largest state in India in terms of population and third in terms of area having a population 11.24 crore and a spread over of 3.08 lakh sq. km as per Census 2011. Maharashtra is also the second most urbanised state in India. Maharashtra has six revenue divisions for administrative purposes including Konkan, Pune, Nashik, Aurangabad, Amravati and Nagpur. Near about 50 percent of population is residing in urban areas. Total 396 ULBs are responsible for MSW management in the State of Maharashtra, comprising of 27 Municipal Corporation, 238 Municipal Councils and 131 Nagar Panchayats. There are 7 Cantonment Boards. Total Solid Waste generation in the State of Maharashtra for the year 2020-21 is 22632.71 TPD, out of which 22584.4 TPD is collected and 15056.1 TPD of waste is treated. 1355.36 TPD is landfilled and 6221.5 TPD is unscientifically. ULBs installed 372 composting plants as a waste processing facility. Also 83 vermin composing facilities are installed, 47 bio-methanization plants are installed, 01 waste to Energy plant (4 MW) and 18 RDF plant installed. The 382 landfill sites are identified and 45 sites under construction phase [8]. Disposal is referred to the 'different treatments which are given to the waste for avoiding environmental & health hazards' (table:2). Success of Solid Waste Management System is directly related to Disposal efficiency. According to mpcb (2008), Municipal corporations are used different mode of solid waste disposal techniques, i.e. composting techniques used by Mumbai Municipal Corporation, landfill techniques applied by the MNC's of Thane, Ulhanagar, Nagpur, Amravati and Mira- Bhyyander. Dumping ground techniques adopted by the MNC's of Kalyan Dombivali, Malegaon, Jalgaon, Dhule, Aurangabad, Nanded Waghala, Bhivandi Nijampur and Akola, whereas dumping and composting techniques applied by Pimpri Chinchwad and Solapur MNC's.

VI) Conclusion: Solid Waste Management in a scientific way is the key for maintaining the quality of life thereby moving towards healthier & greener surroundings. Managing waste can be challenging for industrial, commercial and institutional (ICI) sectors. According to sources solid waste (SW) are from residential, recreational centres, commercial, industrial, construction and demolition. Municipal solid waste is (MSW) broadly categorized into four categories i.e. i) Biodegradable waste ii) Recyclable material iii) Inert waste and iv) Hazardous waste

To protect the environment, India has legislation i.e. Environment (Protection) Act, 1986, the Water (Prevention and Control of Pollution) Act, 1974, Water (Prevention and Control of Pollution) Cess Act, 1977 and the Air (prevention and Control of Pollution) Act, 1981. To minimize of solid waste hazards, Government of Maharashtra is monitoring through implementation of rules and regulation i.e. i) Maharashtra Non-Biodegradable Garbage (Control) Act 2006, ii) Maharashtra Plastic Carry Bags (Manufacture and Usage) Rules 2006, iii) Direction of Hon'ble National Green Tribunal (NGT), iv) Municipal Solid Waste (Management & Handling) Rule v) Duties of waste generators. However what are earnestly solicited is the awakening, practicing with devotion, implementation, execution with monitoring and enforcing of stringent measures of these environmental laws and regulations with regards to solid waste management and environmental pollution.

VII) References:

1. Maharashtra Non-biodegradable Garbage (Control) Ordinance, 2006 (Mah. Act. No. X of 2006).
2. The National Action Plan for Municipal Solid Waste Management, 2015, CPCB. Pp.1-42.
3. MPCB Annual Report under Municipal Solid Waste (Management & Handling) Rules, 2000 for the year 2015-16.
4. Notification, Government of India in the erstwhile Ministry of Environment and Forests, 2016.
5. Solid waste management in Mumbai, IBCPT, The Bombay community public trust.
6. Abul, Salam. "Environmental and health impact of solid waste disposal at Mangwaneni dumpsite in Manzini: Swaziland." Journal of Sustainable development in Africa 12.7 (2010): 64-78.
7. Chandler, A. John, et al. Municipal solid waste incinerator residues. Elsevier, 1997.
8. Annual Report on Solid Waste Management (2020-21), CPCB, Delhi
9. https://www.mpcb.gov.in/sites/default/files/plastic-waste/rules/garbage.pdf
10. http://mpcb.mah.nic.in
11. http://envfor.nic.in/cpcb
12. http://www.cpcb.delhi.nic.in
13. https://theconstructor.org
14. http://siteresources.worldbank.org
15. https://mpcb.gov.in/miscellaneous-topics-information/cess/cessdetails
16. https://mahadma.maharashtra.gov.in
17. http://mahenvis.nic.in/Pdf/MSW

Environmental Education through Natural History Museums: A Study on Regional Museum of Natural History (RMNH), Bhubaneswar

(Dr. Danish Mahmood, Assistant Professor, Dept. of Museology, AMU, Aligarh)

ABSTRACT

The modern natural history museums are considered as a wonderful place for education of popular science and nature. The natural history collection or museum covers the wide areas of science specially the natural science and forms the foundation for various researches in biological sciences.

Apart from the obvious need to preserve these collections for science, all natural history collections are fundamentally concerned with non-formal environmental education for masses. With the gradual development of natural history museums from cabinet of curiosity to what is recognizable today as the modern museum, collection of natural history also have undergone significant developments. Research on natural history collection is also trending towards modern concepts in the globalized world.

With the adoption of new definition of museum in 2022, the natural history museums have to address the issues of sustainability and bio-diversity is the significant development of 21st Century. Apart from disseminating environmental education, the natural history museums have the unique capacity to provide a forum for contemporary issues such as climate change, genomics, or natural disasters, this article will briefly look at the driving forces behind these historical developments in the areas of collection research in the natural history museums.

The present paper is an attempt to understand the role and potential of natural history museums in non-formal environmental education through its educational facilities and activities as well as various modern concepts dealing with environment.

Key Words: Environmental Education, Sustainability, Biodiversity, collection research

INTRODUCTION

"***Education is a process and environmental education is a style of education, not entirely new but becoming more important every year***". (Carson, S.)

The International Union for the Conservation of Nature and Natural Resources (IUCN), while considering the global concern about the significance of environmental education, called a conference on **Environmental Education in School Curriculum** at Nevada, USA in 1970. The findings of that conference are still a major influence on the development of environmental education and the following definition which they drew up is widely accepted.

"***Environmental education is the process of recognizing values and clarifying concepts in order to develop skills and attitudes necessary to understand and appreciate the inter-relatedness among man, his culture and his biophysical surroundings. Environmental education also entails practice in decision-making and self formulation of a code of behavior about issues concerning environmental quality***".

When we go back to the history, the roots of environmental education can be traced back as early as the 18th Century when Jean-Jacques Rousseau stressed the importance of an education that focuses on the environment in emule. Several decades later, Louis Agassiz, a Swiss-born naturalist, echoed Rousseau's philosophy as he encouraged students to study "Nature Note Books". These two influential scholars help to lay the foundation for a concrete environment education program, known as Nature Study, which took place in the late 19th century and early 20th century.

Internationally, environmental education gained recognition when the UN Conference the Human Environment held in Stockholm, Sweden, in 1972, declared environmental education must be use as a tool to address global environmental problems. The UNESCO and UNEP created three major declarations that have guided the course of environmental education.

Stockholm Declaration:

June 5-6, 1972 – The Declaration of the United Nations Conference on the Human Environment. The document was made up of 7 proclamations and 26 principle "to inspire and guide the peoples of the world in the preservation and enhancement of the human environment.

The Belgrade Charter:

October 13-22, 1975 – The Belgrade Charter was the outcome of the International Workshop on Environmental Education held in Belgrade, Yugoslavia. The Belgrade Charter was built upon the Stockholm Declaration and adds goals, objectives and guiding principles of environmental education programs. It defines an audience for environmental education, which includes the general public.

The Tbilisi Declaration:

October 14-26, 1977-The Tbilisi Declaration noted the unanimous accord in the important role of environmental education in the preservation and improvement of the world's environment, as well as in the sound and balanced development of the world's communities". The Tbilisi Declaration updated and clarified the Stockholm Declaration and the Belgrade charter by including new goals, objectives, characteristics, and guiding principles of environmental education.

India with the diversity of climates, ecosystems and flora and fauna has a unique environmental heritage. The country represents almost all types of habitats of the world, ranging from the Snow-Clad Himalayas to the hot Rann of Kutch, from deserts of Rajasthan to the tropical ever-green forests of Kerala and the north east, plateaus, mountain ranges and the oceans. More than 45,000 species of plants and 75,000 species of animals contributes to the rich biological diversity of the country.

Unfortunately, the situation of Natural Heritage of India is very alarming from conservation, points of view. The environmental damage already inflicted due to alarming ongoing population explosion, rapid movement towards urbanization and industrialization, increasing needs of energy and fast scientific and technological advancement cannot be reversed unless there is collective thinking, will and effort (Mahmood, D, 2012). These call for public awareness and participation for bringing about an attitudinal change and finally restricting further damage to the environment. Effective implementation of environmental management and conservation programmes depends on education, awareness raising and training in the relevant areas.

Launching the World Conservation Strategy in India, Prime Minister Indira Gandhi reminded the audience that "**the interest in conservation is the rediscovery of a truth well known to our sages. The Indian tradition teaches us that all forms of life: animal and plant are so closely linked that disturbance in one gives rise to imbalance in the other**". The Indian Constitution laid down the responsibility of Government to protect and improve the environment _and made it a "**fundamental duty of every citizen to**

protect and improve the natural environment including forests, lakes, rivers and wildlife" (Naqvi, S.A.A., 1991).

The establishment of National Museum of Natural History (NMNH), New Delhi is one of the major steps toward the awareness of non-formal environmental education to the masses. The NMNH owes its genesis to Smt. Indira Gandhi, the former Prime Minister, who while considering new projects to be initiated in 1972 on the occasion of the 25th anniversary of India's Independence, decided that the country needs a Museum of Natural History to depict its flora, fauna and mineral wealth to provide an out of school facility for education of children and to promote environmental awareness among the masses. The NMNH opened its doors to the public in a rented building in Mandi House New Delhi on 5th June 1978, coinciding symbolically with the World Environment Day.

From a single Museum located in New Delhi, the NMNH has extended its geographical range by establishing Regional Museums of Natural History (RMNH) in many parts of the Country such as Southern Region (Mysore), Central Region (Bhopal), Eastern Region (Bhubaneswar) and Western Region (Sawai Madhopur) and one more regional museum is to be established at North-Eastern Region (Gangtok).

The ICOM definition of museum (2022) states that a museum is **"a not-for-profit, permanent institution in the service of society that researches, collects, conserves, interprets and exhibits tangible and intangible heritage. Open to the public, accessible and inclusive, museums foster diversity and sustainability. They operate and communicate ethically, professionally and with the participation of communities, offering varied experiences for education, enjoyment, reflection and knowledge sharing".** This definition clearly states that the museums have to play an important role in education, particularly non-formal education to their users, whether these are children or adults. The museums also foster the concept of diversity and sustainability.

Natural History Museums in particular have much more potential for a more effective and potent role in contributing to the objective of non-formal environmental education. Earlier, the natural history museums were showcasing its collections on the bases of taxonomy, gradually transformed toward the theories of evolution and then the various concepts of ecology were in to the focus of display and finally the modern natural history museums now devoted to environmental education.

To understand the role and potential of natural history museums in environmental education a study was carried out by the author during 2015-2018. National Museum of Natural History, New Delhi and its four Regional Museums were selected for study. The present paper would be focused only on the studies pertaining to Regional Museum of Natural History (RMNH), Bhubaneswar (Odisha).

RESEARCH METHODOLOGY

Simple methodology was adopted to carry out the present research work. The primary data was collected through an Open Ended Questionnaire and personal observations by visiting the museums. The data collected through questionnaire or personal observations were mostly qualitative in nature but some quantitative data like number of educational activities, foot fall during the year etc. were also collected for analysis and interpreting the results. The following points with regard to the functioning of all five museums were taken in to account at the time of collecting the information.

1. Aims and Objectives of the museums
2. Vision, Mission Statement and Road Map of the museums
3. General Information about the museums like Contact Details, Opening Hours, Holidays and Entry Fees etc.
4. General Facilities and facilities for visitors
5. Educational Facilities and Educational Activities both inside and outside the museum
6. Use of Modern Interpretive Techniques if any
7. Green Practices for Sustainability etc.

Wherever required, the professional feedback was taken from the Directors, Curators, and Scientist in-charges of the regional museums. Some information about educational activities was also provided by education assistants, gallery guides and other staff of the museum.

While finalizing the questionnaire, it was taken in to account that maximum information regarding Educational facilities and activities of the museums could be procured. Some queries were asked about general description of the museum, vision and mission of the museum and significant contribution of the museum in Environmental Education.

Secondary data was collected through books, articles of professional journals (both printed and online), brochure of the museums and official web-sites of the institutions.

OBSERVATIONS

The data for educational services and activities of RMNH, Bhubaneswar was collected for three years (2016-2018) through personal observations and open ended questionnaire, but here I would present my observations on detailed educational activities for one year only (2018) due to huge number of activities of the museums in a year, by assuming that the most of the activities repeated every year and it would not affect the results of the overall findings about the museum.

The Educational Facilities as well as details of the galleries have been presented here in textual form where as the number of Educational Activities conducted by the museum in a year have been presented in Tabular Form for the sake of convenience.

Regional Museum of Natural History, Bhubaneswar (Odisha)

Regional Museum of Natural History (RMNH), Bhubaneswar, an Eastern Regional Centre of National Museum of Natural History, New Delhi under the Ministry of Environment, Forest & Climate Change, Government of India is dedicated to the cause of spreading non-formal environmental education through its permanent galleries, in-house and outreach educational programmes throughout the year.

Situated in the temple city of Bhubaneswar, Orissa, near Acharya Vihar Square on National Highway 5, this museum is yet another destination and a meaningful visit for students, adults and family members from all sections of society.

Fig-1: RMNH, Bhubaneswar Building

Fig-2: RMNH, Bhubaneswar Building with Roof Top Solar Panel

An aesthetically designed building and landscape sets the tone for an informal and joyful learning experience about our natural heritage and the importance of its conservation. It offers an exciting opportunity for hands on and minds on activity to interact with the

exhibits under recreated environment to attain the knowledge about the harmony of plants and animals and their interrelationships in nature.

Museum organizes various programmes for teachers and students such as workshops, nature camps, debate, painting & quiz competitions etc. to create awareness about nature, environment and wildlife. Museum’s foundation stone was laid on 5th November 1994 by the then Chief Minister of Odisha, Shri Biju Patnaik and presided by Shri Kamal Nath, the then Minister of Environment & Forest, Govt. of India.

RMNH, Bhubaneswar was inaugurated on 10th August 2004 by the Hon’ble Chief Minister of Odisha Shri Naveen Patnaik in the presence of Honorable Union Minister for Environment & Forest Shri Namo Narain Meena with a temporary exhibition on “**Threatened and Endangered animals of India**”, **Biodiversity Gallery**, Discovery centre and a mobile exhibition vehicle on the theme “**Sustainable Village Life**”.

At present the museum is having permanent galleries on Biodiversity, Africa, North East Biodiversity, Intangible Natural Heritage and Temporary Exhibitions on Unique creations of Nature, Herpeto fauna, Body’s Hardware and Insect Corner. Apart from corridor displays on Body’s Hardware, pangolin, Preserved specimen of snakes, reptiles etc. in the Herpeto-fauna corner, Display of Bottle Nose dolphin model & skeleton and a number of corridor display panels.

The main attraction of the museum is the full skeletal display of elephant, Baleen whale and Toothed Whale as outdoor exhibits inside the campus of the museum will enhance the beauty of the campus as well as will attract the visitors to the museum. Apart from this museum is having library and facility provided to the students and researchers. Museum is having an auditorium where film shows nature and wildlife are being screened twice daily for the benefit of visitors free of charge apart from organizing various seminars, workshops and programmes Museum is providing all the services at free of cost to the public. There is no entry fee for visit hence museum is attracting huge number of visitors throughout the year.

The goal of the museum is to impart non-formal environmental education to the public in general and the student community in particular in order to inculcate the awareness about the importance of flora, fauna and subsequent conservation of our natural resources.

The museum attempts to showcase the vibrant biodiversity of Orissa, the North-East and the Andaman and Nicobar Islands depicting their richness under one roof thereby making people aware of the natural heritage of the state and beyond. Extending the excellent facilities to the masses in order to make environmental education to the common man is

the driving force behind the creation of the museum. It attempts to strike a chord with the common man and apprise him of the importance of the natural bio resources and their conservation. After all, the survival of the common man is dependent of the conservation of our natural heritage.

Uniqueness of Museum:

1. Odisha's First Museum with fully functional largest "roof top" solar power plant (189.2 KvA), till date. 80-100% dependency on solar power.
2. Only museum in Odisha with rain water harvesting system (till date). Every year recharge of 300k liters (approx.) of ground water.
3. First museum in India to use bio-decomposers for faster decomposition of green waste to further use in Vermi-Composting and making vermi-wash to further use in museum garden and landscape over the concept of "taking from nature and giving it back".
4. First declared Plastic free government campus in Odisha (declared since May 1st, 2018), strict penalty on plastic littering.
5. First Museum to promote recycling of material up to maximum extent.
6. Since June 2018 museum has innovated completely distinct technique of making 100% biodegradable exhibits and models and has avoided approximately 800-900 kg use of plastic till August 27, 2019. Based on this technique life sized models of sting ray, king cobra (12 ft long), baby giraffe (9 ft. high), Komodo dragon (7 ft long), silver back gorilla (5 ft high and 5.5 ft. long) have already been prepared. A life sized estuarine crocodile (length 24ft), life sized hippopotamus with baby and a model of dinosaur is still under preparation.

A. Educational Facilities:

Exhibit Galleries:

Biodiversity Gallery: Experience the thrill of a walk through Similipal; enjoy beauty of Chilka and Glory of Bhitarkanika. Track the course of river Mahanadi flowing from Amarkantak to Bay of Bengal. Enjoy mystic beauty of Andaman & Nicobar Islands.

North East Biodiversity Gallery: North East India, a land synonymous with beauty & diversity is part of Himalayan and Indo-Burma biodiversity hotspot. It is a reservoir of many endemic and rare plants and animals. Biodiversity of Kaziranga National Park, Loktak Lake, Namdapha and Dzukou Valley are beautifully presented in a dioramic form.

Besides, biodiversity of birds, primates, orchids, rhododendrons, bamboos and Herpeto-fauna of North East is presented in a lucid and easily understandable way.

African Gallery: World's largest eggs of extinct Elephant Bird, Fossils, Ammonites, African Savannah Paintings, Skeleton of African Black Rhinoceros and Butterflies of Madagascar etc have been displayed in this gallery and look for a rare mounted specimen of Cheetah which is extinct from India.

Unique Creations of Nature:

- Know about extinct and endangered animals of India with special reference to cats.
- Look at the striking difference between Cheetah and Leopard; Dear and Black Buck.
- Know about largest and smallest terrestrial mammals, herbivore, carnivore, bone crusher and much more interesting facts and exciting information…

Herpeto-fauna: Look at the actual specimens of different species of frog, snakes, lizards and turtles found in Odisha well preserved in formalin.

Body's Hardware:

- Compare skeleton of man with that of other animals.
- Find out how bird bones are different from mammals and snake.
- Learn about modification of limbs in different animals groups.

Insect Corner: Some common insects and their life cycle is depicted to know more about ecological role played in environment. Participatory exhibit on interesting facts about hornets and other wasps through LCD monitor displayed along with hornet nest.

Discovery Centre:

- Look at the fastest, largest and longest of all animals.
- Amazing plants and animals
- Measure your height against a giraffe.
- Search for shells on the sea shore.
- Unfold treasure of life in sea.

Elephant and Whale Skeleton:

A rare and interesting skeletal exhibit of bullet ridden wild tusker displayed under suspended condition in central dome, A 47 feet long skeleton of baleen whale (Bryde's Whale) and 32 feet long Toothed Whale (Sperm Whale) and complete skeleton of African Black Rhino are an added attraction.

Exhibition on Wheels: A mobile museum facility is available for people who have a rare opportunity to visit museum.

Nature on Screen: Daily Film Show on Nature and Wildlife from 11.00 A.M. to 12.00 Noon and 3.00 to 4.00 P.M.

Other Facilities:

- Wheel chair facility for physically challenged visitors.
- Library equipped with more than 3000 books on Life Science, Natural History and Encyclopedia for students and researchers.

B. Educational Activities:

The RMNH, Bhubaneswar like other Regional Museums of Natural History conducted various activities to impart environmental education to its visitors and to people who do not visit the museums, through its outreach programmes. These activities may include Guided/Conducted Tours, Special awareness programmes during summer/winter vacations, Teacher's workshops/conferences/seminars, Poster Making/Essay Writing and Quiz Competitions, Special Designed Programmes for Physically Challenged People, Programmes related to Special Days like Earth Day, Environment Day, Tiger Day and Biodiversity Day etc., Mounting Temporary Exhibitions, Producing Museum's Publication and to conduct outreach programmes etc.

The Table-1 shows the number of such educational activities conducted by RMNH, Bhubaneswar during the years 2016 was 55, 2017 was 70 and in 2018 it was 96. Table-2 shows the details of such educational activities during the year 2018 only. As the educational activities in different years are almost same, it would not have any implication on final results of the study. The number of such activities may vary due to different reasons.

TABLE 1: SHOWING THE NUMBER OF EDUCATIONAL ACTIVITIES (RMNH, BHUBANESWAR, ORISSA) DURING THE YEARS 2016-2018

Year	Educational Activity	Number of Programmes	Remarks if any
20	Guided Tours/Conducted Tours	01	

1 6			
	Vacation Programmes	02	Special awareness programmes during summer and winter vacations
	Teachers Workshops Conference and Seminar etc.	03	
	Quiz/ Other Competitions	08	Others include Poster Making and Essay Writing Competitions etc.
	Programmes for Physically Challenged People	02	
	Programmes on Special day (Environment Day, Earth Day etc.)	06	
	Temporary Exhibitions	12	
	Out Reach Programmes	04	
	Museum's Publication	01	Brochure on Exhibitions
	Other Educational Programmes Which are not Covered Above	16	Including Swachh Bharat Abhiyan and collaborative programmes etc.Visit of Green Buildings, Nukkad Natak (Street Plays) , Collaborative Programmes with Ministry and other institutions etc.

	Total Number	**55**	
2 0 1 7	Guided Tours/Conducted Tours	01	
	Vacation Programmes	02	Special awareness programmes during summer and winter vacations
	Teachers Workshops, Conference and Seminar etc.	08	
	Quiz/ Other Competitions	10	Others include Poster Making and Essay Writing Competitions etc.
	Programmes for Physically Challenged People	05	
	Programmes on Special day (Environment Day, Earth Day etc.)	09	
	Temporary Exhibitions	09	
	Out Reach Programmes	09	
	Museum's Publication	02	
	Other Educational Programmes Which are not Covered Above	15	Visit of Green Buildings, Nukkad Natak (Street Plays) , Collaborative Programmes with Ministry and other institutions etc.
	Total Number	**70**	
2 0	Guided Tours/Conducted Tours	01	

1 8			
	Vacation Programmes	01	Specialawareness programmes during summer and winter vacations
	Teachers Workshops Conference and Seminar etc.	05	
	Quiz/ Other Competitions	10	Others include Poster Making and Essay Writing Competitions etc.
	Programmes for Physically Challenged People	05	
	Programmes on Special day (Environment Day, Earth Day etc.)	08	
	Temporary Exhibitions	18	
	Out Reach Programmes	18	
	Museum's Publication	05	
	Other Educational Programmes Which are not Covered Above	25	Visit of Green Buildings, Nukkad Natak (Street Plays) , Collaborative Programmes with Ministry and other institutions etc.
	Total Number	**96**	
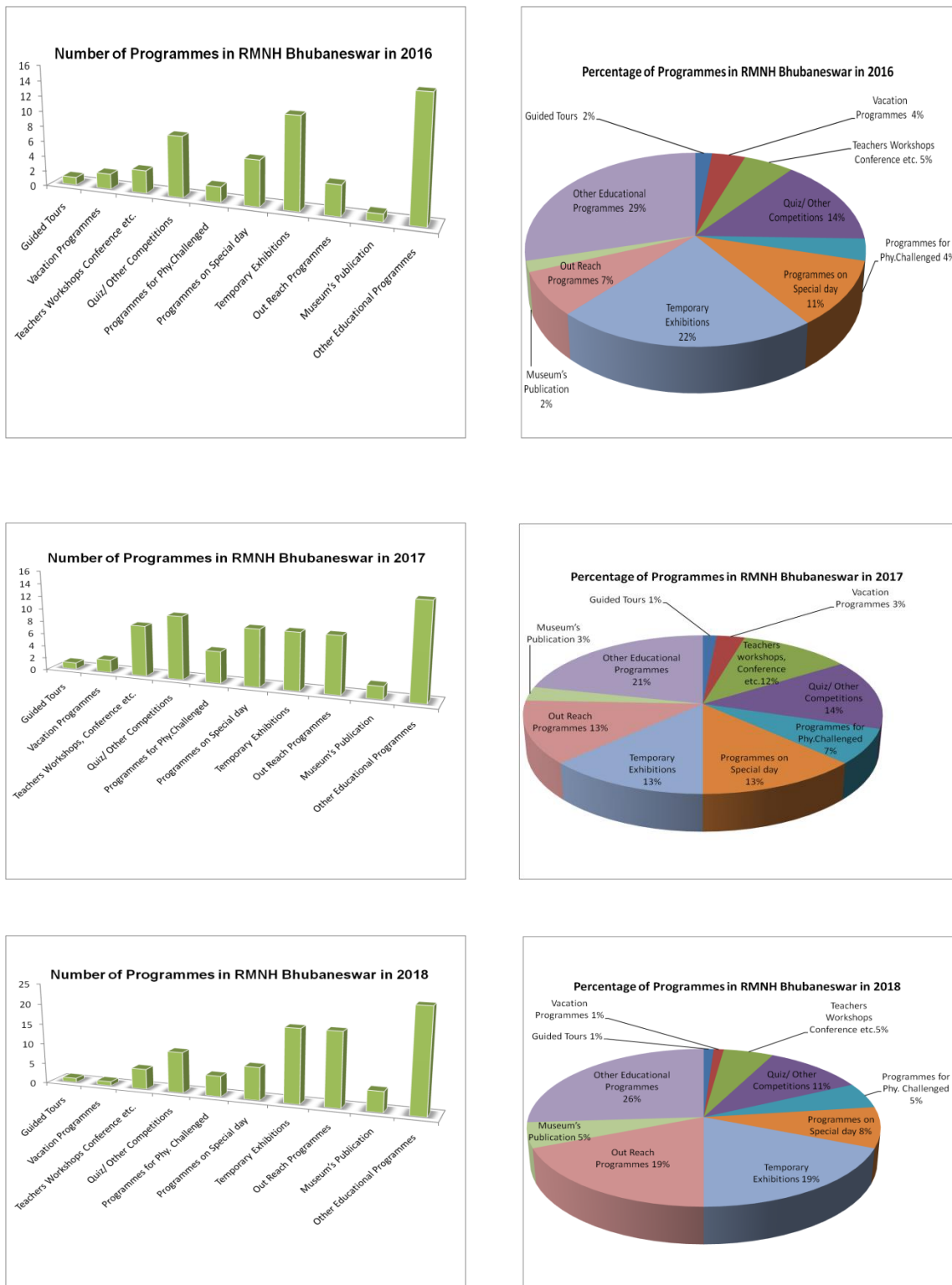
Figure-3: Number and Percentage of Educational Programmes at RNMNH, Bhubaneswar During 2016-2018

Some Educational Activities of RMNH, Bhubaneswar

Fig-4: Teacher's Orientation Workshop

Fig-5: Painting Competition

Fig-6: Quiz Competition

Fig-7: Specimen Interpretation with children

Result and Discussion

On the bases of data collected and personal observations of the RMNH, Bhubaneswar, The following are details of various inferences and results find by various observations and analysis of data:

1. The RMNH, Bhubaneswar is playing significant role in awareness of Environmental Education to the masses through its educational facilities and activities both inside the museums as well as with the help of their out-reach programmes.
2. The Museum having almost all basic educational facilities/visitors facilities like permanent exhibitions, temporary exhibition area, library/information services, Auditorium for film shows, lectures, and other programmes/competitions, drinking water, cafeteria, parking and facilities for special audiences (wheel chairs, ramp etc.).
3. The educational activities in RMNH, Bhubaneswar mainly included Nature Camps during vacations, Teacher's Orientation and Training Programmes, Quizzes and Other Competitions for school students, Hands on activities and other awareness programmes for specially challenged people, Programmes to celebrate the special days related to environment (Earth Day, Ozone Day, Environment Day, Tiger Day etc.), Out-reach programmes in collaboration with National Parks, Forests and other institutions dealing with environment, Installing Temporary Exhibitions, Publishing material for EE and other programmes like visit of green buildings, cleanliness campaigns, collaborative programmes with Ministry of Environment, Forest & CC. RMNH, Bhubaneswar conducted a total of 55 such programmes during the year 2016, 70 in 2017 and 96 during the year 2018 (Table-1, Fig-3)
4. The Museum also published some educational material like Brochures, Hand Books, Leaflets, Booklets and Folders etc. usually containing brief information about the museum, its activities, its facilities, exhibits and other related information. These publications also include the information about the local flora and fauna and concepts addressing nature and environment. Though, the publication of these natural history museums n three years is not in a good number.

5. Besides common and regular educational activities mentioned above, these museum also organized some other educational activities in good number. These activities may include visit if green buildings, Nukkad Natak on the theme of environment or other social issues, Harit Deewali Campaigns, Rallies for Mass Awareness, Installation of an '**Exhibit of the Month**' in museum premises and some collaborative programmes with other institutions and ministries.

Though the RMNH, Bhubaneswar has not added much to their collection but organized various temporary exhibitions on social and environmental issues. The museum has taken a lead in doing some green practices for sustainability in its museum by installing functional "Roof Top" solar power plant, rain water harvesting system, replacement of conventional lights with LED lighting, use of bio-decomposers for green waste and leaving 40% of total land area for better absorption of rain water to re-charge ground water level.

Conclusion

International Council of Museums (ICOM) in its **position statement** for natural history museums published in "**ICOM Code of Ethics for Natural History Museums**" clearly stated that the multifaceted purpose of natural history museum is to built and store natural history collections, conduct research, support the process of science and biological conservation, enhance public understanding and appreciation of the natural world and to collaborate with the public in deriving their own meaning from the natural heritage they encounter in the museum and in nature.

Apart from playing role in environmental education, the 21st century natural history museums had to focus on current trends in the field of natural history like Bio-informatics, collection research to understand various environment issues, collaborative research with the institutions dealing with nature conservation and environmental studies etc. The economic recession, growing environmental awareness and the effects of climate change are forcing public institutions as well as private organizations to focus greater attention on the problem of the sustainability.

The future of natural history collections is crucially dependent on not only preserving physical specimens but also capitalizing on the broader potential of those specimens in a digital age (Graham et al. 2004). In summary, nearly all future collections-based research will involve community-shared and -owned digital repositories, regardless of whether those repositories store images, sounds, or sequences.

References

Carson, S. (1978). Environmental Education: Principles and Practices. Edited Book Published by Edward Arnold (Publishers) Ltd., 25 Hill Street, London: ISBN: 0-7131-0133-4

Graham CH, Ferrier S, Huettman F, Moritz C, Peterson AT.(2004). New developments in museum-based informatics and applications in biodiversity analysis. Trends in Ecology and Evolution 19: p.p. 497–503.

ICOM Code of Ethics for Natural History Museums (2013). Position Statement. ICOM NATHIST. International Council of Museums; p.p. V.

Mahmood, D. (2012). Environmental Education: Scope and Strategies of Government of India. Paper presented in National Conference on "Environmental Education in Museums and Formal Education Institutions" held on 13-14 February 2012 at A.M.U., Aligarh.

Naqvi, S.A.A. (1991). A Study on the Role, Potentials and Prospects of Natural History Museums and Nature Reserves for Environmental Education. M.Phil. Dissertation awarded from AMU, Aligarh

Reports:

Final Report and Conclusions, ICOM Symposium on '**Museum and Environment**', organized by ICOM at Bordeaux, Istres, Lourmarin, Paris on 25-30 September, 1972

Report of International Working Meeting on Environmental Education in the School Curriculum, held at Forest Institute, Carson City, Nevada, USA in 1970 (www.portals.iucn.org)

Report of Tbilisi Declaration (1977). www.gdrc.org/uem/ee/tbilisi.html

Websites:

https://icom.museum/en/news/icom-approves-a-new-museum-definition/

http://www.nmnh.nic.in/show_content.php?lang=1&level=1&ls_id=73&lid=63
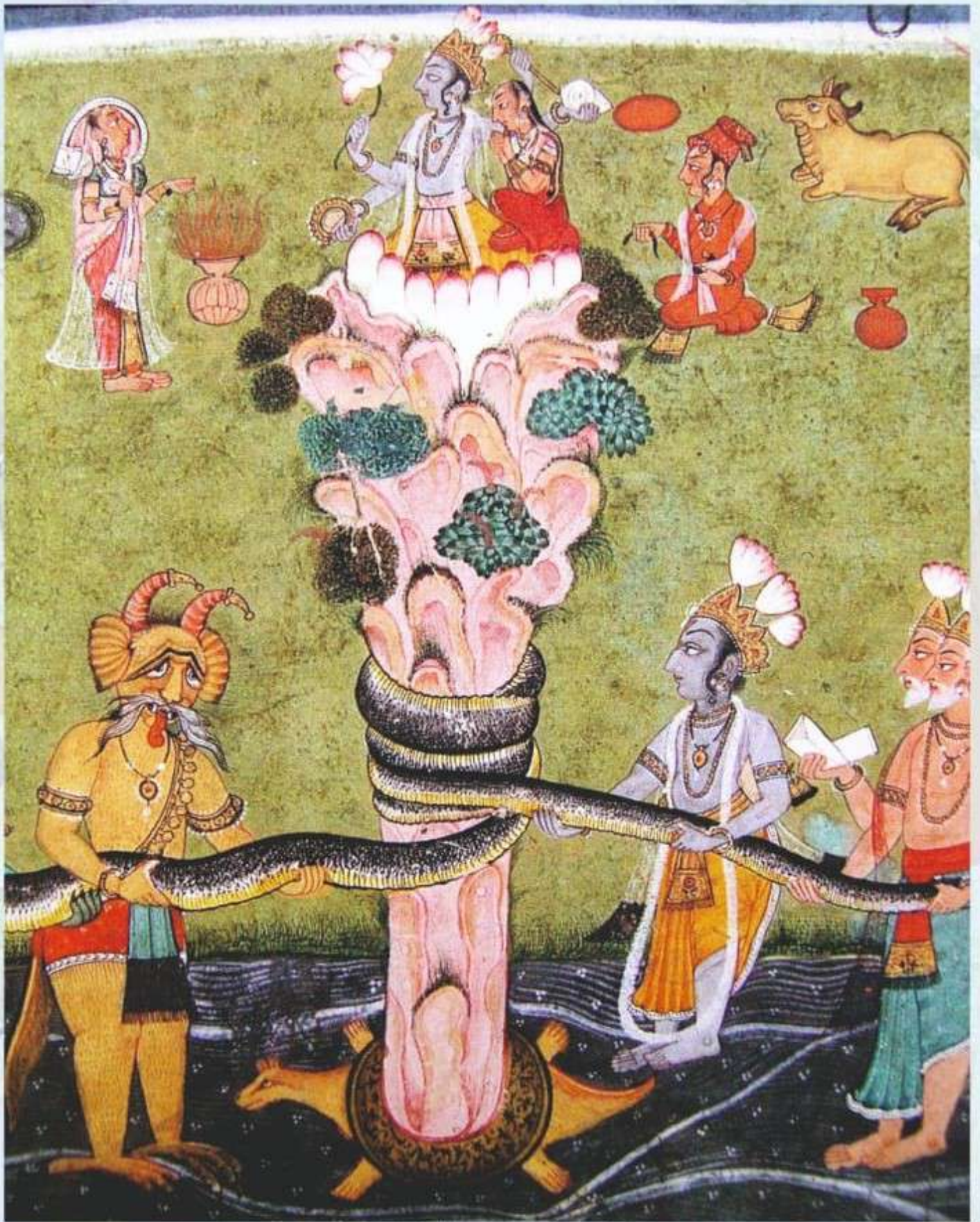
समुद्र-मंथन, पहाडी शैली,ल. १७००ई. ,रिटबर्ग म्यूज़ियम